उपदेशरामायण

पं० मलयधर मिश्र

श्रीः

उपदेश रामायण

पटना कालेज के संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याता

अक्षयवट मिश्र ने लिखा

—:*:०:*:—

प्रकाशक—

खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर

बाबू रामप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित

१९३०

तीसरी वार २०००] मूल्य ।।।≡)

वक्तव्य

श्रीरामचन्द्र का चरित्र समस्त भारतवर्ष के घर घर में फैला हुआ है। उनका चरित्र भारतवर्ष के बाल, वृद्ध, युवा सभी भली भांति जानते हैं। करोड़ों हिन्दू उन्हें साकार ईश्वर समझते हैं। भयंकर नास्तिक भी उनके आचरण की प्रशंसा करते हैं। उनकी कथा पुराणों में भी लिखी है, किन्तु महर्षि वाल्मीकि ने अपनी संस्कृतश्लोकनिबद्ध रामायण में उनका चरित्र बड़े विस्तार के साथ लिखा है। वाल्मीकि ने उनका चरित्र लिखने में किसी प्रकार की कमी नहीं की है. उत्तम पुरुष का जैसा आदर्श होना चाहिए ठीक वैसाही लिखा है। उनके चरित्र का अनुकरण करने से मनुष्य संसार में सुखी तथा प्रतिष्ठित हो सकता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी हिन्दी छन्दों में रामचन्द्रजी का चरित्र बड़ी खूबी के साथ लिखा है, किन्तु उनका लक्ष्य ही दूसरा था। वे चाहते थे कि सब लोग धार्मिक तथा रामभक्त हों। इनके वर्णन करने की शैली भी दूसरी ही है। जो हो, दोनों ने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार उपदेश देने में तनिक भी कोर-कसर न रखी है। दोनोंका प्रधान लक्ष्य यही था कि जो राम का चरित्र पढ़ें उनका चरित्र सुधरे। यदि उन दोनोंके लिखे उपदेशों का संग्रह किया जाय तो एक उत्तम पुस्तक बन जाय जिसके पढ़ने से सर्वसाधारण को लाभ पहुंच सकता है।

इन्हीं बातों को सोच विचार कर मैंने यह "उपदेश रामायण" लिखी है। इस पुस्तक में मैंने दोनों महात्माओं के उपदेशों का संग्रह पूर्णरूप से कर दिया है। यद्यपि मैंने कथा को संक्षिप्त कर दिया है तथापि उपदेशों को संक्षिप्त नहीं किया है। उपदेशों का कुछ भी अंश मैंने नहीं छोड़ा है। जहां जितने और जैसे उपदेश हैं वहां उतने ही और वैसेही उपदेश रखे गये हैं। वहां उन्हें मैंने ज्यों का त्यों अनुवाद करके इस पुस्तक में रख दिया है; क्योंकि इस ग्रन्थ के लिखने का मेरा मुख्य उद्देश्य यही है कि दोनों महात्माओं के उपदेशों का ज्ञान सर्वसाधारण को हो जाय जिस से सबका चरित्र सुधरे। दोनोंके उपदेशों में अन्तर इतना ही है कि वाल्मीकिजी का लक्ष्य लौकिक नीति उपदेश करने का था जिससे मनुष्य संसार में अच्छा समझा जाय और सब प्रकार सुखी हो। तुलसीदासजी का लक्ष्य यह था कि कोई मनुष्य नास्तिकों के जाल में न फंसे निराकार ब्रह्म के नीरस झमेले में न पड़े, और लोक में निन्दित भी न हो; वरन सभी मनुष्य धार्मिक, साकारपूजक, रामभक्त, तथा वेदपथानुगामी हों। सचमुच भक्ति मार्ग बड़ा सुलभ, कोमल, तथा सर्वोत्तम है। मैं दृढ़ता से कह सकता हूं कि यदि उस भयंकर समय में तुलसीदासजी का जन्म न होता और वे अपने अनुपम तथा भक्तिपूर्ण ग्रन्थों की रचना न करते तो अब तक वैदिकमार्ग लुप्त ही हो जाता।

मेरा सिद्धान्त तो यह है कि—"या लोकद्वय-साधनी चतुरता सा चातुरी चातुरी।" जिससे यह लोक और परलोक दोनों ही सुधरे वही उत्तम मार्ग है। इसीलिए मैंने दोनों महा-

वक्तव्य

श्रीरामचन्द्र का चरित्र समस्त भारतवर्ष के घर घर में फैला हुआ है। उनका चरित्र भारतवर्ष के बाल, वृद्ध, युवा सभी भली भांति जानते हैं। करोड़ों हिन्दू उन्हें साकार ईश्वर समझते हैं। भयंकर नास्तिक भी उनके आचरण की प्रशंसा करते हैं। उनकी कथा पुराणों में भी लिखी है, किन्तु महर्षि वाल्मीकि ने अपनी संस्कृतश्लोकनिबद्ध रामायण में उनका चरित्र बड़े विस्तार के साथ लिखा है। वाल्मीकि ने उनका चरित्र लिखने में किसी प्रकार की कमी नहीं की है. उत्तम पुरुष का जैसा आदर्श होना चाहिए ठीक वैसाही लिखा है। उनके चरित्र का अनुकरण करने से मनुष्य संसार में सुखी तथा प्रतिष्ठित हो सकता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी हिन्दी छन्दों में रामचन्द्रजी का चरित्र बड़ी खूबी के साथ लिखा है, किन्तु उनका लक्ष्य ही दूसरा था। वे चाहते थे कि सब लोग धार्मिक तथा रामभक्त हों। इनके वर्णन करने की शैली भी दूसरी ही है। जो हो, दोनों ने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार उपदेश देने में तनिक भी कोर-कसर न रखी है। दोनोंका प्रधान लक्ष्य यही था कि जो राम का चरित्र पढ़ें उनका चरित्र सुधरे। यदि उन दोनोंके लिखे उपदेशों का संग्रह किया जाय तो एक उत्तम पुस्तक बन जाय जिसके पढ़ने से सर्वसाधारण को लाभ पहुंच सकता है।

इन्हीं बातों को सोच विचार कर मैंने यह "उपदेश रामायण" लिखी है। इस पुस्तक में मैंने दोनों महात्माओं के उपदेशों का संग्रह पूर्णरूप से कर दिया है। यद्यपि मैंने कथा को संक्षिप्त कर दिया है तथापि उपदेशों को संक्षिप्त नहीं किया है। उपदेशों का कुछ भी अंश मैंने नहीं छोड़ा है। जहां जितने और जैसे उपदेश हैं वहां उतने ही और वैसेही उपदेश रखे गये हैं। वहां उन्हें मैंने ज्यों का त्यों अनुवाद करके इस पुस्तक में रख दिया है; क्योंकि इस ग्रन्थ के लिखने का मेरा मुख्य उद्देश्य यही है कि दोनों महात्माओं के उपदेशों का ज्ञान सर्वसाधारण को हो जाय जिस से सबका चरित्र सुधरे। दोनोंके उपदेशों में अन्तर इतना ही है कि वाल्मीकिजी का लक्ष्य लौकिक नीति उपदेश करने का था जिससे मनुष्य संसार में अच्छा समझा जाय और सब प्रकार सुखी हो। तुलसीदासजी का लक्ष्य यह था कि कोई मनुष्य नास्तिकों के जाल में न फंसे निराकार ब्रह्म के नीरस झमेले में न पड़े, और लोक में निन्दित भी न हो; वरन सभी मनुष्य धार्मिक, साकारपूजक, रामभक्त, तथा वेदपथानुगामी हों। सचमुच भक्ति मार्ग बड़ा सुलभ, कोमल, तथा सर्वोत्तम है। मैं दृढ़ता से कह सकता हूं कि यदि उस भयंकर समय में तुलसीदासजी का जन्म न होता और वे अपने अनुपम तथा भक्तिपूर्ण ग्रन्थों की रचना न करते तो अब तक वैदिकमार्ग लुप्त ही हो जाता।

मेरा सिद्धान्त तो यह है कि—"या लोकद्वय-साधनी चतुरता सा चातुरी चातुरी।" जिससे यह लोक और परलोक दोनों ही सुधरे वही उत्तम मार्ग है। इसीलिए मैंने दोनों महा-

त्माओं के उपदेशों को इस पुस्तक में यथास्थान रख दिया है, जिससे पढ़नेवालों के दोनों लोक सुधरें। सर्वसाधारण के पढ़ने तथा समझने के लिए मैंने इस " उपदेश रामायण " को लिखा है; इसलिए मैंने इस पुस्तक की भाषा हलकी करदी है। यदि मेरा उद्देश्य सिद्ध होगा तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

विनयावनत—

अक्षयवट मिश्र।

रामायण की संक्षिप्त कथा

सूर्यवंशी क्षत्रिय "दशरथ" अयोध्या के राजा थे। उनकी तीन रानियां थीं। कौशल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा। यज्ञ के प्रभाव से, कौशल्या के गर्भ से राम, कैकेयी के गर्भ से भरत और सुमित्रा के गर्भ से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। विश्वामित्र मुनि राम, लक्ष्मण को अपने आश्रम में ले गये और अपना यज्ञ समाप्त करके उन दोनोंको लिये हुए जनकपुर के धनुष-यज्ञ में पहुंचे। वहां राम ने धनुष तोड़ा और उनका व्याह जानकी के साथ हुआ। जब राजा दशरथ ने राम को युवराज बनाना चाहा तब कैकेयी ने दशरथ से प्रार्थना करके राम को वनवास दिलवाया और भरत को युवराज बनवाया। राम के साथ जानकी तथा लक्ष्मण वन गये। इस बीच दशरथ का स्वर्गवास हो गया। जब चित्रकूट में पहुंचे तब भरतजी उनको मनाने के लिए वहां गये। रामजी न लौटे, किन्तु उनने अपना खड़ाऊं दे दिया। रामजी अनेक राक्षसों को मारते हुए दण्डक बन में पहुंचे। वहां शूर्पणखा आयी। लक्ष्मण ने उसकी नाक काट ली। यह समाचार जानकर उसका भाई रावण मारीच को सुवर्ण का मृग बनाकर राम के आश्रम में पहुंचा। राम जानकी के कहने से मृग को पकड़ने के लिए दौड़े। लक्ष्मण भी कुछ देर के बाद राम की खोज में चले गये। रावण एकान्त

पाकर जानकी को चुरा ले गया। जब दोनों भाई लौटे, तब जानकी को आश्रम में न देख कर ढूंढ़ते २ ऋष्यमूक पर्वत के पास पहुंचे। वहां सुग्रीव से मित्रता हुई। राम ने वालि को मारकर सुग्रीव को किष्किंधा का राजा बना दिया। सुग्रीव ने हनुमान् को भेजकर जानकी का पता लगवाया। हनुमान् जानकी को देख आये, और आकर सब समाचार कहा—राम समुद्र में पुल बँधवाकर सेना को लेकर लंका में पहुंच गये। वहां रावण के छोटे भाई विभीषण से मित्रता हो गयी। फिर राम ने रावण, उसके मंझले भाई कुंभकर्ण तथा उसके पुत्र मेघनाद को उसकी सारी सेना के साथ मार डाला। लंका के राजा विभीषण हुए। सारी सेना के साथ रामजी अयोध्या में लौट आये। भरत ने राम का स्वागत किया। सबकी राय से रामजी अयोध्या के राजा बनाये गये और उनने धर्मपूर्वक ग्यारह हजार वर्षों तक अखण्ड राज्य किया।

—:*:—

श्रीमंगलमूर्त्तये नमः।

उपदेश रामायण

भारतवर्ष के अवधप्रान्त में परम पवित्र अयोध्या नाम की एक नगरी है। यह नगरी सरयू नदी के तीर पर बसी है। यहां बहुत पहले त्रेतायुग में भारतवर्ष की राजधानी थी। यहां सूर्यवंशी क्षत्रीय राज्य करते थे। उनमें इक्ष्वाकु, ककुत्स्थ, रघु तथा दशरथ बहुत प्रसिद्ध थे। उस समय अयोध्या नगरी के समान सुहावनो, तथा सर्वगुणपूर्णा एवं विभवसम्पन्ना कोई दूसरी नगरी नहीं थी। इसके चारों ओर बहुत ऊँची तथा चौड़ी पत्थर की अत्यन्त सुदृढ़ दीवार थी। चारों दिशाओं में चार विशाल लोहे के द्वार थे जिनमें बड़ी बड़ी लोहे की किवाड़ियां लगी थीं जिनमें स्थल स्थल पर रौप्य, सुवर्ण आदि अनेक प्रकार के धातु जड़े हुए थे जिनसे उनकी देदीप्यमान दीप्ति चौगुनी हो रही थी। नगरी के बाहर चारों ओर अत्यन्त गम्भीर परिखा थी जिसमें अगाध जल सदा परिपूर्ण रहता था। इन कारणों से कोई शत्रु उसमें प्रवेश करने का साहस नहीं करता था। नगरी के बीच पूर्व द्वार से पश्चिम द्वार तक तथा उत्तर द्वार से दक्षिण द्वार तक बहुत ही लम्बे चौड़े राज-पथ थे, जिनके दोनों

किनारों पर श्रेणीवद्ध गगनचुम्बी भव्य भवन थे जिनकी धवलता, तथा उच्चता के कारण वह नगरी दूर से हिमालय के समान दीख पड़ती थी। नगरी के बीच में राजभवन था, जिसके चारों ओर अगणित वीर, सैनिक भेष से सुसज्जित हो, अस्त्र शस्त्र लेकर सदा खड़े रहते थे। नगरी बड़ीही मनोहारिणी तथा सुखदायिनी थी। नगरी के बाहर स्थान स्थान पर पुष्पवाटिकाएं थीं जिन में नाना प्रकार के वृक्ष और लताएं पत्र, पुष्प, तथा फलों से परिपूर्ण होकर लहलहा रही थीं जिन्हें देख नागरिक रसिक जनों का मन मोहित हो जाता था। उन वृक्ष तथा लताओं की शाखाओं पर बैठ कर रङ्ग विरङ्ग के पक्षी परम मनोहर कलरव करते थे जिन्हें सुन पथिकों के कर्णकुहर मानो सुधा की मधुर धारा से परिपूर्ण हो जाते थे। उन पुष्पवाटिकाओं में शीतल, मंद, सुगन्ध वायु का सदा संचार हुआ करता था जिससे श्रान्त पथिकों के सन्तप्त शिथिल शरीर में पुनः बल का प्रादुर्भाव हो जाता था। उन पुष्पवाटिकाओं के बीच कई सरोवर थे जिनमें चारों ओर मणिरचित घाट थे। उन सरोवरों के जल स्फटिक के समान स्वच्छ, दर्पण के समान देदीप्यमान, तुषार के समान शीतल, तथा अमृत के समान मधुर थे, जिनमें नाना प्रकार के कमल खिले रहते थे व उनके मधुर मधु को पीकर मधुकर मत्त होकर मधुर, मृदु गुंजार करते थे, जिन्हें सुन चित्त आह्लादित हो जाता था। उन जलाशयों पर नाना प्रकार के जलपक्षी तैरते फिरते थे और उन बीच नाना प्रकार की मछलियां सदा अठखेलियां किया करती थीं। राजभवन के भीतर भी मणियों के बने घाटवाले अनेक

सरोवर निर्मल जल से परिपूर्ण थे। उनके चारों ओर अनेक पुष्प-वाटिकाएं थीं, जिनमें सदा पत्र, पुष्प तथा फल लगे रहते थे। वहां अनेक पालतू पक्षी तथा हरिण आदि पशु भी सदा आनन्द-पूर्वक विचरण किया करते थे।

उस समय नगरी की जैसी शोभा थी उसका वैसा ठीक ठीक वर्णन करना सहज नहीं है। नगरी धन-धान्य से परिपूर्ण थी। राज-पथों के दोनों किनारे पर व्यवसायियों की श्रेणीबद्ध दूकानें थीं, जिनमें मणि माणिक्यादि रत्न, सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, लौह आदि धातु, तथा उन धातुओं के निर्मित अनेक प्रकार के पात्र, अनेक प्रकार के वस्त्र, भूषण, विविध भांति के अस्त्र शस्त्र, सब प्रकार के अन्न, नाना प्रकार के षट्रस भोजन, आदि संसार की सभी सुख की सामग्रियां बिकती थीं और उचित मूल्य पर ग्राहकों को दी जाती थीं। जिस प्रकार दिन में वाणिज्य व्यवसाय की चहल-पहल होती थी उसी प्रकार रात में दिन का परिश्रम दूर करने के लिए काव्यावलोकन, पुराणपाठ, इतिहासमनन, नाटक-दर्शन, हरिभजन आदि विनोदकारी कार्य्यों की धूम रहा करती थी। जिस समय की बात हम लिख रहे हैं उस समय अयोध्या के राजसिंहासन पर परमप्रतापी, सत्यवक्ता, न्यायपरायण, पूर्णधार्मिक, महाराज दशरथ विराजमान थे और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करते थे।

उनके राज्य में किसी प्राणी को किसी प्रकार का क्लेश नहीं होता था। सभी सदा सन्तुष्ट रहा करते थे। सभी धन, धान्य से सम्पन्न थे। किसीको दूसरेका धन लेने की इच्छा नहीं होती

थी। सब अपनी ही सम्पत्ति से सन्तुष्ट थे। कोई रोगी या दरिद्र नहीं था। किसीके मन में पाप-बुद्धि उत्पन्न नहीं होती थी। सभी विद्वान् तथा शीलवान् थे। चारों वर्ण अपने अपने धर्म का अनुष्ठान करते थे। सभी ब्राह्मण प्रति दिन वेदपाठ, हवन, तर्पण, अतिथिसेवन आदि शुभ कर्म करते थे। वे छओं शास्त्रों, छओं अंगों, अष्टादशों स्मृतियों, तथा चारों वेदों के पूर्ण ज्ञाता थे। क्षत्रिय परम पराक्रमी, धर्मपरायण, प्रजापालक, दानी, और सच्चे वीर थे। वैश्य धर्म पूर्वक वाणिज्य, कृषि, गोपालन आदि शुभ कर्म करते थे। शूद्रगण सदा सेवा धर्म ही में अपना समय व्यतीत करते थे। चारों वर्ण आपस में परस्पर पूर्ण प्रेम रखते थे। क्षत्रिय ब्राह्मणों के अनुचर, वैश्य ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के अनुचर और शूद्र ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों के अनुचर थे। राजा दशरथ को किसी बात की कमी नहीं थी। उनके पास पूरी सेना और नाना देश के उत्तम उत्तम हाथी, घोड़े, बैल, आदि युद्ध सम्बन्धी पशु अगणित थे। उनके सैनिक वीर सदा सुसज्जित रहा करते थे, जिससे उनके शत्रुओं के हृदय में कभी उनसे युद्ध करने की इच्छा भी उत्पन्न नहीं होती थी। राजा के पास धन, धान्य, वस्त्र, भूषण, अस्त्र, शस्त्र, आदि पदार्थों से परिपूर्ण सैकड़ों खज़ाने थे जिनकी सामग्रियां कभी घट नहीं सकती थीं।

महाराज दशरथ को तीन महारानियां थीं। कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा। राजा को सभी सुख थे, किन्तु वे पुत्र-मुख-दर्शन के विना सदा दुःखी रहा करते थे। एक दिन उनके मन में बड़ी

ग्लानि उत्पन्न हुई कि "हा! यदि मुझे पुत्र नहीं होगा तो यह मेरा विशाल राज्य किसके काम आवेगा? मेरे मरने के बाद मेरे पितरों को जल कौन देगा? उनकी तृप्ति के लिए श्राद्ध कौन करेगा? शास्त्रों में लिखा है "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" "पुन्नाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः" इति। यदि मुझे पुत्र नहीं होगा तो मैं मरने के बाद नरक में निवास करूंगा। अस्तु, भाग्य में किसका वश है? तथापि यथाशक्ति उद्योग करूंगा। यही सोच विचार करं वे अपने परम पूज्य गुरु श्रीवशिष्ठजी के पास गये। वशिष्ठजी ने बड़े आदर के साथ राजा का स्वागत किया। फिर कुशलानन्द पूछने के बाद आने का कारण पूछा। दसरथ ने कहा—भगवन्! आपकी कृपा और शुभाशीर्वाद से मुझे किसी बात की कमी नहीं है। किन्तु सन्तानविहीन मेरा जीवन भार सा हो रहा है। क्या कभी मेरा आंगन नवजात बालक के मधुर संचार से सुशोभित होगा? हा! जब मैं अपने पितरों के तर्पण के समय शीतल जल दान करता हूं तब वे पितर मेरे बाद जल मिलने की आशा न देख कर गर्म आह भरते हैं, जिससे वे शीतल जल भी उष्ण हो जाते हैं! उन्हें मेरे ही जीवन में शीतल जल दुर्लभ हो गया! जब मैं श्राद्ध करता हूं तब मेरे पितर मेरे मरने के बाद हविष्य पाना दुर्लभ समझ कर उन हविष्यों का आधा अंश अभी से रखते जाते हैं इस कारण उनका पेट अभी से खाली रहा करता है, क्योंकि वे अपना पूर्ण भाग नहीं भोजन करते। जब मैं अपनी परम सुन्दरी स्त्रियों का मुख पुत्रशोक से मलिन देखता हूं तब मेरा दुःख और भी बढ़ जाता है। क्या आपको मेरी अवस्था पर तनिक भी दया

नहीं आती ? क्या आप कोई ऐसा उपाय करेंगे जिससे मुझे पुत्र-दर्शन का सुख प्राप्त हो ?

वशिष्ठजी ने कहा—" आप धैर्य धारण करें, मैं सब कुछ कर दूंगा। फिर वशिष्ठजी ने " पुत्रेष्टि " नामक यज्ञ के निमित्त सब सामग्रियां इकट्ठी करने के लिए आज्ञा दी। सब सामग्रियां इकट्ठी हो जाने पर शृङ्गी ऋषि को बुलवा कर यज्ञ कराया। यज्ञ-कुण्ड से साक्षात् अग्निदेव प्रगट हुए। उनके हाथ में एक सुवर्ण का पात्र था जिसमें दूध का बना हुआ मधुर हविष्य था। उनने अपने हाथों से उठा कर उस पात्र को दशरथ के हाथ में दे दिया। वशिष्ठजी की आज्ञा से राजा ने तीनों रानियों को थोड़ा थोड़ा सा हविष्य खाने के लिए दे दिया। आधा भाग बड़ी रान ल्या को, एक चौथा हिस्सा अपनी परम प्यारी रानी कैकेयी को और एक चौथा हिस्सा कौशल्या तथा कैकेयी की प्यारी होने तथा राजा की पूर्ण आज्ञाकारिणी तथा सेवाकारिणी रानी होने के कारण सुमित्रा को दिया। वे उसे खाकर गर्भवती हो गयीं।

समय पाकर तीनों के पुत्र हुए। बड़ी महारानी कौशल्या के गर्भ से राम, कैकेयी के गर्भ से भरत और सुमित्रा के गर्भ से लक्ष्मण और शत्रुघ्न। सबसे बड़े राम, उनसे छोटे भरत, उनसे छोटे लक्ष्मण और उनसे छोटे शत्रुघ्न थे। इन चारों पुत्रों के उत्पन्न होने से दशरथ को जो अपार आनन्द हुआ उसका वर्णन होही नहीं सकता। आनन्द में मग्न हो कर राजा ने अगणित सुवर्ण, रौप्य, वस्त्र, अलंकार, अन्न, हाथी, घोड़े, गौ,

आदि पदार्थों को लुटा कर याचकों को निहाल कर दिया। चारों पुत्र बड़े ही सुन्दर और शुभलक्षण थे। राम और भरत सांवले, तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न गोरे थे। राम के साथ लक्ष्मण और भरत के साथ शत्रुघ्न विशेष रहने लगे। राम और भरत का स्वभाव कोमल, धर्मनिष्ठ, सात्विक और गम्भीर था। लक्ष्मण और शत्रुघ्न का स्वभाव उग्र, साहसी, क्षत्रियकुलोचित वीरता युक्त, और निर्भय था। चारों बड़े वीर और धार्मिक थे। इन लोगों के चरित्र का अनुकरण कर मनुष्य इस लोक में सुख तथा यश और परलोक में शान्ति लाभ कर सकता है। यद्यपि चारों ही सब प्रकार सुयोग्य थे, किन्तु रामचन्द्र में कुछ ऐसे विलक्षण गुण थे जिस कारण इनपर पिता, माता, समस्त परिवार तथा सारी प्रजा का विशेष अनुराग था। यद्यपि चारों भाइयों में बड़ा प्रेम था, किन्तु राम का लक्ष्मण से, और भरत का शत्रुघ्न से विशेष प्रेम हो गया था; इस लिए इन चारों को दो जोड़ियां बन गयीं। जब राम शिकार खेलने के लिए घोड़े पर चढ़ कर वन में जाते थे तब लक्ष्मण भी अस्त्रशस्त्र से सुसज्जित हो कर घोड़े पर चढ़ कर राम के पीछे हो चले जाते थे। इसी प्रकार भरत के पीछे सदा शत्रुघ्न रहा करते थे। राम के विना लक्ष्मण, और भरत के विना शत्रुघ्न एक क्षण भी नहीं रहते थे। एक के विना दूसरा स्नान, भोजन, शयन, गमन, पठन, पाठन, कुछ भी नहीं करता था। एकका दूसरा प्राण बन गया था। उचित समय पर उन लोगों को विद्यारम्भ कराया गया, शस्त्र-दीक्षा भी दी गयी और मुण्डन तथा यज्ञोपवीत आदि शुभ कर्म कराये गये। कुशाग्रबुद्धि

के शुभ संस्कार से वे चारों थोड़े ही दिनों में शस्त्र तथा शास्त्र दोनों विद्याओं में पारङ्गत हो गये। अब उन लोगों की अवस्था लगभग पन्द्रह वर्ष की हो गयी।

एक दिन श्रीमान् विश्वामित्र मुनि राजा दशरथ की सभा में आये। राजा उन्हें देख बहुत प्रसन्न हुए। बड़ी प्रीति और भक्ति से आदर सत्कार करने के बाद राजा दशरथ ने हाथ जोड़ कर मुनि-राज विश्वामित्र से आने का कारण पूछा और कहा—भगवन् कृपा करके आज्ञा दीजिये, मैं आपकी कौन सी सेवा करूं। आप जो आज्ञा देंगे उसे पूर्ण करने की मैं दृढ़ प्रतिज्ञा करता हूं, क्योंकि बड़े भाग्य से मेरे गृह पर आपका शुभागमन हुआ है। विश्वामित्र दशरथ की बात सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। उनने कहा—महा-राज! मैं आज याचक बन कर याचना करने के लिए आपके द्वार पर आया हूं। मैं यज्ञ करना चाहता हूं। मारीच और सुबाहु ये दोनों राक्षस बड़े दुष्ट हैं। ये सदा मुनियों के कार्य्यों में विघ्न किया करते हैं, इसलिए मेरा यज्ञ भी नष्ट कर देंगे। इसलिए मैं चाहता हूं कि मेरा यज्ञ किसी प्रकार पूर्ण हो जाय। यदि मैं चाहूं तो क्रोध से शाप देकर उन्हें भस्म कर डालूं, परन्तु मैं ऐसा करना नहीं चाहता। क्रोध करके शाप देने से किया हुआ तप और पुण्य नष्ट हो जाता है। मैंने बड़े कष्ट से तप करके पुण्य संचय किया है। मैं उसे नष्ट करना नहीं चाहता। इसलिए मैं चाहता हूं कि आप कृपा करके मेरे यज्ञ की रक्षा करने के लिए राम, लक्ष्मण को दे दीजिये। ये लोग जाकर विघ्न करनेवाले राक्षसों से युद्ध करके उनका नाश करेंगे और मेरा यज्ञ भी निर्विघ्न समाप्त हो जायगा।

यह वचन सुनते ही दशरथ डर से सूख गये, मानों उनपर वज्रपात हो गया। फिर हाथ जोड़ कर बोले, हे भगवान् मैं उन राक्षसों को भली भांति जानता हूं। वे बड़े भयङ्कर वीर हैं, उन्हें देवता भी नहीं जीत सकते। भला, मेरे परम सुकुमार अबोध बालक उनसे कैसे युद्ध कर सकेंगे? यदि आप आज्ञा दीजिये, तो मैं अपनी सारी सेना लेकर चलूं और उनसे युद्ध करूं, चाहे उन्हें मारूं या मारा जाऊं, किन्तु मैं अपने बालकों को नहीं दे सकता। मेरे बुढ़ापे में ये बालक उत्पन्न हुए हैं, इससे मेरे प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं।

दशरथ की बात सुनते ही विश्वामित्र ने क्रोध करके कहा—"महाराज! आपका जन्म रघुकुल में है, जो लोग वचन के लिए प्राण भी तुच्छ समझते थे। "रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाइ बरु वचन न जाई" तुलसी०। आप अपनी प्रतिज्ञा क्यों छोड़ते हैं? क्या आप नहीं जानते हैं कि प्रतिज्ञा भंग करने से महा पाप होता है? इसलिए चाहे राम लक्ष्मण शस्त्र-विद्या जानते हों चाहे न जानते हों, समर्थ हों या असमर्थ, उन्हें देना ही पड़ेगा। अथवा प्रत्यक्ष रूप से कह दीजिये कि मैं अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करूंगा।" इसी बीच श्रीवशिष्ठजी ने राजा दशरथ से कहा—"महाराज! आप दोनों कुमारों को निर्भय हो कर विश्वामित्रजी को सौंप दीजिये। ये दोनों जब तक विश्वामित्रजी के साथ रहेंगे तब तक इन्हें यक्ष, गन्धर्व, देव, दैत्य, राक्षस आदि कोई वीर नहीं मार सकता। ये महर्षि दोनों कुमारों को ऐसे ऐसे अस्त्र शस्त्र सिखलावेंगे कि जिन से ये दोनों त्रैलोक्य-विजयी हो जायंगे। विश्वामित्रजी के पास बला, अति बला, सुप्रभा, सम्मोहनी आदि अनेक ऐसी विद्याएं हैं

जिन्हें आज तक किसीने नहीं जाना। इनके साथ जाने में कुमारों की सब प्रकार भलाई हो है।" वशिष्ठजी का वचन सुनते ही दशरथ ने बड़े प्रेम के साथ राम, लक्ष्मण को बुलाया और ढाल, तलवार, तीर, धनुष तरकस, अंगुलित्राण (दस्ताना) आदि शस्त्रों से सुसज्जित कर विश्वामित्र के साथ कर दिया। तीनों चल निकले। आगे आगे विश्वामित्र और पीछे पीछे ये दोनों भाई चले जाते थे। उस समय की शोभा अवर्णनीय थी। जान पड़ता था कि शान्तरस के पीछे शृङ्गार और वीररस को जोड़ो चली जाती है। या यों समझिये कि अग्निदेव के पीछे सूर्य और चन्द्रमा चले जा रहे हैं या शिवजी के पीछे अश्विनीकुमार चले जाते हैं छः कोस चले जाने पर जब वे तीनों सरयू के दक्खिन तट पर पहुंचे तब विश्वामित्रजी ने कहा-"ऐ वत्स राम! हाथ में सरयू का पवित्र जल ले लो, देखो, मैं तुम्हें इस समय "बला" और "अतिबला' नाम की विचित्र विद्या देता हूं जिसके प्रभाव से तुम्हें कभी थकावट नहीं मालूम पड़ेगी, ज्वर न होगा, रूप ज्यों का त्यों बना रहेगा। तुम्हें सोते या जागते कभी कोई देव, दानव, गन्धर्व, या राक्षस नहीं जीत सकता। तुम्हारे समान किसीको बाहुबल नहीं होगा। जिस समय तुम बला और अतिबला का स्मरण करोगे उसी समय तुम्हें रण में कोई नहीं पराजित कर सकेगा। इन दोनों विद्याओं के प्रभाव से तुम सकल शास्त्र का ज्ञान भी प्राप्त कर लोगे जिससे कोई बात तुमको अज्ञात न रहेगी। इनके प्रभाव से तुम्हें कभी भूख या प्यास से पीड़ा भी न होगी। यद्यपि तुम स्वयं सर्वगुण-सम्पन्न हो तथापि मैंने बड़े कठिन तप से इन विद्याओं

को पाया है। ये लोक-पितामह की कन्याएं हैं। इनमें बड़ा अलौकिक तेज है। इसके ग्रहण करने योग्य तुम्हीं हो, इसलिए मैं तुम्हीं को दूंगा। तुम आदर के साथ इन्हें लेलो।" ऐसा कह कर विश्वामित्र ने राम को वे विद्याएं दे दीं। उनके लेते ही रामचन्द्र का तेज शरत्काल के सूर्य के समान देदीप्यमान हो गया। रात को सबोंने वहीं विश्राम किया। दूसरे दिन विश्वामित्र उन दोनों को वहां ले गये जहां मारीच की माता "ताड़का" नाम की यक्षिणी रहा करती थी। मुनि ने कहा—राम! यहां ताड़का यक्षिणी तपस्वियों को बड़ा दुःख देती है। इसे अवश्य मारो। मैं आज्ञा देता हूं। यह प्रजा को बड़ा कष्ट दे रही है। प्रजा की रक्षा के लिए इसका मारना तुम्हारा परम धर्म है। ऐसी पापिनी स्त्री के मारने से तुम्हें स्त्री-वध का पाप नहीं लगेगा। यदि पाप करने से या अनुचित कार्य्य करने से भी प्रजा की रक्षा हो सके, तो राजा विना विचारे वह कार्य करे। राजा का सर्वप्रधान धर्म, प्रजा की रक्षा ही है। बहुत से देवता तथा राजाओं ने प्रजा की रक्षा के लिए अनर्थकारिणी स्त्रियों का वध किया है। विश्वामित्र का वचन सुन कर राम ने बड़ी नम्रता से कहा—"भगवन्! अयोध्या से चलते समय पूज्य पिताजी ने मुझे आज्ञा दी है कि—'तुम विना विचारे ही मुनिराज विश्वामित्रजी की आज्ञा का पालन करना।' इसलिए मैं आपके आज्ञानुसार ताड़का का वध अवश्य करूंगा। ब्राह्मण और गौ की रक्षा के लिए तथा देश की भलाई के लिए आपके वचन का पालन करूंगा।" यह कह कर राम ने धनुष उठा कर घनघोर टङ्कार की। उसे सुनते ही महा-

विकराल रूप धारण कर वह ताड़का आ पहुंची और उसने पत्थर, धूलि, आदि पदार्थों से राम, लक्ष्मण को घेर लिया। राम ने तीखे तीखे बाणों से उसे मार गिराया। देवता और महर्षिगण राम को धन्य धन्य कहने लगे। और उन ऋषियों ने विश्वामित्र से प्रार्थना की कि—हे गुरु विश्वामित्र! आप कृपा करके इन्हें अपनी सारी अस्त्र-शस्त्र-विद्या सिखला दीजिये। इनसे बढ़ कर योग्य शिष्य आपको दूसरा नहीं मिल सकता।

दूसरे दिन प्रातःकाल विश्वामित्र ने नित्य कर्म करने के बाद रामचन्द्र को बुला कर कहा—"हे वत्स राम! आओ, मैं तुम्हें इन अस्त्रों को भी आज दे देता हूं, भक्तिपूर्वक प्रणाम कर ग्रहण करो। इन अस्त्रों के प्रभाव से अपने सब शत्रुओं को जीत लोगे। चाहे वे दैत्य हों, देवता हों, नाग हों या गन्धर्व हों। देखो, इन अस्त्रों के नाम सुनो—दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, इन्द्रचक्र, वज्रशूल, ब्रह्मशिरस्, ऐषीक, ब्रह्मास्त्र, मोदकी, तथा शिखरी गदा, धर्मपाश, कालपाश, वारुणपाश, शुष्क तथा आर्द्र दो प्रकार के वज्र, पैनाक, नारायण, अग्नि का परमप्रिय अस्त्र-शिखर, वायव्य, हयशिरस्, क्रौंच, दो शक्तियां (बर्छियां), कङ्काल, मुसल, कापाल, किङ्किणी, विद्याधर की नन्दन नामक तलवार, गन्धर्व का मोहन नामक अस्त्र, प्रस्वापन, प्रशमन; वर्षण, शोषण, सन्तापन, विलापन, मादन, मानव, पैशाच, तामस, सौमन, वहावल, संवर्त्त, मौसल, सत्यास्त्र, मायामय, सौर, तेजप्रभ, परतेजोपकर्षण, सोमास्त्र, शिशिर, त्वाष्ट्र, शीतेषु, और मानद। इन सभी अस्त्रों को मंत्रपूर्वक ग्रहण करो। यह कह कर विश्वामित्र ने

उन अस्त्रों का स्मरण किया। वे अस्त्र रूपवान् होकर रामचन्द्र के सामने आकर खड़े हो गये और हाथ जोड़ कर बोले—"हे राजकुमार राम! हम लोग आज से आपके किंकर हो गये। आप जब हम लोगों को जो करने के लिए कहेंगे तब हम लोग वह कार्य आपका कर देंगे।" रामने कहा—"अच्छा! तुम लोग जाओ जब मैं स्मरण करूं तब चले आना।" रामचन्द्र इन अस्त्रों के मिलने से बहुत प्रसन्न हुए।

अब विश्वामित्र ने विधिपूर्वक "यज्ञ का आरम्भ" किया, छः दिन में यज्ञ समाप्त हुआ। तब तक राम, लक्ष्मण तीर, धनुष ले कर विना अन्नजल किये ही यज्ञ की रक्षा करते रहे। अन्त में मारीच और सुबाहु पहुंचे और यज्ञ का नाश करने के लिए उत्पात करने लगे। राम ने कहा—'प्रिय भाई लक्ष्मण! तुम जबतक यज्ञ की वेदी के पास सावधान हो कर खड़े रहो, और मैं इन दोनों को वाणों से मार गिराता हूं।"

राम ने मारीच को ऐसा वाण मारा कि जिससे वह समुद्रतट में जा गिरा। सुबाहु को तो ऐसा कठिन वाण मारा कि जिसके लगते ही वह मर गया। इसके अनन्तर जितने राक्षस उनके साथ आये थे उन सबोंको मार गिराया। यज्ञ समाप्त करने के बाद विश्वामित्र ने दोनों भाइयों को आशीर्वाद दिया। फिर राम, लक्ष्मण मुनि से बोले—भगवन्! हम लोगों ने आपकी आज्ञा का पालन कर यज्ञ की रक्षा की। अब क्या आज्ञा है?

विश्वामित्र ने कहा—अब मेरे साथ तुम दोनों जनकपुर में धनुषयज्ञ देखने चलो। वहां से मेरे पास निमन्त्रण आया है। ऋषि,

मुनि, ब्राह्मण, राजे महाराजे, सभी उस यज्ञ में सम्मिलित होंगे। जनकराज के पास एक शिवजी का धनुष है; जो उसे तोड़ेगा उसी के साथ जनक की परम सुन्दरी कन्या सीता का विवाह होगा। जिसे वह मिलेगी मानो वह त्रिभुवनविजयी राजा समझा जायगा। चलो, देखें, ईश्वर यह प्रतिष्ठा किसे देता है! यह वचन सुनते ही दोनों मुनि के साथ चलने के लिए उद्यत हो गये। कुछ दूर जाने पर एक बहुतही सुहावना किन्तु निर्जन आश्रम देख पड़ा। देखते ही कौतुकवश राम ने विश्वामित्र से पूछा—गुरुवर! यह किसका आश्रम है और सुहावना होने पर भी निर्जन क्यों है?

ऋषि ने कहा—यह आश्रम महातपस्वी गौतम ऋषि का है। इनकी स्त्री अहल्या बड़ी रूपवती थी। उसके रूप से मोहित हो कर इन्द्र ने गौतम का रूप धारण कर उसका सतीत्व भ्रष्ट किया। गौतम ने इन्द्र को शाप दिया कि "तू नपुंसक हो जा" और अहल्या को शाप दिया कि "तू इस आश्रम में हजारों वर्ष पाषाण हो कर पड़ी रह। जब रामचन्द्र इस आश्रम में आवेंगे तब तू अपना रूप पा कर अपने पाप से छूट कर मेरे पास चली आवेगी।"

देखो, यह चट्टान अहल्या है, इसे अपने चरणों से स्पर्श करो। राम के स्पर्श मात्र से ही अहल्या अपने रूप में आ गयी! राम और लक्ष्मण ने मुनिपत्नी को प्रणाम किया। उसने भी अपना मोक्ष-दाता समझ कर इनका बड़ा आदर सत्कार किया। महात्मा गौतम भी तपोबल से यह समाचार जान कर वहां आ पहुंचे और बड़े आदर सत्कार से तीनोंका बड़ा स्वागत किया। अन्त

में गौतम अहल्या को लेकर तप करने के लिए किसी दूर आश्रम में चले गये और ये तीनों भी आगे बढ़े और धीरे धीरे मिथिला में पहुँच गये। जब इनके पहुंचने का समाचार जनकराज को मिला तब ये बड़ी भक्ति और प्रसन्नता से आ कर मिले। विश्वामित्र के साथ इन दोनों राजकुमारों को देख कर बहुत प्रसन्न हुए। इनका रूप सौन्दर्य तथा शील स्वभाव देख जनक गद्गद होकर बोले—ऐ मुनिराज! कृपा करके यह तो बतलाइये—ये दोनों कौन हैं? ये राजकुमार हैं या मुनिकुमार? इनके रूप से सौन्दर्य वीरता, साहस, बल, सच्चरित्रता, सुजनता, नम्रता, विद्या, गाम्भीर्य्य आदि सकल शुभगुण बिना कहे ही प्रगट हो रहे हैं। इन दोनोंमें परस्पर प्रेम भी ऐसा जान पड़ता है जैसे जीव और ब्रह्म में, या वसन्त और रतिपति में, या ज्ञान और विराग में। श्याम और गौर की यह जोड़ी बड़ी मनोहर जान पड़ती है। यद्यपि मैं विरागी, ज्ञानी तथा विदेह हूं तथापि मेरा मन इन्हें देख प्रीति और वात्सल्य से भरा जाता है।

विश्वामित्र ने कहा—ये दोनों रघुकुलतिलक, अयोध्यापति महाराज दशरथ के पुत्र हैं। मेरे यज्ञ की रक्षा के लिए मेरे आश्रम में आये थे। वहां इन्होंने मेरे यज्ञ की रक्षा की है और कई हज़ार राक्षसों का वध किया है। इनकी वीरता और विद्या प्रशंसा के योग्य है। कौतुकवश ये लोग धनुषयज्ञ देखने के लिए आये हैं। यदि आप इन्हें योग्य समझिये तो धनुष दिख-लाइये। जनकराज इन लोगों को टिका कर अतिथि-सत्कार करने के बाद राजभवन में चले गये। रामजी ने बड़ी नम्रता के

साथ विश्वामित्रजी से कहा—भगवन् ! लक्ष्मण जनकपुर देखना चाहते हैं; पर संकोच तथा भयवश आपसे नहीं कहते। यदि आज्ञा हो तो इन्हें दिखला लाऊं। विश्वामित्र की आज्ञा पा कर दोनों नगर देखने गये। वहां इन्हें देख नगर की नारियां बहुत प्रसन्न हुईं। और आपस में कहने लगीं कि "यदि ये दोनों कहीं क्षत्रिय के बालक हों और धनुष तोड़ डालें तो सीता का परम सौभाग्य है। जैसी सुन्दरी दुलही है, वैसेही सुन्दर ये दूलह हैं।" नगर के बालक तो इन्हें देख मोहित हो साथ हो लिये। और मधुर वचन कह कर नगर की रचना दिखलाने लगे। उनका अकारण प्रेम देख राजकुमार बहुत प्रसन्न हुए। और उन्हें बहुत कुछ तोषबोध देकर लौटाया और गुरुजी के पास आकर चुपचाप बैठ गये। सन्ध्या समय जान कर गुरु विश्वामित्र ने सन्ध्या-वन्दनादि नित्य-कर्म करने की आज्ञा दी। रात होने पर विश्वामित्र ने इन दोनों को अनेक प्रकार के उपदेश सुनाये। जब मुनिवर अपने आसन पर शयन करने के लिए गये तब दोनों भाई बड़े प्रेम और भक्ति के साथ उनके पैर दबाने लगे। ऋषि के सो जाने पर ये दोनों भी सो गये। प्रातःकाल होते ही मुनि से पहले ही ये दोनों उठे और नित्य कृत्य करके निश्चिन्त हो कर, गुरु को प्रणाम कर उनकी पूजा पाठादि नित्यक्रिया के निमित्त फूल लाने के लिए जनक की फुलवारी में चले गये। वहां जाकर रखवाले मालियों से पूछकर पत्तों का दोना बना कर विविध भांति के पुष्प तोड़ने लगे। इसी समय सीताजी सखियों के सहित गौरी पूजने के लिए उसी पुष्पवाटिका में पहुंचीं। वहां संयोगवश दूर ही से सीताजी ने राम, लक्ष्मण को

और इन दोनोंने सखियों के सहित सीताजी का पवित्र दर्शन किया और एकने दूसरेके रूप की मन ही मन बड़ी प्रशंसा की। आने पर राम ने विश्वामित्रजी से भी निश्छल तथा शुद्ध भाव से सब समाचार कह सुनाये।

दूसरे दिन बहुत बड़ी सभा हुई। उसमें देश देश के वीर आये! बीच सभा में धनुष लाया गया। सबोंने क्रमशः अपने अपने बल की परीक्षा को। पर वह धनुष किसीसे नहीं उठा। इस कारण जनकराज बहुत ही हताश हो कर बोले—"क्या इस भूमण्डल पर कोई ऐसा वीर नहीं है जो धनुष को उठा कर चढ़ावे और तोड़े? क्या यह मेरी प्रतिज्ञा योंही व्यर्थ हो जायगी? जान पड़ता है कि पृथ्वी निर्वीर हो गयी।" जनक का वचन सुन कर लक्ष्मण ने अपना पराक्रम दिखलाना चाहा, किन्तु रामजी ने संकेत से उन्हें ऐसा करने से रोका। अन्त में विश्वामित्र ने राम से कहा—"प्रिय वत्स! इस धनुष में सबके बल की परीक्षा हो गयी; उठो, देखो, यह धनुष कैसा है? क्या तुम इसे उठा सकते हो?" विश्वामित्र की आज्ञा पाते ही रामचन्द्र धनुष के पास चले गये।

मध्य सभा में समस्त सभासदों के सामने ही बिना प्रयास उस धनुष को उठाया, उसकी प्रत्यञ्चा (डोरी) चढ़ायी, और बड़े ज़ोर से खींचा, बड़ी भयानक टंकार की। बड़े वेग से खींचने के कारण वह धनुष टूट गया, जिससे पर्वत फटने के समान तथा मेघ गर्जन के समान घोर गम्भीर शब्द हुआ। जनक बहुत ही प्रसन्न हुए और राजसभा में सीता को बुलाया। सीता ने राम के कंठ में जयमाला पहरायी। नगर-नारियां आनन्द से मङ्गल गाने लगीं।

जनक ने अयोध्या में दशरथ के पास दूत भेज कर समाचार कहला भेजा और बारात सज कर लाने के लिए प्रार्थना की। यह समाचार पाकर थोड़े ही दिनों में दशरथजी बहुत बड़ी बारात लेकर जनकपुर आ पहुंचे। समय पर बारात दरवाज़े लगी, और शुभ समय पर विवाह-कार्य पूरा किया गया। जब रामचन्द्रजी का विवाह हो गया तब विश्वामित्रजी ने जनकजी से कहा कि रामचन्द्रजी का विवाह तो धनुष टूटने पर अवलम्बित था, इसलिए उस विवाह में आपको सम्मति की कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी, किन्तु सौभाग्यवश जैसा उत्तम कुल मिल गया वैसा अन्यत्र मिलना कठिन है। इस लिए मेरी इच्छा है कि यदि आपको पसन्द हो तो इन तीनों कुमारों का विवाह भी आप ही के घर में हो जाय। ऐसा करना बहुत ही अच्छा होगा।

जनक इस विचार से बहुत प्रसन्न हुए, और अपनी छोटी पुत्री "उर्मिला" का विवाह लक्ष्मण से करा दिया। और अपने लघु भ्राता कुशध्वज की प्रथम पुत्री "मांडवी" का विवाह भरत के साथ तथा उनकी द्वितीय पुत्री "श्रुतकीर्ति" का विवाह शत्रुघ्न से करा दिया। इस प्रकार चारों भाइयों का शुभ विवाह उन चारों बहिनों के साथ एक ही मंडप में आनन्दपूर्वक हो गया। इसके अनन्तर और सभी व्यवहार भोजन आदि विधिपूर्वक कराये गये। अन्त में दशरथजी अपनी सारी बारात लेकर नव वधुओं की विदाई करा कर अयोध्या को लौट चले।

रास्ते में परशुरामजी से भेंट हुई, उनने धनुष तोड़ने के कारण राम पर बड़ा क्रोध किया। बहुत देर तक विवाद होने

के बाद परशुराम ने कहा—यदि आप सचमुच विष्णु के अवतार हैं तो मेरा धनुष चढ़ाइये जिससे मेरा सन्देह दूर हो जाय। राम ने धनुष चढ़ा दिया। परशुराम अपराध क्षमा करा तप करने के लिए चले गये। दशरथ भी आनन्दपूर्वक घर लौट आये। यहां घर पर नित्य आनन्द बधावा बजने लगा और सुखपूर्वक दिन व्यतीत होने लगे।

अयोध्याकाण्ड

विवाह के बाद कैकयराज के पुत्र युधाजित् (भरत के मामा) भरत को लेने के लिए अयोध्या में आये। राजा दशरथ ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और भरत तथा शत्रुघ्न को कैकय देश में भेज दिया। यद्यपि राजा दशरथ का प्रेम चारों पुत्रों पर बराबर था मानो वे चारों एक शरीर से निकले हुए चार बाहु थे, तोभी राजा दशरथ का प्रेम राम पर विशेष था। कारण यह था कि राम में बहुत से प्रशंसनीय दुर्लभ गुण थे। राम सबसे अधिक रूपवान् थे, बल भी उनमें अधिक था, वह किसीकी निन्दा नहीं करते थे, उनके समान इस भूमण्डल पर दूसरा कोई नहीं था; स्वभाव बड़ा शान्त था, वह जब किसीसे बोलते थे तब बड़ोही कोमलता के साथ, यदि कोई उनसे कठोर वचन भी बोलता था तो भी वे उत्तर नहीं देते थे। यदि उनका कोई एक भी उपकार करता था तो वे उस उपकार को बहुत मानते थे। यदि कोई उनके सैकड़ों अपकार करता था तोभी वे उन अपकारों को भूल

जाया करते थे, उनका समय विशेषतः शस्त्रास्त्र शिक्षा ही में बीतता था। अवकाश मिलने पर व्यर्थ विनोद में वे अपना समय नहीं विताते थे वरन शीलवान्, ज्ञानवान् तथा वृद्ध पुरुषों के संगही में बैठ कर समय विताते थे। वे बड़े बुद्धिमान् थे, उनका वचन बड़ाही मीठा था। वे किसीसे मिलने पर पहले ही बोलते थे, वे कभी झूठ नहीं बोलते थे। अपने वृद्धों की बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। वे प्रजाओं पर प्रेम रखते थे और प्रजा उनपर प्रेम रखती थी। वे बड़ेही दयालु थे, उनके मन में तनिक भी क्रोध नहीं था। वे दीनों का मनोरथ पूरा किया करते थे। वे सदा वेदज्ञ ब्राह्मणों की सेवा करते थे। वे धर्म का स्वरूप जानते थे। उनकी ग्यारहों इन्द्रियां उनके वश में थीं, उनका चरित्र अत्यन्त शुद्ध था, अपने कुल की रीति के अनुसार अपने क्षात्रधर्म को बहुत अच्छा समझते थे, और क्षात्रधर्म के अनुसार शरणागत की रक्षा करना, दीनों का पालन करना, उचित समय पर दान करना आदि शुभकार्यों को अच्छा समझते थे। वीरक्षत्रियों को "सम्मुख रण में लड़कर प्राण देने से या शत्रु का प्राण हरण करने से स्वर्ग मिलता है" इस धर्मवाक्य पर उनका पूर्ण विश्वास था। निषिद्ध कर्मों में उनका प्रेम नहीं था। पाप की बात वे कभी नहीं सुनते थे, शास्त्र-सम्बन्धी विवाद में वे बृहस्पति के समान सुवक्ता थे। उनके शरीर में कोई रोग नहीं था। उनके शरीर की गठन अच्छी थी, वे देश और काल के ज्ञाता थे, कौन पुरुष सत्कार योग्य है और कौन पुरुष दण्ड योग्य है, इस बात को वे भली भांति जानते थे। वे सदा परोपकार किया करते थे। वे

सब विद्याओं के जाननेवाले थे, उनने छओं अंगों के साथ चारों वेदों को पढ़ा था, बाणविद्या में वे अपने पिता से भी अधिक चतुर थे, देवता-सम्बन्धी जितने अस्त्र थे उनके चलाने और खींचने में बड़े निपुण थे, उनके शरीर में सब शुभ लक्षण विद्यमान थे, उनके मन में कभी भय उत्पन्न नहीं होता था, वे कभी झूठ नहीं बोलते थे, उनका स्वभाव बड़ा ही कोमल था। धर्म जाननेवाले ब्राह्मणों से और नीति जाननेवाले वृद्धों से उनने पूरी शिक्षा ली थी। वे धर्म, अर्थ तथा काम का तत्त्व जाननेवाले थे, उनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी, समय पर उन्हें उचित बातें याद आ जाती थीं, वे लौकिक और शास्त्रीय दोनों रीतियों के जाननेवाले थे, उनके हृदय-गत भाव बहुत ही गुप्त थे, उनका मंत्र कभी प्रगट नहीं होता था, उनके बहुत से सहायक थे, उनकी कृपा और क्रोध कभी व्यर्थ नहीं होते थे। किस समय द्रव्य का व्यय करना चाहिए और किस समय द्रव्य का संचय करना चाहिए, इस बात को भी वे भली भांति जानते थे। गुरुजनों में उनकी दृढ़ भक्ति थी, वे कभी कोई बात भूलते नहीं थे, नीच पदार्थों का संग्रह नहीं करते थे, वे कठोर वचन नहीं बोलते थे, उनके शरीर में आलस्य नहीं था, उनकी बुद्धि स्थिर थी, वे अपने दोषों को और दूसरेके दोषों को भली भांति जानते थे। वे उपकार करनेवालों के कृतज्ञ थे, वे पराये मन का हाल जानते थे, वे अनेक भाषाओं के विद्वान् थे नाटक, त्रोटक, रूपक आदि दृश्य काव्य तथा इतिहास, पुराण नवरसात्मक महाकाव्य आदि श्रव्यकाव्यों के पूर्ण ज्ञाता थे। किस प्रकार धन का उपयोग करना चाहिए, धन किस लिए है, कितना धन किस कार्य में

लगाना चाहिए इत्यादि अर्थशास्त्रों के तत्त्वों को वे भली भांति जानते थे, व्यवहार में भी बड़े चतुर थे, शिल्पकला में भी उनकी अच्छी गति थी। विवाहिता धर्मपत्नी के साथ कैसा वर्त्ताव करना चाहिए यह बात भी वे जानते थे। घोड़े, हाथी, और रथ पर कैसे चढ़ना चाहिए और कैसे उसे चलाना चाहिए यह बात भी वे जानते थे। सेना को रचना कैसी होनी चाहिए यह कला भी उन्हें अच्छी तरह ज्ञात थी। देवता या दैत्य क्रोध करके उन्हें रण में पराजित करना चाहें तो कभी हो ही नहीं सकता था, क्योंकि वे सदा अजेय थे। दूसरेकी सम्पत्ति देख कर उन्हें दुःख नहीं होता था, अहंकार तो उनके शरीर में था ही नहीं, वे बाहरी आडम्बर नहीं करना चाहते थे, वे किसीका निरादर नहीं करते थे और कोई दूसरा उनका भी निरादर नहीं करता था। वे क्षमा में पृथ्वी के समान, बुद्धि में बृहस्पति के समान और बल में इन्द्र के समान थे। प्रजाओं की उनपर बड़ी भक्ति थी, पिता की उनपर कृपा थी, और परिवार की उनपर प्रीति थी। इस कारण वे किरणमाला धारण करनेवाले सूर्य के समान देदीप्यमान होते थे। ऐसे ही सर्वगुणपूर्ण पुरुष को यह गुणाभिलाषिणी पृथिवी और विजय-लक्ष्मी अपना पति बनाना चाहती है।

वृद्ध राजा दशरथ ने इन शुभ गुणों से भूषित अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को देखकर इन्हें अपने जीवन समय में ही युवराज बनाने की अभिलाषा की। उनके मन में उत्कण्ठा हुई कि कब ऐसा समय आवेगा कि मैं अपने पुत्र राम को राजतिलक से सुशोभित देखूंगा।

यह बात मन में सोच कर राजा दशरथ गुरु वशिष्ठ के पास पहुंचे। वहां जा कर राजा ने बड़ी श्रद्धा, भक्ति के साथ प्रणाम करने के बाद गुरुजी से कहा—भगवन्! आपकी कृपा से मेरे सब मनोरथ सिद्ध होते जाते हैं। अब केवल एक ही लालसा मेरे मन में रह गयी है। मेरे परम सुयोग्य पुत्र रामचन्द्र सब प्रकार राज्य करने के योग्य हो गये, मैं भी अब वृद्ध हो गया, इस लिए राज्य का सब भार पुत्र को सौंप कर तप करने की इच्छा हो रही है। मैं जहां तक जानता हूं प्रजा भी उनको युवराज बनाना चाहती है। वशिष्ठजी ने कहा, निस्सन्देह आपके प्रथम पुत्र रामचन्द्र सर्वगुण-सम्पन्न हैं, वे चन्द्रमा के समान प्रजा के आह्लाद देनेवाले, क्षमा करने में पृथ्वी के समान, बुद्धि में बृहस्पति के समान और बल में इन्द्र के समान हैं। वे सत्यवक्ता, प्रियवादी, स्थिरचित्त और बड़े बड़े विद्वान् वृद्ध तथा ब्राह्मणों की सेवा करनेवाले हैं। देव, दानव तथा मनुष्यों में जितनी विद्याएं हैं उतनी सब विद्याएं उनमें विद्यमान हैं, वे गान्धर्व (संगीत) विद्या में भी पूरे निपुण हो गये हैं। जब वे लक्ष्मण के साथ किसी रण में जाते हैं तो विना विजय किये नहीं लौटते। जब वे अपने भवन से बाहर निकलते हैं तब सब नगर-निवासियों, दासों, दासियों, बान्धवों, तथा अन्यान्य जनों से आत्मीय जनों के समान कुशल पूछते हैं और उनका कष्ट निवारण करते हैं। वे अवश्य प्रजापालन करने के योग्य हो गये हैं। वे इस पृथ्वी ही के नहीं वरन तीनों लोकों के राजा होने के योग्य हैं। आपके राज्य में जितने मनुष्य स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध, युवा रहते हैं वे सभी उनकी प्रशंसा

करते हैं और सभी चाहते हैं कि रामचन्द्र युवराज हों। इसलिए आप अब शीघ्र ही राम को राज्य-तिलक दे दीजिये। वसन्तऋतु भी आ गयी है और सुहावना चैत मास भी उपस्थित है, अब विशेष विलम्ब करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

वशिष्ठ जी की अनुमति ले कर राजा दशरथ अपनी राजसभा में आ बैठे और उनने अपने सब कर्म्मचारियों को राज्यतिलक की सामग्रियां इकट्ठी करने की आज्ञा दी। फिर राजदूत को रामचन्द्र को बुलाने के लिए भेजा। राजा दशरथ राजसभा में इन्द्र के समान विराजमान हो रहे थे और पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण देशों के सभ्य नृपति गण, म्लेच्छ राजा लोग, जंगली राजे, तथा पर्वतनिवासी राजे उन्हें घेर कर बैठे हुए थे। ऊंचे सिंहासन पर बैठे हुए राजा ने राम को आते देखा। वे मदमत्त गजेन्द्र के समान धीमी चाल से आ रहे थे, उनकी लम्बी भुजाएं जानु तक लटक रही थीं, उनका मुंह चन्द्रमा के समान प्रकाशित हो रहा था, उनके रूप और औदार्यगुणों से दर्शकों का चित्त मोहित हो रहा था। जिस प्रकार घर्म-तप्त मनुष्यों को छाया में शान्ति मिलती है उसी प्रकार प्रजा को रामचन्द्र के दर्शन से शान्ति मिलती थी। राजा तो उनको सदा देखा करते थे तो भी उन्हें तृप्ति नहीं होती थी। रामचन्द्र कैलाश पर्वत के समान ऊंचे प्रासाद पर पहुंचे और उनने अपना नाम कह कर बड़ी नम्रता के साथ हाथ जोड़ कर और सिर झुका कर पिता के चरणों की वन्दना की। राजा ने उन्हें बलपूर्वक अपने पैरों पर से उठा कर छाती से लगा लिया और रत्नजटित सुवर्ण सिंहासन पर बैठने की आज्ञा दी। बैठने के

बाद राजा ने कहा—हे प्रिय पुत्र राम! तुम मेरी बड़ी महारानी कौशल्या के पुत्र हो, तुम मेरे सब पुत्रों में बड़े हो, तुमने अपने विलक्षण गुणों से प्रजाओं को मोहित कर लिया है, इसलिए सारी प्रजा तुमको अपना राजा बनाना चाहती है, इन्हीं कारणों से मैं तुम्हें युवराज बनाना चाहता हूं। यद्यपि तुममें सभी अच्छे गुण हैं तोभी मैं जो उपदेश देता हूं उसे सुनो और सदा स्मरण रक्खो। "तुम अपनी नम्रता को और भी बढ़ा दो, अपनी इन्द्रियों को सदा वश में रक्खो, काम और क्रोध से उत्पन्न होने-वाले विकारों का त्याग करो, परोक्ष तथा प्रत्यक्ष भाव से प्रजा को भलाई करो, उन्हें अपने आचरणों से सदा प्रसन्न रक्खो, अपने अमात्यों को दान, सम्मानादि से अपने वश में रक्खो, कोश (खजाने) को अन्न, वस्त्र, अस्त्र, शस्त्र, आदि सामग्रियों से सदा परिपूर्ण रक्खो। जो धर्मपूर्वक पृथिवी का पालन करता है, वही इहलोक और परलोक में सुख पाता है।" 'फिर देखो मैं वृद्ध हो गया हूं, मैंने संसार के सब सुखों का पूर्ण रूप से उपभोग कर लिया, सैकड़ों यज्ञ किये, असंख्य ब्राह्मणों को अगणित दान दिये, शास्त्रों का अध्ययन किया, देवऋण, पितृऋण, तथा ब्राह्मण से ऋण उद्धार पा गया, तुम्हारे समान सुयोग्य पुत्र भी उत्पन्न हो गया अब और कोई कार्य करने के लिए बाकी नहीं है। मैं कुछ दिनों से नित्य दुःस्वप्न देख रहाहूं। इस लिए मेरे जीवन में सन्देह सा जान पड़ता है। जहां तक हो सके शीघ्र युवराज बन जाओ। न मालूम पीछे क्या हो, मनुष्य का मन सदा एक सा नहीं रहता। कल तुम्हें राजा बनाऊंगा। जाओ, धर्मपत्नी जानकी सहित नियम

पूर्वक कुशासन पर बैठ कर सब विधि-विधान करो।" ऐसा कह कर राजा ने राम को बिदा किया।

फिर महाराज दशरथ ने नगर में तैयारी करने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही मन्त्रियों ने सब तैयारियां करा दीं। उस समय के नगर की शोभा अवर्णनीय थी। राजा के महल में भी शोभा की कमी नहीं थी। कौशल्या इस शुभ-समाचार से आनन्दित हो कर धन-धान्य, वस्त्र-भूषणादि पदार्थ न्यौछावर करके याचकों को बांटने लगीं। सुमित्रा और कैकेयी भी बहुत प्रसन्न थीं। कैकेयी की एक कुब्जा दासी थी, उसका नाम मन्थरा था। वह स्वभावतः ऊंची अटारी पर चढ़ कर कुछ कार्य कर रही थी। अचानक उसकी नज़र नगर की शोभा की ओर पड़ी। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने जब लोगों से पूछा और उत्साह का कारण जाना तब उसे बड़ा शोक हुआ। वह तुरत ही कैकेयी के पास पहुंची और कहा—क्यों रानी! क्या तुम जानती हो कि नगर में इतनी तैयारियां क्यों हो रही हैं? सुना है? महाराज कल राम को राजतिलक देंगे! कैकेयी बहुत प्रसन्न हुई और उसने अपने गले से मोती का हार उतार कर कुब्जा को दे दिया और वह बोली, प्यारी मन्थरे! तुमने बड़े आनन्द का समाचार सुनाया है। मन्थरा यह बात सुनते ही क्रोध से भर कर आग हो गयी और उसने उस हार को लेकर भूमि पर पटक दिया। कैकेयी बड़े आश्चर्य से कहने लगी—"मन्थरे! आज तू इतनी खिन्न क्यों है? कुशल तो है न? कौन सी ऐसी विपत्ति आ पड़ी है जिससे तुझे इतना दुःख हुआ है?" मन्थरा ने कहा—रानी! यद्यपि तुम्हारा जन्म राजकुल में है तथापि तुम राज-

नीति की बात कुछ भी नहीं जानती। तुमको अपने पति के प्रेम का बड़ा अहङ्कार है, किन्तु तुम उनके हृदय की थाह नहीं पा सकती। वे मुंह से मीठा बोलते हैं, किन्तु उनके हृदय में कालकूट विष भरा है। उनका सबसे अधिक प्रेम कौशल्या ही पर है। कौशल्या ही की अनुमति से राजा ने भरत को ननिहाल भेज दिया है। तुमसे छिपा कर राम को राज्य दे रहे हैं। आज पन्द्रह दिनों से तैयारियां हो रही हैं; पर तुम्हें कुछ भी मालूम नहीं है। अब वह समय आ रहा है कि राम राजा होंगे, लक्ष्मण प्रधान मन्त्री होंगे, और भरत कैदी होकर जन्म भर कैदखाने में पड़े रहेंगे। तुम भी कौशल्या की दासी होकर रहोगी। सारी प्रजा कौशल्या को सिर झुकावेगी और तुम्हें कोई बात भी न पूछेगा। यदि कौशल्या की सेवा करोगी तो कुछ अन्न, वस्त्र मिल जायगा, नहीं तो भिक्षुकियों की तरह मुंह ताका करोगी। पति का प्रेम भी राजमाता समझ कर कौशल्या ही पर अधिक होगा। तुम पति को प्रियतम समझती हो, किन्तु फूलमाला के भ्रम से तुमने भयङ्कर विषधर सर्प को गले में लटका लिया है। अब तुम्हारे नाश में कुछ भी विलम्ब नहीं है।

कैकेयी ने कहा—मन्थरे! आज तुझे क्या हो गया है? तू आनन्द के स्थान में शोक क्यों कर रही है? मैं राम का स्वभाव जानती हूं। वे भरत से भी अधिक मेरे प्रिय और आज्ञाकारी हैं। वे मुझे अपनी माता कौशल्या से भी अधिक समझते हैं और भक्ति करते हैं। मैं राम, भरत में कुछ भेद नही समझती। मैं इस कार्य से बहुत प्रसन्न हूं। तू क्यों घरफोरी बात कह रही है? क्या सत्य ही इस

में कुछ भेद है? तुझ पर मेरा विश्वास है। तू मेरी हितकारिणी दासी है और सखी भी तू ही है। इसी लिए मैं बार बार पूछ रही हूं। मेरा स्वभाव बड़ा सीधा है, मैं छल कपट की बात कुछ भी नहीं समझती।

मन्थरा ने कहा, रानी! तुम सचमुच बड़ी सीधी हो या यों कहना चाहिए कि तुम बड़ी मूर्ख हो। तुम शोक के स्थान में हर्ष करती हो, तुम शोक के समुद्र में डूब गयी हो, पर अपनेको नहीं जानती। मैं तुम्हारी अवस्था देख मनमंन हंस रही हूं, क्योंकि तुम दुःख के स्थान में सुख प्रकट करती हो। राम के राज्य मिलने से लक्ष्मण को कुछ भय नहीं है। भय है केवल भरत को, क्योंकि वे भी तो अपनी माता के बड़े ही पुत्र हैं। सौभाग्यवती कौशल्या ही समझी जायंगी, जिनका पुत्र युवराज हो रहा है। अब सब ऐश्वर्य उन्हींके साथ रहेंगे, अब तुम भी कौशल्या के सामने हाथ जोड़ कर दासी के समान प्रार्थना करोगी। अब तुम मेरे ही समान दासी समझी जाओगी और तुम्हारे भरत राम के दास समझे जायंगे। अब राम की स्त्रियां प्रसन्न होंगी और भरत की स्त्रियां विषाद करेंगी। रानी! और बातें जाने दो, एक बात खूब सोच विचार कर देखो। रामचन्द्र राजा होंगे, उनके बाद उनका पुत्र राजा होगा, फिर उनका पौत्र राजा होगा, उसके बाद उनका प्रपौत्र राजा होगा। ऐसे ही होते होते राम की वंश-परम्परा में राज्य स्थिर हो जायगा और भरत से या उनकी वंश-परम्परा से राज्य का सम्बन्ध ही टूट जायगा। राजा के सब लड़के राजा नहीं हो सकते। राजा केवल बड़ा ही पुत्र होता है। यदि सभी पु

राजा हो जायं तो बड़ा अनर्थ हो जाय। इसीलिए बड़ा ही पुत्र राजा बनाया जाता है, चाहे वह गुणी हो या निर्गुण। यदि संझले, संझले और छोटे गुणी हों तो भी उन्हें राज्य नहीं मिलता। इसी लिए मैं कहती हूं तुम्हारा पुत्र अब राजकुल से अलग हो रहा है, वह अब अनाथों के समान दुःखी हो जायगा। मैं तुम्हारी भलाई को बातें कहती हूं और तुम मेरा निरादर कर रही हो। कोई राजा हो, मेरा कुछ हानि नहीं है, मैं सदा दासी ही रहूंगी, मुझे रानी होने को नहीं है। याद रक्खो, सौत से आज तक किसीकी भलाई नहीं हुई। यह निश्चय समझो, जिस दिन राम राजा हो जायंगे उसी दिन उनका सब प्रेम नष्ट हो जायगा। वे अपना राज्य निष्कण्टक करने के लिए या तो भरत को बन्दी बना कर बन्दीगृह (कैदखाने) में भेज देंगे या उनको मार डालेंगे। देखो, बाल्यकाल ही में तुमने भरत को मामा के घर भेज दिया है। समीप रहने से वृक्षलताओं को भी परस्पर प्रेम हो जाता है। भरत के चले जाने से शत्रुघ्न भी चले गये। राम के रहने से लक्ष्मण भी यही हैं; इस कारण राजा को राम, लक्ष्मण पर अधिक प्रेम है। ये दोनों भी आपस में बहुत प्रेम करते हैं। राम, लक्ष्मण की, और लक्ष्मण राम की सदा रक्षा करते हैं। इस कारण निश्चय है कि राम, लक्ष्मण की कुछ बुराई नहीं करेंगे, किन्तु भरत की बुराई अवश्य करेंगे। इसलिए मैं चाहती हूं कि राम घर में न रहने पावें, उन्हें राज-भवन से निकलवा ही देना अच्छा है। इसीमें भरत की और उन के पक्षवालों की भलाई है। नहीं तो निश्चय ही भरत की मृत्यु समझो। सिंह के समान राम, गज के समान भरत का बध करने के

लिए उद्यत हो गये हैं, अब मेरे बताये हुए उपायों से भरत की रक्षा करो। तुमने अपने सौभाग्य के घमण्ड से कई बार कौशल्या का निरादर किया है, अब कौशल्या उसका बदला अवश्य लेगी। मैंने तुम्हारा बहुत अन्न खाया है और तुम्हारी कृपा से बहुत सुख पाया है, इसलिए मैंने तुम्हारी भलाई की बातें बहुत सोच विचार कर कही हैं; अब तुम्हें जो अच्छा जान पड़े वह करो। यदि तुम को मेरी बातों पर विश्वास हो गया हो और तुम अपनी इस मनोरथ-सिद्धि का उपाय पूछो तो बता सकती हूं। नहीं तो जाकर चुपचाप बैठती हूं, जो तुम्हारे भाग्य में लिखा होगा वही होगा।

मन्थरा की यह बात सुनते ही कैकेयी की आंखें खुल गयीं, उसको मन्थरा की बातों पर पूरा विश्वास हो गया। उसने कहा—सखी मन्थरे! तू मेरी प्यारी दासी है, अब शीघ्र बता कौन सा उपाय करूं जिससे मेरा पुत्र राजा हो, और राम बनवासी हों? मन्थरा ने कहा—रानी! क्या तुम्हें वह बात भूल गयी जो महाराज के रथ का धुरा टूट जाने पर देवासुर संग्राम में तुमने महाराज दशरथ की सहायता की थी और उनने तुमको दो वरदान करने की प्रतीज्ञा की थी? वे दोनों वर ज्यों के त्यों पड़े हैं, तुम एक वर से भरत का चतुर्दश वर्ष राज्य और दूसरे से रामचन्द्र का चतुर्दश वर्ष वनवास मांग लो। अच्छा, अब मांगने का उपाय बताती हूं। महाराज के आने के कुछ समय पहले ही तुम मलिन वस्त्र धारण कर कोपभवन में जाकर भूमि पर सो रहो, जब तुम्हारे पति तुम्हें ढूंढ़ते ढूंढ़ते तुम्हारे पास जा पहुंचें तब तुम उनकी तरफ न देखो, न उनसे बोलो, केवल रोती रहो।

मैं अच्छी तरह जानती हूं वे तुम्हें बहुत प्यार करते हैं, वे तुम्हारी प्रसन्नता के लिए अग्नि में प्रवेश कर सकते हैं, और प्राणत्याग भी कर सकते हैं। तुम्हारी बात टालने की उनमें शक्ति नहीं है। यदि वे सुवर्ण, रत्न, मणि, माणिक्य, भूषण, आदि का लोभ दिखावें तो तुम उस लोभ में न पड़ो, केवल अपने उन्हीं दोनों वरों के लेने का हठ करो। यदि राम चौदह वरस वनवास करेंगे और भरत राज्य करेंगे तो सारी प्रजा भरत के वश में हो जायगी, फिर राम लौट कर भी कुछ न कर सकेंगे। उन्हें कोई बात भी न पूछेगा। यह वचन सुनते ही कैकेयी बहुत प्रसन्न हुई और उसने मन्थरा के उपदेशानुसार सब कार्य किये।

दशरथ प्रति दिन के समान ही नियत समय पर कैकेयी के भवन में पहुंचे। उनने वहां कैकेयी को न देख कर मन्थरा से पूछा। उसने कहा—महाराज! आप सीधे कोपभवन में चले जायं, वहीं महारानी कैकेयी का दर्शन हो जायगा। राजा सुनते ही डर गये और धीरे धीरे दबे पांव वहां पहुंचे। कैकेयी का वेष देख कर राजा ने इस क्रोध का कारण पूछा। बहुत प्रार्थना करने के बाद कैकेयी बोली—मैं आपके हृदय की थाह पा गयी, आपके प्रगट प्रेम का पता लग गया, आपने जो दो वर देने के लिए कहे थे वे आज तक क्यों नहीं दिये? आप सरीखे धर्मात्मा को झूठ बोलना उचित नहीं है। असत्य के समान दूसरा कोई बड़ा पाप नहीं है। सत्य की महिमा वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, इतिहास आदि सभी ग्रन्थों में लिखी है। शिवि, दधीचि, बलि आदि धर्मात्माओं ने सत्य की रक्षा के लिए कितने कष्ट सहे थे।

शिवि ने अपना मांस, दधीचि ने अपनी हड्डी, और बलि ने अपना सारा राज्य दे दिया था। दशरथ ने कहा—तुम्हें जो मांगना हो वह मांग लो। यदि मैं न दूंगा तो फिर जो इच्छा हो वह करना। कैकेयी प्रसन्न होकर बोली—ऐ प्राणनाथ! मेरे दो मनोरथ हैं, उन्हें पूर्ण कीजिये। एक वरदान तो मैं यह चाहती हूं कि जिन सामग्रियों से आप राम को राज्य देना चाहते हैं उन्हींसे भरत को राज्य दीजिये और दूसरा वरदान यह मांगती हूं कि राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास दीजिये।

यह वचन सुनते ही राजा दशरथ आश्चर्य और शोक में डूब गये और बोले—प्रिये, तू आज क्यों ऐसा कठोर वचन कह रही है? क्या तू यह नहीं जानती कि मेरे जीवन के आधार राम ही हैं? यह सारा संसार सूर्य के विना ठहर सकता है और खेती जल के विना हो सकती है, किन्तु मैं राम के विना नहीं जी सकता। तू भी राम की सदा प्रशंसा करती है, और उन्हें भरत से अधिक प्यार करती है, तो उनने कौन सा ऐसा अपराध किया है जिससे तू अप्रसन्न होकर उन्हें वनवास दे रही है? मेरे अन्तःपुर की जितनी स्त्रियां हैं सभी राम की प्रशंसा करती हैं। वह राम सत्यता से सारी प्रजा को, दान से ब्राह्मणों को, सेवा से गुरुजनों को, और अपने धनुष से रण में वीर शत्रुओं को प्रसन्न करता है। देख, राम में सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, निष्कपटता, पवित्रता, कोमलता, अहिंसा, क्षमा, विद्या, गुरुसेवा आदि सभी गुण विद्यमान हैं। मैं तेरे पैरों पर पड़ कर प्रार्थना करता हूं कि तू यदि कह तो तुझे सारी पृथिवी में उत्पन्न होनेवाले पदार्थ दे दूं, पर राम

को वनवास देने को इच्छा न कर। कैकेयी ने कहा—यह कभी नहीं हो सकता कि राम राजा होगा और मैं झुक कर उसकी माता को प्रणाम करूंगी। तुम्हें धर्म हो या अधर्म, किन्तु राम को वन में अवश्य भेजना होगा। यदि राम राजा बनाया जायगा तो मैं तुम्हारी आंखों के सामने ही विष खाकार प्राण त्याग कर दूंगी। यह सुनते ही राजा को बड़ा क्रोध हो गया, उनने कहा—तू बहुत बड़ी पापिनी है और मुझे सत्य के पाश में बांध कर मारना चाहती है। क्या इससे तुझे कुछ लाभ होगा? तू ही बता, जब मेरे गुरुजन राम के वनवास का कारण पूछेंगे तो मैं क्या उत्तर दूंगा? फिर कौशल्ला के समान पतिव्रता स्त्री के पुत्र को बिना अपराध ही घर से क्यों निकाल दूं? जब जब कौशल्या दासी के समान, सखी के समान, पत्नी के समान, भगिनी के समान, और माता के समान मेरी सेवा करती है तब तब मैं तेरे ही कारण उसका निरादर करता हूं, यद्यपि वह सदा मुझे प्यार करती है और मधुर वचनों से मुझे प्रसन्न करना चाहती है। जिस प्रकार अपथ्य भोजन करना रोगी को दुख देता है, उसी प्रकार राम का वनवास मुझे क्लेश पहुंचा रहा है। निश्चय है कि राम के वन चले जाने पर मेरी मृत्यु हो जायगी और तू विधवा होकर पुत्र को राजसिंहासन पर देखेगी। मेरे मरने पर और राम, लक्ष्मण के वन चले जाने पर कौशल्या और सुमित्रा का भी शरीरान्त होना निश्चय है। तब तू भली भांति सुखी हो जायगी। अच्छा, एक बात याद रख—यदि भरत इस राज्य को पाकर प्रसन्न हो तो वह मेरे मरने पर मेरा दाह, पिण्ड,

तर्पण आदि प्रेतकृत्य न करे। तू ही सोच, जो राम हाथी, घोड़े और रथ पर चढ़ कर यात्रा करते थे वे पांव प्यादे कैसे चलेंगे! जब वे भोजन करने बैठते थे तब सुवर्ण भूषणों से भूषित रसोईदार लोग बड़े उत्साह से उन्हें अन्न जल खिलाते पिलाते थे। वे ही राम अब जङ्गली फल कैसे खायंगे और पहाड़ी नदियों के कड़ुए कसैले जल कैसे पीयेंगे? फिर जो अमूल्य रेशमी वस्त्र धारण करते थे वे वृक्षों के रूक्ष वल्कल कैसे धारण करेंगे! तेरी जैसी अविवेकिनी स्त्री को कोटि धिक्कार है! अब मैं तेरा मुंह भी देखना नहीं चाहता।

कैकेयी ने कहा—जब आपको वर देने की इच्छा ही नहीं थी तब आपने प्रतिज्ञा क्यों की? सत्य का त्याग करना उचित नहीं है। सत्य ही परम धर्म है, सत्य ही परम तप है, सत्य से बड़ा कोई पदार्थ नहीं है। अलर्क ने सत्य ही की रक्षा के लिए अपने नेत्र निकाल कर ब्राह्मण को दे दिये। समुद्र सत्य ही को रक्षा के लिए अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता। सत्य ही प्रणव रूप ब्रह्म है, सत्य ही में धर्म रहता है, सत्य ही चारों वेद है और सत्य ही से मोक्ष मिलता है। यदि आप धर्मात्मा हैं तो सत्य को धारण कीजिये। अपने वर को सत्य करने के लिए राम को वनवास दीजिये। मैं तीन बार कहती हूं, मुझे ये ही वर चाहिएं, दूसरा कुछ भी नहीं। यदि ये दोनों वर नहीं दीजियेगा तो मैं आपके सामने ही प्राण त्याग कर दूंगी।

कैकेयी की बातें सुन कर दशरथ ने समझ लिया कि यह राक्षसी अपना हठ नहीं छोड़ेगी और जब कि मैं उसे वर देने की

प्रतिज्ञा कर चुका हूं तब प्रतिज्ञा-पालन करना ही होगा, फिर इस प्रतिज्ञा के पालन करने में मेरे प्राण अवश्य ही नष्ट हो जायंगे। जान पड़ता है कि अन्ध मुनि का शाप अवश्य सत्य होगा और इसी पुत्र-विरह से मेरी मृत्यु होगी।

इसी प्रकार रानी के वादविवाद में भोर हो गया। सुमन्त्र राजा के दर्शन के लिए और आज्ञा पा कर तिलक की तैयारी करने के लिए आये। यहां आकर सुमन्त्र, राजा का रूप देखते ही डर गये और उनने राजा से कुशल-समाचार पूछा। कैकेयी ने उत्तर दिया—"महाराज से कुशल पीछे पूछना, पहले रामचन्द्र को बुला लाओ।" आज्ञा पाते ही सुमन्त्र रामचन्द्र को बुला लाये। राम को देखते ही दशरथ के नेत्रों से आंसू की धारा बह चली। राम के चित्त में बड़ा क्लेश हुआ और वे सोचने लगे कि—"मुझसे कौन सा ऐसा घोर अपराध हो गया है जिससे पिताजी मुझसे सम्भाषण तक नहीं करते हैं। पहले तो जब मैं आता था तब पिता जी देखते ही प्रसन्न हो जाते थे, किन्तु आज तो मुझे देख रो रहे हैं। अन्त में राम ने कैकेयी से पिता के शोक का कारण पूछा। कैकेयी ने कहा—तुमने कभी कोई अपराध नहीं किया है, किन्तु अब ऐसा उपाय करो जिससे चौथे पन में महाराज को तुम्हारे कारण अपयश न हो। राजा के दुःख का कारण सुनो, फिर जैसा उचित जान पड़े वैसा करो। देखो, राजा के पास मेरे दो वर धरोहर (थाती) थे, मैंने उन्हें कल मांगा है। एक वर से भरत का राज्य और दूसरे से तुम्हारा चौदह बरस वनवास; अब तुम्हें जो उचित जान पड़े वह करो। किन्तु यह बात पिता संकोचवश तुमसे नहीं कह सकेंगे।

सुनते ही राम ने कहा—छिः इसी छोटी सी बात के लिए पिता जी को इतना कष्ट हुआ है! धिक्कार है मुझे! मैं तुरत ही वन जाता हूं। तनिक मैं अपनी माता कौशल्या से भी यह बात जना दूं। पिताजी! आप दुःखी क्यों होते हैं? क्या मैं आपका आज्ञाकारी पुत्र नहीं हूं। मैं आपकी आज्ञा से आग में कूद सकता हूं, हलाहल विष पी सकता हूं, और अगाध समुद्र में भी डूब सकता हूं। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं आपकी आज्ञा का अवश्य पालन करूंगा। राम जो एक बार कह देता है वही करता है। राम दुबारा नहीं बोल सकता। उस पुत्र का जन्म धन्य है जिसका चरित सुन कर पिता को आनन्द होता है। उसके हाथ में चारों पदार्थ हैं जो माता, पिता को प्राण के समान प्रिय समझता है। मैं पिता की आज्ञा से अपनी प्यारी स्त्री सीता, राज्य, प्राण, और धन सभी भरत को सौंप देता हूं। पिताजी को समझा दो, वे क्यों भूमि की ओर दृष्टि करके आंसू बहा रहे हैं। मुझे यह देख बड़ा कष्ट होता है। दूसरा कष्ट यह है कि पिताजी अपने मुंह से ये बातें क्यों नहीं कहते। भरत को आज ही बुला कर राज्य दे दो, देखो, मैं अभी दण्डकारण्य जा रहा हूं। मैं धन और राज्य का लोभी नहीं हूं। मुझे मुनियों के समान त्यागी समझो।

ऐसा कह कर राम कैकेयी के मन्दिर से बाहर निकले और उनने छत्र, चामर आदि अपने राज्य चिह्नों को अलग करके अपनी माता कौशल्या के भवन में पहुंच कर प्रणाम किया और कहा—माता! आज पिताजी ने मुझे चौदह बरस के लिए वनवास

करने की आज्ञा दी है। अब मैं अयोध्या के बदले वन का राजा होऊंगा। तुम प्रसन्नता से मुझे बन जाने की आज्ञा दो। कौशल्या सुनते ही आश्चर्य और शोक में डूब गयी। उसने कहा—प्रियपुत्र! यदि यह बात सत्य है तो मैं अब कैसे जी सकती हूं? मैं तुम्हारा ही मुख देख कर कैकेयी के कठोर वचनों और पति के असहनीय तिरस्कारों को सहती आ रही हूं, अब कैसे सहन कर सकूंगी? तुम्हारे यहां रहने पर तो मेरी यह दुर्दशा है, फिर तुम्हारे चले जाने पर तो मृत्यु ही हो जायगी। पति का मुझपर प्रेम नहीं है, इसीलिए कैकेयी मुझे कष्ट देती है। वह मुझे दासियों से भी अधिक हीन समझती है। जो दास दासियां मेरी सेवा करती हैं, वे भरत के राजा होने पर सम्भाषण भी नहीं करेंगी। कैकेयी सदा हृदय-वेधी कठोर वचन बोलती है। हा! उसका वह क्रोध-पूर्ण रुक्ष मुख कैसे देखूंगी? अच्छा होता यदि तुम अपने साथ लेते चलते।

यह समाचार सुन कर लक्ष्मण भी वहीं पहुंच गये और कौशल्या का विलाप सुन कर क्रोध कर बोले—माता! तुम क्यों अधीर हो रही हो? देखो, राजा कामी हो गये हैं, उनकी अवस्था बुड्ढी हो गयी है, वे जो कुछ कहें सब ठीक ही है। इस जगत् में कोई ऐसा नहीं हैं जो राजा को दोषी न समझता हो। देखो, राम ऐसे गुणी पुत्र को जो वनवास दे रहा है उसकी बुद्धि की थाह लग गयी। मेरी राय है कि भरत के आने के पहले ही रामचन्द्र मेरी सहायता से इस राज्य पर अधिकार कर ले। जब कि मेरे हाथ में तीर, धनुष है तब कौन ऐसा वीर है जो राम को

जीत सकें ? यदि कोई मेरा शत्रु हो कर खड़ा होगा तो मैं सारी अयोध्या को इन्हीं तीखे बाणों से निर्जन कर दूंगा। यदि कोई भरत की ओर हो कर राम का नाश करने की इच्छा करेगा तो कोई हो, उसका अवश्य वध करूंगा। यदि पिता कैकेयी की अनुमति से हमलोगों के शत्रु बन रहे हैं तो वे भी वध के योग्य हैं। यदि गुरु भी अहंकारवश कुछ अनुचित कार्य करें तो उन का शासन करना अत्यन्त ही उचित है। कौन ऐसा वीर है जो हमलोगों से विरोध करके भरत को राज्य दे दे ? जो निर्बल और विवश होते हैं वेही भाग्य को प्रधान मानते हैं, किन्तु जो वीर हैं और आत्मबल पर विश्वास रखनेवाले हैं वे कभी भाग्य को प्रबल नहीं मानते। जो पराक्रम द्वारा भाग्य को जीत लेते हैं वे कभी दुःखी नहीं होते। सब लोग आज यह देखेंगे कि दैव और पौरुष में कौन बड़ा है। समस्त लोकपाल भी राम-राज्याभिषेक नहीं रोकते, फिर पिता क्या चीज़ हैं ? जिन लोगों ने राम को बनवास देने की अनुमति दी है वे ही चौदह बरस बनवास करेंगे। ऐ पूज्य भ्राता ! आप अपने राज्याभिषेक की तैयारी में लग जायं। मैं अकेले ही विरोधी राजाओं को रोकूंगा। ये मेरी दोनों भुजाएं शोभा के लिए नहीं हैं, यह धनुष कोई भूषण नहीं है, यह तलवार लटकाने के लिए नहीं है, और ये तीरें तरकस भरने के लिए नहीं हैं। ये चारों चीजें शत्रुओं का मान मर्दन करने के लिए हैं। जब मैं अपनी तीखी तलवार म्यान से निकाल लूंगा तब हाथी, घोड़े और सैनिकों के कटे हुए हाथ, सिर तथा पैरों से सारी पृथ्वी भर जायगी।

कौशल्या ने कहा—यदि धर्म के लिए पिता की आज्ञा मानकर वन जाते हो तो मैं तुम्हारी माता हूं और आज्ञा देती हूं कि घर में ही रहो, वन में न जाओ। क्या माता का दर्जा पिता से कम है? बस, मेरी यही आज्ञा है कि घर में रहो और मेरी नित्य सेवा करो। काश्यप नियम पूर्वक माता की सेवा करने ही से स्वर्ग में चले गये। जैसे तुम्हारे पिता पूज्य हैं वैसी ही मैं तुम्हारी माता भी पूज्य हूं। मैं आज्ञा देती हूं कि वन में न जाओ; यदि तुम मुझे छोड़ कर वन जाओगे तो मैं जी नहीं सकूंगी।

राम ने कहा—ऐ माता! मैं अच्छी तरह जानता हूं कि माता, पिता से अधिक पूज्य हैं; किन्तु मैं पहले ही पिता से वचन पालने की प्रतिज्ञा कर चुका हूं। यदि पहले तुम्हारी आज्ञा होती तो मैं उसीका पालन करता। फिर तुम पतिव्रताओं में अग्रगण्या हो, तुम्हें भी वही करना चाहिए जिसमें पिताजी को प्रसन्नता हो। इसलिए तुम विघ्न न करो। फिर राम ने लक्ष्मण से कहा—ऐ प्रियवत्स लक्ष्मण! देखो, इस समय क्षत्रिय धर्म का अनुसरण मत करो। पिता के साथ वीरता करने में कुछ प्रतिष्ठा नहीं है, वरन नीचता है। इस समय मेरी बुद्धि और विचार का अनुसरण करो। लक्ष्मण को सान्त्वना देने के बाद फिर राम ने कौशल्या से कहा—माता! मैं अपने प्राणों की शपथ दिलाता हूं तुम मुझे जाने की अवश्य आज्ञा दो। तुम, हम, लक्ष्मण, सीता, सुमित्रा और सब सेवकों को उचित है कि वे सभी मेरे पिता की आज्ञा का पालन करें। मैं जब वल्कल धारण कर तपस्वी के वेष में वन चला जाऊंगा तब कैकेयी को बड़ी प्रसन्नता होगी, फिर उसीको

प्रसन्नता से पिताजी को भी प्रसन्नता होगी। ऐसी अवस्था में वनवास ही मेरे लिए श्रेष्ठ है।

इस प्रकार माता को समझा बुझा कर राम जानकी के घर में पहुंचे। जानकी राम का वेष देखते ही आश्चर्य में डूब कर पूछने लगी—नाथ ! आज यह आपकी कैसी अवस्था है ? मैंने सुना था कि आज आप राजा बनाये जायंगे, किन्तु आज तो आपके सिर पर दूध के फेन के समान स्वच्छ तथा श्वेत सा कमानीवाला छत्र नहीं देख पड़ता ! आज आपके मुख के दोनों भागों में दोनों धवल चामर क्यों नहीं विराजमान हैं ? सूत, मागध, वंदी आदि जन आज आपके आगे आगे विरुदावली पढ़ते नहीं देख पड़ते ! जो हो, आज आपकी वह भुवनमोहिनी मुखशोभा भी नहीं विराजता। कृपा कर इसका कारण शीघ्र बताइये।

राम ने कहा—मेरे सत्यवादी पिता ने कैकेयी को दो वर दिये थे। कैकेयी ने एक वरदान से भरत का राज्य और दूसरे वरदान से मेरा वनवास मांगा है। इस लिए मेरे पिता ने मुझे चौदह वरसों के लिए वनवास दिया है। मैं तुमसे अनुमति लेने के लिए आया हूं। मैं पिता की आज्ञा अवश्य पालन करूंगा। मेरे लिए तुम चिन्तित न होना। सास, ससुर की भक्तिपूर्वक सेवा करना। भरत को भी प्रसन्न रखना, क्योंकि अब वे राजा होंगे। उनके सामने कभी मेरी बड़ाई न करना। बड़े लोग दूसरेकी प्रशंसा नहीं सहन कर सकते, इसलिए भूल कर भी भरत के सामने मेरी प्रशंसा नहीं करना। पिता ने उनको राज्य दिया है, इस लिए उनकी प्रजा बन कर इस गृह में निवास करना। मैं आज ही

वन में जा रहा हूं। तुम अपना चित्त सदा स्थिर रखना। मेरे चले जाने के बाद तुम सदा व्रत, उपवास आदि नियम करना। प्रातःकाल उठ कर स्नानादि नित्य कर्म करके देवपूजन करना, उसके बाद पिता दशरथ को प्रणाम करना। इसके बाद परम दुःखिनी मेरी माता कौशल्या को प्रणाम तथा भक्तिपूर्वक उसकी सेवा करना। फिर मेरी दूसरी माताओं से भी यथाशक्ति प्रेम रखना। भरत के प्रतिकूल कोई कार्य न करना। वे सारे देश और कुल के राजा हैं। जब राजा भक्ति से पूजित होते हैं और परिश्रम से सेवित होते हैं तब प्रसन्न होते हैं, नहीं तो तुरत ही अप्रसन्न हो जाते हैं। राजा लोग आज्ञा उल्लंघन करने पर पुत्र का भी त्याग कर देते हैं, और आज्ञाकारी साधारण जन को भी आत्मीय बना लेते हैं। प्यारी सीते! मेरे उपदेशों को सदा स्मरण रखना।

जानकी ने कहा—बहुत ठीक, जब आप वन जा रहे हैं तो मुझे भी अपने ही साथ लेते चलिये। राम ने कहा—तुम कैसे वन जाओगी? वन के लिए ईश्वर ने कोल और किरात की लड़कियों को बनाया है। अथवा तपस्वियों की स्त्रियों को वन में रहना चाहिए जिनने तप ही के लिए सारे संसार के सब भोग छोड़ दिये हैं। जो हंसी मानसरोवर में विचरण करती है वह गदले जल भरे गढ़ों में कैसे रह सकती है? जो कोयल आम्र के पुष्पित काननों में विहार करती है वह करील के वन में कैसे रह सकती है? वन में कड़ी धूप और तीखी हवा लगती है जिससे तुम्हारा कोमल शरीर मुरझा जायगा। पहाड़ी

जल कड़ुए और कसैले होते हैं, कुश और कांटे वन में बहुत हैं, वे तुम्हारे कोमल चरणों में चुभेंगे। वन के भयंकर जीवों को देख और उनका घोर शब्द सुन कर तुम डर जाओगी। हे हंसगामिनी प्यारी! तुम वन के योग्य नहीं हो। यदि मैं तुम्हें वन में अपने साथ ले जाऊंगा तो सब लोग मेरी निन्दा करेंगे।

राम की ये बातें सुन कर सीता को करुणा और कुछ क्रोध भी उत्पन्न हो गया। वे बोलीं—नाथ! आप क्या कह रहे हैं? क्या यह कहते लज्जा भी नहीं आती! पिता, माता, भ्राता, पुत्र तथा पतोहू ये सभी अपने ही किये कर्मों का फल भोगते हैं और अपने ही भाग्य के अधिकारी हैं, किन्तु पति के भाग्य की अधिकारिणी स्त्री ही है। इस लिए यदि आपका वनवास हुआ तो साथ ही साथ मेरा भी वनवास हो चुका। स्त्री के लिए आत्मा, पुत्र, पिता, माता और सखियां कोई भी गति नहीं है, उसके लिए केवल पति ही गति है। यदि आप वन को जायेंगे तो मैं आपके आगे ही आगे कुश कांटों को पैरों से कुचलती चली जाऊंगी ऊंची अटारियों पर रहने से अथवा विमान पर बैठ कर आकाश में विहार करने से भी अधिक आनन्ददायिनी पति के पद की छाया है जो सदा अवलम्ब देनेवाली है। आपके चरणकमलों के देखने से मुझे तनिक भी थकावट नहीं जान पड़ेगी। जब मैं आपकी कोमल मूर्त्ति देखूंगी तब लू लगने पर भी मेरा शरीर शीतल ही रहेगा। मेरी माता तथा पिता ने भी यही शिक्षा दी है। मैं पातिव्रत्य धर्म का पालन करती हुई और तीनों लोकों को भूलती हुई आपके साथ वन में वैसे ही निवास करूंगी जैसे पिता के भवन

में आनन्द के साथ रहा करती थी। मैं आपको किसी प्रकार का कष्ट न दूंगी। पुष्पभार से सुगन्धित वनों में आपके साथ रमण करूंगी। आपके साथ वन्य कन्द, मूल, फल को अमृत के समान स्वादिष्ट समझ कर सुख से भोजन करूंगी। मैं आपके आगे ही आगे चलूंगी। आपका जूठा खाऊंगी। जब आप रास्ते में चलते चलते थक जायंगे तब मैं वृक्षों की सघन छाया में कोमल पत्तों और कुशों का आसन बिछा कर आपको बैठाऊंगी, फिर शीतल जल से आपका पैर धोऊंगी और आँचल की हवा से पसीना ठंढा करूंगी। जब रात को आप सोजायंगे तब आपके कोमल चरणों को धीरे धीरे दबा कर आपकी थकावट दूर करूंगी। जब आपका स्वेद-जलविन्दु-परिपूर्ण सुन्दर शरीर देखूंगी तब मेरे सब दुःख नष्ट हो जायंगे। ऐ नाथ! मेरे सब सुख आप ही के साथ हैं। जब आपके शरत्काल के पूर्ण चन्द्र के समान निर्मल मुखचन्द्र का दर्शन करूंगी तब मेरे सभी दुःख दूर हो जायंगे। आपके साथ रहने पर कुशासन तथा पत्तों के बिछौने भी मेरे लिए मखमली गद्दे के समान सुखदायी होंगे। कंद, मूल, फल अमृत के समान मधुर जान पड़ेंगे। ऊंचे पहाड़ अयोध्या की धवल ऊंची अटारियों के समान सुखप्रद हो जायंगे। मैं जानती हूं कि वन में बहुत दुःख होते हैं किन्तु आप के वियोगजनित दुःख के सामने वे दुःख कुछ भी नहीं हैं। आप के बिना मैं एक क्षण भी नहीं जी सकती। आपके बिना स्वर्ग भी नरक के समान है। क्या आप वन के योग्य हैं और मैं सुकु-मारी हूं तथा घर में रहने के योग्य हूं? आपको तप करना

उचित है और मुझे भोग करना उचित है? मेरी जैसी पतिव्रता तथा आज्ञाकारिणी स्त्री को आप छोड़ कर बन जाना चाहते हैं, इसका क्या कारण है? यदि आप मुझे छोड़ कर चले जायेंगे तो निश्चय ही मैं विष खा कर, अग्नि में प्रवेश कर, या जल में डूब कर प्राणत्याग कर दूंगी। मुझे नहीं जान पड़ता कि आप क्यों मुझे छोड़ कर जाना चाहते हैं। जब मैं आपके साथ रहूंगी तब देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि कोई मुझे पापदृष्टि से नहीं देख सकता। मैं भी आपको छोड़ कर दूसरे पुरुष को नेत्रों से क्या मन से भी नहीं देख सकती। मैं सावित्री के समान पातिव्रत धर्म का पालन करूंगी। मैं आपके साथ रहने पर कभी अपनी माता, पिता, भाई, भगिनी, आदि किसी आत्मीय जन को याद नहीं करूंगी। मैंने खूब सोच समझ कर देखा है कि पतिवियोग के समान दूसरा कोई दुख नहीं है। माता, पिता, भाई बहिन, सास, ससुर, पुत्र, पुत्री आदि सभी परिवार आपही के नाते प्यारे हैं। तन, धन, धाम, नगर, बाग़, बगीचा तथा सारा राज्य, ये सभी पति के विना शोक के समाज हैं। पति के विना भोग रोग के समान, भूषण भार के समान और सारा संसार यमयातना के समान जान पड़ता है। जैसे प्राण के बिना शरीर, और जल के विना नदी व्यर्थ है वैसे ही पुरुष के विना स्त्री का जीवन व्यर्थ है। इस जगत् में आपके विना मुझे कोई सुख देनेवाला नहीं है। मेरा सब सुख आप ही के साथ है। और अधिक क्या कहूं? आप मेरे हृदय में निवास करते हैं, इस लिए आप मेरे हृदय की सारी बातें जानते हैं। आप कैसे अज्ञ हैं कि

मेरे समान सुन्दरी तथा युवती स्त्री को दूसरेके हाथ में सौंपना चाहते हैं। मैं आपके सामने ही विष खाकर प्राणत्याग करूंगी, किन्तु शत्रु के वश में न रहूंगी। आपके विना मैं एक क्षण भी नहीं जी सकती, फिर चौदह वर्ष की बात तो न्यारी ही है। ऐसे अनेक वचन कहती कहती सीता अधीर होकर रोने लगी और मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

राम ने तुरत सीता को उठाकर छाती से लगा लिया और बड़ेही प्रेम भरे मधुर वचनों से समझाते हुए कहा—"प्यारी क्षमा करो, मैंने तुम्हारी सुकुमारता और वन की विपत्ति सोच समझकर ऐसा कहा है। मुझे भी तुम्हारे बिना स्वर्ग भी अच्छा नहीं लगता। तुम्हारे साथ चौदहों वर्ष एक क्षण के समान बीत जायंगे। यदि चलने की इच्छा है तो तैयारी करो। मेरा जाना तो निश्चित ही है, कारण यह कि मैं कभी पिता की आज्ञा नहीं टाल सकता। माता, पिता और गुरु के वश में रहना परम धर्म है। जहां ये तीनों रहते हैं वहीं सब तीर्थ निवास करते हैं। वही परम पवित्र भूमि है, जहां ये तीनों रहते हैं। ये स्वयं तीर्थ-स्वरूप हैं। इन तीनों की सेवा, सत्य, यज्ञ, दान, मान आदि सब धर्मों से बढ़ कर है। जो पुरुष इन तीनों के भक्त हैं वे देवलोक गन्धर्वलोक, गोलोक ब्रह्मलोक आदि सभी लोक बिना परिश्रम ही पा जाते हैं। इस कारण पिता ने जो आज्ञा दी है वह अवश्य करूंगा। यदि तुम सचमुच मेरी सहधर्मिणी बनना चाहती हो तो मेरे साथही साथ चली चलो! जो तुम्हारे और मेरे वस्त्र, भूषण रत्न, पलंग, पालकी, आदि चीजें हैं वे सभी चीजें ब्राह्मणों तथा सेवकों को बांट दो।

यह संवाद जब लक्ष्मण के कानों में पड़ा, तब वे दौड़कर रामचन्द्र के पास आ पहुंचे और राम तथा जानकी के चरणों पर गिर कर बोले—यदि आपलोग वन में जा रहे हैं तो मैं भी आपलोगों के आगे आगे तीर, धनुष लेकर चलूंगा। राम ने कहा—मेरी इच्छा है कि तुम यहीं रहो। यहां तुम्हारे विना माता पिता को बड़ा कष्ट होगा। पिता दुःखी रहेंगे, इस लिए राजकाज भलीभांति नहीं कर सकेंगे। प्रजा का पालन भी अच्छे ढंग से नहीं हो सकेगा। याद रक्खो जिस राजा के राज्य में प्रजा दुःख भोगती है वह राजा अवश्य नरक में पड़ता है। लक्ष्मण ने कहा—आप तो प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि जहां रहूंगा वहां तुमको साथ रक्खूंगा, फिर आज आप क्यों निवारण कर रहे हैं? यदि आप वन में जाते हैं तो मुझे भी साथ लेते चलिये। राम ने कहा, मैं जानता हूं कि तुम धर्मात्मा, प्रेमी, सच्चरित्र, धीर, सदा सत्य पथ पर चलनेवाले, मेरे प्राणसम प्रिय, आज्ञाकारी और सखा हो तथापि यदि तुम वन में साथ चलोगे तो कौशल्या और सुमित्रा की सेवा कौन करेगा? जो राजा दशरथ प्रजाओं पर मेघ के समान धन की वर्षा करते थे और सब का मनोरथ पूर्ण करते थे वे आज कामपास में बंधे हैं। कैकेयी राज्य पाकर उन्मत्त हो जायगी, इससे दुःखिनी सौतियों की सुध भी न लेगी, भरत भी ऐसाही करेंगे। इस लिए ऐ लक्ष्मण, तुम यहां रहकर दोनों का परिपालन करो। इस प्रकार तुम मेरी भक्ति करो।

लक्ष्मण ने कहा—कौशल्या के लिए आप चिन्ता न करें, वे मेरे समान हज़ारों जीवों की रक्षा अपने पुण्यों के प्रभाव से कर सकती

हैं। यदि भरत उनको या मेरी माता सुमित्रा को किसी प्रकार का कष्ट देंगे तो वे अपने अनुचरों के सहित मेरे तीक्ष्ण बाणों से वध किये जायेंगे। आप कृपा करके मुझे साथ चलने की आज्ञा दीजिये। इसीमें मैं अपनेको धन्य समझूंगा। मैं तीर, धनुष, खुर्पी और टोकड़ी लेकर चलूंगा और आगे आगे आपको पथ दिखलाता चलूंगा। आपके भोजन के लिए कन्द, मूल, फल तोड़ कर और भूमि खोद कर लाया करूंगा। आप जानकी के साथ वन और पर्वतों में रमण किया कीजियेगा और मैं सोते जागते, बैठते उठते, सदा आप दोनों की सेवा किया करूंगा। मैं माता, पिता और गुरु किसीको नहीं जानता। संसार में जो कुछ प्रेम या सम्बन्ध है, सब आप ही के साथ है। मैं किसी दूसरेको नहीं जानता। जो धीर तथा वीर हैं वे ही धर्मोपदेश तथा नीति के अधिकारी हैं। मैं तो आपके प्रेम का पालित दास हूं। मुझसे धर्म का बोझ नहीं उठ सकता। क्या हंस का बच्चा कभी सुमेरु पर्वत उठा सकता है? धर्मोपदेश उसीको देना चाहिए जिसको कीर्ति, सम्पत्ति तथा सुगति प्यारी है। जो मन से, वचन से तथा कर्म से आपका भक्त है, क्या उसे त्याग करना उचित है?

राम ने कहा—अच्छा, यदि चलने की इच्छा है तो चलो। जाओ, पहले माता सुमित्रा से आज्ञा लो। फिर वरुण देव ने प्रसन्न होकर जो अस्त्र शस्त्र जनकराज को दिये थे और जनकराज ने दहेज में मुझको दिये थे उन्हें मैंने वशिष्ठजी के घर रख दिया है। गुरुजी से मांगकर उन्हें अवश्य लेते चले आओ। जिनमें दो भयंकर धनुष, दो अभेद्य कवच, दो सदा परिपूर्ण रहनेवाले तरकस और

दो तलवार हैं, जिनकी मूठ सुवर्ण की हैं और जिसमें सूर्य के समान चमक है। लक्ष्मण यह बात सुन, सब कार्य्य राम के आज्ञानुसार परिपूर्ण कर राम के पास तुरत आ पहुंचे।

ये तीनों पहले कौशल्या के पास पहुंचे। कौशल्या के चित्त में हर्ष और विषाद दोनों उत्पन्न हुए। उनने पुत्रवधू सीता से कहा—बेटी, सदा पति की सेवा करना। देखो, कुलटा स्त्रियों का ध्यान कुल, धर्म, उपकार, विद्या, भूषण आदि किसी वस्तु में स्थिर नहीं रहता। उनका चित्त सदा चंचल रहता है। पतिव्रता स्त्रियों का चित्त लज्जा, सत्य, शास्त्र और मर्यादा में स्थिर रहता है और उनके हृदय का परम पवित्र अवलम्ब केवल पति ही है। वन में क्लेश पाने पर भी पति का कभी निरादर न करना। चाहे पति निर्धन हो, चाहे सधन हो, किन्तु तुम्हारे लिए देवतास्वरूप है।

जानकी ने कहा—मैं ये बातें पहले ही से जानती हूं। जिस प्रकार प्रभा चन्द्रमा से अलग नहीं हो सकती उसी प्रकार मैं धर्म तथा अपने पति से अलग कभी न होऊंगी। बिना तार की वीणा शोभा नहीं पा सकती, बिना चक्र का रथ नहीं चल सकता और पतिव्रता सैकड़ों पुत्रों के रहते भी पति के बिना सुख नहीं पा सकती। पिता, भ्राता और पुत्र परिमित सुख तथा सम्पत्ति देनेवाले हैं, किन्तु पति अपरिमित सुख तथा सम्पत्ति देनेवाला है। मैं सब शास्त्रों की मर्यादा और तत्त्व जानती हूं, फिर मैं ही अपने देवतुल्य पति का कैसे निरादर कर सकती हूं?

राम ने कहा—माता! अतिशय कठिन दुःख पाकर भी पिता का निरादर न करना, वनवास भी तुरत ही समाप्त हो जायगा। ये चौदह वर्ष सोते ही जागते बात की बात में बीत जायंगे।

फिर तीनों सुमित्रा के पास पहुंचे और उन्हें प्रणाम किया। सुमित्रा ने लक्ष्मण को उपदेश दिया कि ऐ पुत्र! तुम वनवास ही के लिए उत्पन्न हो। रामचन्द्र की सेवा में कभी शिथिलता नहीं करना। छोटे भाई को उचित है कि वह बड़े भाई का अनुचर और आज्ञाकारी हो। जाओ, राम के साथ वन में चले जाओ। राम को दशरथ (पिता) समझो, जानकी को मुझे (माता) समझो, और वन ही को अयोध्या समझो। बस, बेटा! सुखपूर्वक वन में चले ही जाओ। यदि रामचन्द्र जानकी के साथ वन में चले जा रहे हैं तो अयोध्या में तुम्हारा कुछ काम नहीं है। इस जगत् में वही स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र रामचन्द्र का भक्त है, नहीं तो बांझ ही रहना ठीक है, उसका पुत्र उत्पन्न करना व्यर्थ है। रामविमुख पुत्र से भलाई कदापि नहीं हो सकती! तुम्हारे ही सौभाग्य से रामजी वन में जा रहे हैं। वहां पूर्ण सेवा कर जन्म सार्थक करो। सब पुण्य और धर्मकार्य करने का फल यही है कि सीताराम के चरण कमलों में अविचल भक्ति हो।

इसके बाद तीनों दशरथ के पास पहुंचे और तीनों ने साष्टाङ्ग दण्डवत् करके परिक्रमा की और हाथ जोड़ कर उनसे जाने की आज्ञा मांगी। दशरथ कुछ न बोल सके, किन्तु उनकी दोनों आँखों से आँसू की अविरल धारा प्रवाहित होने लगी। राम ने कहा-"पिता! अब हमलोग बन जा रहे हैं, आप प्रसन्न होकर आज्ञा

और आशीर्वाद दीजिये। इस आनन्द के समय आप शोक क्यों करते हैं? इस समय यदि आप प्रेम बढ़ावेंगे तो आपका यश नष्ट हो जायगा और जगत् में निन्दा होगी।" इस प्रकार पिता को समझा कर राम, जानकी और लक्ष्मण के साथ मुनिभेष बना कर और पिताजी को साष्टाङ्ग दण्डवत कर राजभवन से चल निकले।

सुमन्त्र ने तीनों को रथ पर बैठा लिया! रथ चलने के समय पुरवासियों का घोर आर्त्तनाद हुआ! कुछ लोग तो कुछ दूर तक रथ के पीछे गये, किन्तु अन्त में हताश हो कर लौट आये! रथ जब गंगाजी के तट पर पहुंचा तब निषाद को यह समाचार मिला कि "राजकुमार गंगाजी के तट पर आ पहुंचे हैं।" सुनतेही निषाद अनेक प्रकार के कन्द, फल, मूल लेकर रामचन्द्र से आकर मिला। राम ने आदर से अपने निकट बैठा कर कुशल-समाचार पूछा। उसने उत्तर दिया कि हे नाथ! आपकी कृपा से सब कुशल है, कृपा कर के मेरे ग्राम में पधारिये। राम ने कहा—पिता ने मुझे तपस्वी बना कर चौदह वर्ष के लिए वन में भेज दिया है, इस लिए ग्राम में मेरा जाना उचित नहीं है। मैं तुम्हारा सत्कार स्वीकार कर यहीं रहूंगा। तब निषाद ने एक सघन वृक्ष की छाया में कोमल पत्तों का बिछौना बना दिया। उसीपर राम ने विश्राम किया। समय की गति भी बड़ी विचित्र है। देखो जो राम मणिमय राजभवन में दुग्ध-फेन के समान धवल कोमल बिछौने पर सुखपूर्वक शयन करते थे, वेही आज एक वृक्ष के नीचे पत्ते बिछा कर सो रहे हैं। जिनके पिता दशरथ भारतवर्ष के चक्रवर्ती राजा

हैं, जिनके ससुर जनक जगत्प्रसिद्ध ज्ञानी हैं, जिनकी स्त्री अद्वितीया पतिव्रता सीता हैं, जिनका भाई भयंकर वीर लक्ष्मण हैं, वेही रामचन्द्र आज अतिसाधारण तपस्वी के समान वनवासी हो रहे हैं! राम की यह दशा देख कर निषाद ने भी बड़ा विषाद किया। लक्ष्मण ने उसे धीरज देने के लिए कहा—"कोई किसीको दुःख या सुख नहीं दे सकता, ये सभी अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों के फल-भोग हैं। संयोग, वियोग, भोग, रोग, उत्तम, अधम, सत्, असत्, हित, अहित, जन्म, मरण, सम्पत्ति, विपत्ति, कर्म, काल, भूमि, भवन, धन, नगर, परिवार, स्वर्ग, नरक, आदि जितने पदार्थ देख पड़ते हैं वे सभी अज्ञानजनित व्यवहार हैं, सच्चे नहीं हैं। जैसे स्वप्न में भिखारी राजा होता है, राजा भिखारी हो जाता है, किन्तु जगने पर कुछ नहीं रहता, वैसे ही संसार के सब प्रपंच हैं, अज्ञान में सब कुछ है, किन्तु ज्ञान हो जाने पर कुछ नहीं। इस जगत् के जितने जीव हैं सभी मोह-निद्रा में (या अज्ञानरात्रि में) सोनेवाले हैं। वेही अनेक प्रकार के स्वप्न देखते हैं। परन्तु जो ईश्वर-ज्ञानी, जगत् के प्रपंचों से अलग रहनेवाले और योगी हैं, वे इस रात में जागते हैं। जो इस जगत् में जागनेवाले हैं, अर्थात् जो ज्ञानी हो जाते हैं, वे संसार के सुख से प्रेम नहीं रखते। जब ज्ञान उत्पन्न होता है तब मोह और भ्रम नष्ट हो जाते हैं। उसी समय परमेश्वर के चरणों में भक्ति भी उत्पन्न हो जाती है। सब से बढ़ कर परमार्थ यही है कि भगवान् के चरणों में मन, वचन तथा कर्म से सच्ची भक्ति हो,। वही परब्रह्म परमेश्वर सत्य-स्वरूप हैं, उन्हें कोई नहीं जान सकता, कोई नहीं देख सकता। वे अनादि

हैं, उनके समान कोई नहीं है। वे सर्वव्यापक हैं, उनमें किसी प्रकार का विकार नहीं है, वेद भी उनका पता नहीं पा सकता, वे ही भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ और देवताओं की रक्षा के लिए मनुष्य का शरीर धारण कर अनेक प्रकार की लीलाएं किया करते हैं। उन्हींको बहुत से लोग "राम" भी कहते हैं।

प्रातःकाल होते ही राम ने नित्य-क्रिया समाप्त की। निषाद से वट का दूध मंगा कर राम और लक्ष्मण ने सिर पर जटा बनाली, जिसे देखते ही सुमन्त्र की आँखों में आँसू आ गया। उसने राम से कहा—राजकुमार! अयोध्या से चलते समय महाराज दशरथ ने कहा था कि "तीनों को वन दिखला कर लौटा लाना।" राम ने कहा—ऐ पूज्य सुमंत्र! आपने धर्मशास्त्रों का अवलोकन किया है। धर्म का तत्व आप जानते ही हैं। शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, बलि आदि राजाओं ने धर्म के लिए कितने कष्ट सहे हैं! सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। वेदों, शास्त्रों, पुराणों तथा इतिहासों में यह बात प्रसिद्ध है। मैंने उस धर्म को सहज ही पा लिया है। उसका त्याग करने से तीनों लोकों में निन्दा होगी। प्रतिष्ठित पुरुषों की निन्दा मरण से भी अधिक कष्टदायिनी है। मेरी ओर से पिताजी से विनय कर देना कि हम लोगों के कारण दुःखी न हों। फिर सुमन्त्र विवश हो कर केवल रथ ही लेकर लौटा।

फिर राम ने जानकी, लक्ष्मण तथा गुह के साथ गंगा पार होने के लिए तट पर खड़े हो कर केवट से नाव लाने के लिए कहा। केवट ने कहा, मैं आपको अपनी नाव पर नहीं चढ़ा सकता।

मैंने सुना है कि आपके चरणों की धूलि जहां लग जाती है वह स्त्री बन जाती है। उसी धूलि के लग जाने से यदि पत्थर की चट्टान स्त्री बन गयी तो काठ उससे कठिन नहीं है। इस लिए जब मेरा नाव भी ज़रूर स्त्री बन कर आकाश में उड़ जायगी तब मैं किस चीज़ से अपनी जीविका उपार्जन करूंगा ? मुझे कोई दूसरा काम भी नहीं आता, जिससे अपना जीवन-निर्वाह करूंगा। यदि आप अवश्य ही पार जाना चाहते हैं तो अपने पैर धोने की आज्ञा दीजिये। नहीं तो आप लोग मारें या पीटें मैं कभी अपनी नाव पर चढ़ने न दूंगा।

राम ने कहा, अच्छा, वही उपाय करो जिससे तुम्हारी नाव न चली जाय। जल्द पानी ला कर मेरा पैर धो कर नाव पर चढ़ा कर पार कर दो। वह बहुत प्रसन्न हुआ और कठवता में पानी ले कर रामचन्द्रजी के पैरों को धोने लगा। अन्त में नाव पर चढ़ कर सब लोग गंगा पार उतर गये। रामजी के मन में संकोच हुआ कि केवट को कुछ उतरायी नहीं दी गयी। जानकीजी यह बात समझ गयीं और रत्न जड़ी सोने की अंगूठी देने लगीं। केवट ने हाथ जोड़ कर कहा—मैं बहुत कुछ पा गया। मैंने जन्म भर यह काम किया, पर उसका मूल्य आज ही मिला है। हां, लौटते समय आप जो दे देंगे उसे ज़रूर ले लूंगा। इसके अनन्तर ये लोग प्रयाग में पहुंचे। वहां भरद्वाज मुनि का दर्शन कर सब सुखी हुए। फिर आगे बढ़े। रास्ते में बहुत सी स्त्रियां सीताजी के पीछे लग जाती थीं, जहां जानकी बैठ जाती थीं वहां वे सब जल लाती थीं और कोमल पत्ते तोड़ कर बैठने के लिए आसन बना देती

थीं। एक स्त्री ने पूछा—ऐ रानी! ये दोनों तुम्हारे कौन हैं? जानकीजी ने कहा—सखी, सुनो, जिनका शरीर चम्पक पुष्प के समान गोरा है और जिनकी शोभा देख सभी मोहित हो जाते हैं उनका नाम लक्ष्मण है, वे हमारे छोटे देवर हैं। फिर जानकी ने रामजी का कुछ परिचय नहीं दिया, वह केवल अंचल से कुछ मुंह ढंक कर और भौंहें टेढ़ी करके तिरछी नज़र से राम की ओर संकोच से देखने लगी।

इस प्रकार आनन्दपूर्वक ये लोग रास्ते में चले जा रहे हैं। आगे आगे राम, मध्य में जानकी और पीछे पीछे लक्ष्मण चले जा रहे हैं। उस समय उनकी अकथनीय शोभा हो रही है। जैसी शोभा ब्रह्म और जीव के बीच माया की, जैसी शोभा कामदेव और वसन्त के बीच रति की, और जैसी शोभा चन्द्रमा और बुध के बीच रोहिणी की होती है, वैसी ही शोभा जानकी की राम, लक्ष्मण के बीच होती थी। अन्त में सब लोग वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में जा पहुंचे। वाल्मीकि ने उन लोगों का बड़ा आदर सत्कार किया। रामजी ने वाल्मीकिजी से कहा—ऐ भगवन्! कृपा करके मुझे बताइये कि हमलोग कहां रहें? जहां रहने से मेरे कारण वनवासी तपस्वियों को कोई कष्ट या तप में विघ्न न हो वही स्थान बताइये। मैं ब्राह्मणों से बहुत डरता हूं, क्योंकि ब्राह्मणों की प्रसन्नता से सभी मंगल प्राप्त होते हैं, और क्रोध से करोड़ों कुलों का नाश हो जाता है। इन्हीं बातों को सोच विचार वही स्थान बताइये जहां हम तीनों पर्णशाला बना कर कुछ समय तक सुखपूर्वक निवास करें।

मुनि ने उत्तर दिया, तुम मनुज-रूप धारी ईश्वर हो, तुम्हारी ही लीला यह सारा जगत् है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव सभी आपके अंश हैं। तुम्हारा अन्त और आदि कोई नहीं पा सकता। तुम्हारी ही कृपा से लोग तुम्हें जानते हैं। जो जानते हैं वे तुम्हारा ही रूप हो जाते हैं। तुम्हारी ही कृपा से भक्त लोग तुम्हें पहचानते हैं। तुम निर्विकार हो। सच्चिदानन्द-स्वरूप हो। देवताओं का उपकार करने के लिए तुमने मनुष्य का शरीर धारण किया है! तुम्हारा चरित देख कर मूर्ख लोग भ्रम में पड़ जाते हैं और विद्वान लोग सुखी होते हैं। तुमने जब मनुष्य का शरीर धारण किया है तब मनुष्य के समान आचरण करना ठीक ही है। तुमने हमसे पूछा है कि—"कहिये, हम कहां रहें?" तब हम तुमसे यह पूछते हैं कि—'बताओ, वह कौन सा स्थान है जहां तुम नहीं रहते हो?" तो भी तुमने जो पूछा है उसे बताता हूं। देखो, तुम्हारे स्थान ये हैं; जहां तुम अपनी प्यारी स्त्री तथा भ्राता के साथ निवास करते हो। जो सदा तुम्हारी मधुर कथाओं को भक्ति पूर्वक सुना करते हैं, किन्तु तृप्त नहीं होते, उनके हृदय में तुम निवास करते हो। जो समस्त संसार के सुन्दर पदार्थों को छोड़ कर सदा तुम्हारे ही दर्शन में प्रसन्न रहते हैं उनके हृदय में तुम सदा निवास करते हो। जो सदा तुम्हारा गुण गान करते हैं उन के हृदय में तुम निवास करते हो। जो सदा तुम्हारे प्रसाद-पुष्पों को सूंघते हैं, तुम्हें निवेदित कर के अन्न भोजन करते हैं, नवीन भूषण तथा वस्त्र तुम्हारे शरीर पर चढ़ा कर आप धारण करते हैं, देवता, गुरू तथा ब्राह्मण का दर्शन होते ही जिनका सिर

झुक जाता है, जो अपने हाथों से नित्य भगवान को पूजा करते हैं, जो सदा परमेश्वर ही पर भरोसा रखते हैं, जो सदा तीर्थयात्रा किया करते हैं और जो सदा तुम्हारा पवित्र मंत्र जपा करते हैं, उनके हृदय में तुम निवास करते हो। जो नित्य तर्पण तथा हवन करते हैं, जो ब्राह्मणों को भोजन करा कर दान देते हैं और जो ईश्वर से भी अधिक गुरु की सेवा और भक्ति करते हैं, और उसके बदले आपके चरणों में अचल भक्ति ही वर मांगते हैं उनके हृदय में तुम निवास करते हो। जिनके मन में काम, क्रोध, मद, मान, मोह, लोभ, क्षोभ, राग, द्रोह, कपट, दम्भ, माया आदि कुछ भी विकार नहीं है, उनके हृदय में तुम निवास करते हो। जो सब के प्रिय और भलाई करनेवाले हैं, जो सुख तथा दुःख और निन्दा तथा स्तुति को बराबर समझते हैं, जो सत्य तथा प्रिय वचन बोलते हैं, जो सोते तथा जागते आप ही की शरण में रहते हैं, जो तुम्हें छोड़ दूसरेको अपना अवलम्ब नहीं समझते, उनके मन में सदा तुम निवास करते हो। जो पराई स्त्री को माता समझते हैं, जो पर-धन को महा विष समझते हैं, जो दूसरेकी सम्पत्ति देख कर सुखी होते हैं, और विपत्ति देख कर दुःखी होते हैं, जो तुम्हें अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय समझते हैं उनके हृदय में तुम निवास करते हो। जो तुम्हींको अपना स्वामी, सखा, पिता, माता, गुरु, भाई, आदि सभी परिवार समझते हैं उनके मन में तुम सदा निवास करते हो। जो सबका अवगुण छोड़ कर गुण ही ग्रहण करते हैं, जो ब्राह्मण तथा गौ के लिए अनेक दुःख सहन करते हैं, जो सदा नीति-मार्ग पर चलते हैं, उनके हृदय में तुम

निवास करते हो। जो जाति पांति, धर्म, धन, प्रतिष्ठा, सब परिवार, गृह, आदि सभी तज कर केवल तुम्हींसे स्नेह करते हैं, और तुम्हारे भक्तों ही की संगति करते हैं उनके मन में तुम निवास करते हो। जो स्वर्ग, नरक तथा मोक्ष को समान समझते हैं, जो सर्वत्र तुम्हारे ही रूप को देखते हैं और जो मनसा, वचसा तथा कर्मणा, तुम्हारे सच्चे दास हैं उनके मन में तुम सदा निवास करते हो।

ये तो हुईं परमार्थ की बातें, अब इस वन में तुमको कहां आश्रम बनाना चाहिए सो भी सुन लो। समीप ही चित्रकूट नाम का पर्वत है, वहां बड़ा सुहावना वन है। वहां अनेक प्रकार के पशु, पक्षी निवास करते हैं। जहां मन्दाकिनी नदी की पवित्र धारा बह रही है, उसमें स्नान करने से सब पातक छूट जाते हैं। उसके तीर पर अत्रि आदि मुनि लोग निवास करते हैं, चल कर वहीं रहो। और तुम्हारे निवास से सब लोग कृतार्थ हों।

रामजी वाल्मीकि मुनि की बात सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। उनने लक्ष्मण से कहा, यहां ही रहना ठीक होगा। लक्ष्मण ने कोल, किरातों की सहायता से दो पर्णशालाएं बनाईं, एक छोटी और एक बड़ी। छोटे घर में लक्ष्मण जी निवास करने लगे, और बड़े घर में जानकीजी के साथ रामजी रहने लगे। ये दोनों ऐसे दूर दूर पर थे, जहां से लक्ष्मणजी इन दोनों की पूरी रक्षा कर सकते थे और पुकारने पर भली भांति सुन सकते थे। जिस प्रकार पलकें आंखों की रक्षा करती हैं उसी प्रकार रामजी, सीता तथा लक्ष्मण की रक्षा करते थे। और जैसे अज्ञानी पुरुष शरीर

की सेवा करते हैं वैसे ही लक्ष्मणजी राम, जानकी की सेवा करते थे। उस पर्वत पर रहनेवाले सभी कोल, किरात दासों से भी अधिक सेवा करते थे। वे वन के नये नये कन्द, मूल, फल आदि पदार्थ पत्तों के दोने बना कर उनमें भर भर कर रामजी को प्रति दिन समर्पण किया करते थे। और उन तीनों को अपने साथ ले कर उस पर्वत के वन, उपवन, नदी, झरने, खोह कन्दरा आदि दर्शनीय पदार्थों को दिखलाया करते थे। उस समय चित्रकूट भी एक प्रकार की राजधानी ही बन गयी। वहां के राजा रामजी, रानी सीताजी, दीवान लक्ष्मणजी, गुरु बाल्मीकि, तथा पुरोहित ऋषि-गण और प्रजा वनवासी गण हो गये। रामजी के संग से जानकी जी, जानकीजी के संग से रामजी, तथा इन दोनों के सङ्ग से लक्ष्मण जी सदा प्रसन्न रहते थे।

अब इधर सुमन्त्र रामजी को पहुंचा कर अयोध्या में लौट आये। दशरथ ने राम का समाचार सुन कर बड़ा विलाप किया। अन्त में कौशल्या को बुला कर कहा—हे प्यारी रानी, मैं हाथ जोड़ कर तुम्हारे पैरों पर पड़ता हूं तुम मेरे अपराधों को क्षमा करो और कठोर वचन मत बोलो, देखो, शास्त्र में लिखा है कि—'पति निर्गुण हो वा गुणवान् हो, किन्तु पतिव्रता स्त्री के लिए वही देवता है। तुम पतिव्रता हो, और तुमने जगत् का सब व्यवहार देखा है, इसलिए यदि राम के वनवास हो जाने से तुम्हें अधिक दुःख हो गया हो तो भी कठोर वचन मत बोलो, कारण यह कि मैं तुमसे भी अधिक रामवियोग से दुःखी हो गया हूं। राजा की परम दीन वाणी सुन कर कौशल्या अत्यन्त वेग से विलाप करने लगीं और पति के

चरणों पर गिर कर बोली-"हे स्वामी! मैं भी आपके चरणों पर पड़ कर प्रणाम करती हूं। आप मेरे अपराधों को क्षमा करेंगे। स्त्री को उचित है कि पति को प्रसन्न रक्खे। जो स्त्री पति से प्रार्थना कराती है वह नरक में पड़ती है। मैं धर्म भी भली भांति जानती हूं, इस जगत् में कैकेयी को छोड़ कर कौन ऐसी स्त्री होगी जो पति को छोड़ कर दूसरेके साथ अपने जीवन का निर्वाह करना चाहेगी? तुम्हारी सत्यता को भी जानती हूं, किन्तु पुत्रशोक से विह्वल हो कर मैंने कुछ कठोर वचन कहा है। शोक में मनुष्य अज्ञ हो जाता है। शोक धीरता को नष्ट करता है, शोक शास्त्रज्ञान को नष्ट करता है, शोक सभीका नाश करता है, शोक के समान दूसरा कोई शत्रु नहीं है। मनुष्य भयङ्कर शत्रु के शस्त्रप्रहार को सहन कर सकता है किन्तु छोटे से छोटे शोक को सहन नहीं कर सकता फिर जिसको पुत्र का शोक होगा वह कैसे सहन कर सकता है।"

दशरथ ने कहा—प्यारी कौशिल्ये! मुझे भी पुत्रवियोग का दुःख असह्य हो रहा है। मनुष्य अपने ही किये शुभाशुभ कर्मों का फल भोगता है। जो प्रारम्भ ही में अपने किए हुए कर्मों की गुरुता और लघुता का विचार नहीं करता वही बालक है, उसे ही अज्ञ कहते हैं। यदि कोई मनुष्य आम्र के वृक्षों को काट कर पलाश के पेड़ों को सींचता है वह फूल को देख कर प्रसन्न होता है, किन्तु जब फल लगने का समय आता है और फल को व्यर्थ पाता है तब दुःखी हो जाता है। जो फल को बिना सोचे ही काम करता है वह फलप्राप्ति के समय शोक करता है, जैसे सेमल के फूल की

सेवा करनेवाला तोता। मैंने भी आम्रलता को (तुमको) छोड़ कर पलाशलता का (कैकेयी का) सेवन किया। उसपर प्रेम तथा विश्वास किया, अब फलागम के समय (राम को राजा बनाने के समय) दुःखी हो रहा हूं। यदि मैं कैकेयी से प्रेम न करता और उसको वर देने की प्रतिज्ञा न करता, तो आज मेरी यह दुर्दशा न होती। जिस प्रकार अज्ञान से खाए हुए विष का फल अत्यन्त भयंकर होता है उसी प्रकार स्वयं किए हुए दुष्ट कर्म का भयंकर फल आज प्राप्त हो रहा है। फिर राजा दशरथ, हा पुत्र! हा पुत्र! हा राम! इत्यादि वचन कहते कहते स्वर्ग चले गये।

दशरथ के स्वर्गवास होने के बाद वशिष्ठजी ने दूत भेज कर नानि हाल से भरत तथा शत्रुघ्न को बुला लिया। यहां आने पर पिता के स्वर्गवास का समाचार सुनकर भरत को बड़ा क्लेश हुआ। रामचन्द्रजी के वनवास की बात सुन उनने बड़ा विलाप किया। कैकेयी ने अपने किए हुए सब कामों का वर्णन किया जिसे सुन कर भरत का शोक शतगुणा हो गया। भरत ने कैकेयी का बड़ा निरादर करके पूछा—पिता ने किस अपराध से रामजी को घर से निकाल दिया? क्या रामजी ने किसी ब्राह्मण का धन छीन लिया था, या किसी निरपराध मनुष्य की प्राणहिंसा की थी, या पराई स्त्री का संग किया था, जिस कारण पिता ने उनको घर से निकाल कर वन में भेज दिया? कैकेयी ने कहा—मैंने राजा से कहकर उनको अयोध्या से निकलवा दिया, नहीं तो डर था कि वे तुम्हारे राज्यभोग में किसी प्रकार का विघ्न करते। यह सुन कर भरत को बड़ा क्रोध हुआ। उनने कैकेयी से कहा—ऐ माता! अ

तुम्हें माता कहते ही लज्जा आती है। तुमने यह बड़ा अनर्थ किया! पिता ने तेरे ही अधम कार्य से अपना प्राण-त्याग किया है। ऐसे सुकुमार राजकुमारों को चीर, वल्कल धारण कर वन जाना पड़ा है। हा! राजकुमारी सीता वन में कैसे दिन वितावेगी। जो कौशल्या भगिनी के समान तुम्हारे साथ सुजनता का व्यवहार करती थीं उनके पुत्र के साथ तुमने कैसा कठोर व्यवहार किया है? जो रामजी तुमको अपनी माता से भी अधिक पूज्य समझते थे, उन्हें भी तुमने निर्दय होकर वन में भेज दिया! मेरे कुल की यह रीति है कि बड़ा भाई राजा होता है और छोटे भाई उसके सेवक बन कर रहते हैं। याद रक्खो, जिस मनोरथ से तुमने यह अधम पाप किया है तुम्हारा वह मनोरथ सिद्ध न होने दूंगा। माता की ऐसी निन्दा करके भरतजी शत्रुघ्न के साथ कौशल्या के भवन में पहुंचे। कौशल्या भरत को देखते ही विलाप करने लगीं। फिर कुछ देर के बाद बोलीं—ऐ भरत! लो यह राज्य लेलो, तुम राज्य लेना चाहते थे सो तुम्हारी माता की अधम करनी से राज्य मिल गया। मेरा पुत्र तो विजन अरण्य में चला गया, अब निष्कण्टक राज्य भोगो! तुम्हारी माता को अब यह उचित है कि वह मुझे भी घर से निकाल दे। अथवा मैं आप ही सुमित्रा को साथ लेकर वन में चली जाऊंगी। बस, मैं हाथी, घोड़े, रथ, ख़जाने आदि से परिपूर्ण सारा राज्य ही तुम्हें छोड़ देती हूं।

कौशल्या का वचन सुनते ही भरत कौशल्या के चरणों पर गिर कर विलाप करने लगे, फिर बोले—ऐ माता! तुम विना जाने ही मुझे अपराध लगा रही हो। रामचन्द्र में मेरी कैसी प्रीति है यह

बात तुम नहीं जानती। मैं सत्य शपथ करता हूं कि मैं निर्दोष हूं। जिसकी अनुमति से रामचन्द्र वन में गये हों उसकी शास्त्रानुसारिणी तथा गुरु की सिखलाई विद्या नष्ट हो जाय। जो पापी का दूत बने, सूर्य की ओर मुंह कर लघुशंका करे, सोई हुई गौ को पैर से मारे, काम कराकर उसको मज़दूरी न दे, और पुत्र के समान प्रजा को पालनेवाले राजा के साथ द्रोह करे, उसको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे, यदि मेरी राय से रामचन्द्र वन में गये हों। जो राजा प्रजा से छठा भाग लेकर उसका पालन नहीं करता, जो मनुष्य यज्ञ में दक्षिणा देने की प्रतिज्ञा करके ब्राह्मण को दक्षिणा नहीं देता, जो हाथी, घोड़े, रथ, सैनिक आदि से परिपूर्ण संग्राम में पीछे भाग जाता है, जो गुरु के परिश्रमपूर्वक शिक्षित उपदेश को भूल जाता है, जो दूध की खीर, खिचड़ी; बकरे का मांस बिना बांटे अकेले ही खाता है, जो गुरु का निरादर करता है, जो गुरु की निन्दा करता है, जो पैरों से गौ को छूता है, जो मित्र से द्रोह करता है, जो किसीकी कही हुई गुप्त बात को सबसे प्रगट करता है, जो उपकार का बदला उपकार नहीं करता, जो किये हुए उपकार को नहीं मानता अथवा उसके बदले बुराई करता है, जिससे सज्जन लोग घृणा करते हैं, जो निर्लज्ज है, जो पुत्रों, दासों, और परिवारों के साथ रह कर भी मीठा पदार्थ अकेले ही खा जाता है उसको जो पाप लगता है वही पाप मुझको लगे, यदि मेरी राय से रामजी वन में चले गये हों। जिसकी राय से रामजी वन में गये हों, वह बिना विवाह, बिना सन्तान और बिना पुण्य कर्म किये ही मर जाय।

जिसकी राय से रामचन्द्र वन में गये हों उसकी सम्पूर्ण आयु बीत जाय, पर अपनी सन्तान का मुंह न देख सके, इसीसे वह सदा दुःखी रहे। जो राजा स्त्री, बालक तथा वृद्ध का वध करता है और जो आज्ञाकारी सेवक का त्याग करता है उसको जो पाप लगता है वह पाप मुझको लगे, यदि मेरी राय से रामचन्द्र वन में गये हों। जो लाख (लाही), मधु, मांस, लोहा और विष बेंच कर अपने परिवार का पालन करता है, जो संग्राम में भागनेवाले को पीछा करके मारता है, उसको जो पाप लगता है वही पाप मुझ को लगे, यदि मेरी राय से रामचन्द्रजी वन में भेजे गये हों। जिस की राय से रामचन्द्र वन में गये हों वह चीथड़ा पहन कर और हाथ में खप्पर लेकर भीख मांगे और पगला होकर इधर उधर घूमता फिरे। जिसकी राय से रामचन्द्र वन में गये हों वह शराबी हो जाय, परस्त्री-गामी हो जाय, जुआड़ी हो जाय, कामी तथा क्रोधी हो जाय, उसका मन धर्म में न लगे, वह सदा अधर्म करे. और अयोग्य मनुष्यों को अनुचित कर्म के लिए दान करे। जिसकी राय से रामचन्द्र वन में गये हों उसके सब संचित धन चोर डाकू लूट ले जायं। जो दोनों संध्या के समय (सूर्य के उदय तथा अस्त होने के समय) सोता है, जो किसीके घर में या अन्न की ढेरी में आग लगा देता है, जो गुरु की स्त्री के साथ संग करता, है, जो मित्र के साथ द्रोह करता है, जो देवपूजन नहीं करता, जो पितरों का तर्पण नहीं करता, और जो माता, पिता की सेवा नहीं करता, उसको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे, यदि मेरी राय से रामचन्द्र वन में गये हों। जिसकी राय

से रामचन्द्र वन में गये हों वह सज्जनों के समाज से और सज्जनों की कीर्त्ति से पतित हो जाय। जिसकी राय से रामचन्द्रजी वन गये हैं उसको मातृसेवा त्याग कर पत्नीसेवा करने का पातक लगे। जिसकी राय से रामचन्द्रजी वन गये हों वह अपने सब परिवार के साथ दरिद्र तथा रोगी हो। जो मनुष्य स्तुति के साथ याचना करनेवाले तथा दानी की ओर ऊंची नज़र कर के दीनता प्रगट करनेवाले याचकों की प्रार्थना को व्यर्थ कर देता है उसको जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे, यदि रामजी मेरी राय से वन में गये हों। जो दुष्ट ऋतु-स्नान के समय अपनी विवाहिता स्त्री का त्याग कर देता है तथा उसका दर्शन, स्पर्शन तथा संग नहीं करता उसको जो पाप लगता है वही पाप मुझे लगे, यदि मेरी राय से रामचन्द्रजी वन में गये हों। जिसका बच्छा छोटा हो उस गाय का सब दूध दूह कर बच्छे को भूखा ही रहने देनेवाले को जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे, यदि मेरी राय से रामजी वन गये हों। विवाहिता स्त्री को छोड़कर परस्त्री-गमन करनेवाले को जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे, यदि मेरी राय से रामजी वन गये हों। पानी को गन्दा करनेवाले, विष देनेवाले, घर में पानी रख कर भी प्यासे को पानी न देने वाले तथा बहाना कर देनेवाले, मत विवाद करके शिव, विष्णु आदि देवताओं की निन्दा करनेवाले तथा सुननेवाले को जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे, यदि मेरी राय से रामजी वन गये हों। शिव तथा विष्णु की पूजा छोड़ कर भूत, प्रेतों की पूजा करनेवाले को जो पाप लगता है वह पाप मुझे लगे, यदि मेरी राय से रामचन्द्र वन में गये हों।

इस प्रकार शपथ करके जब भरतजी विलाप करने लगे तब कौशल्या ने कहा—तुम्हारे शपथों से तुम्हारी सत्यता पर मुझे विश्वास हो गया। इसीसे मैं अब किसी तरह राम के लौटने तक जी सकूंगी। फिर भरत और शत्रुघ्न कैकेयी के भवन में गये। वहां भरत ने कैकेयी से बहुत से क्रोध-भरे वचन कहे। वहीं मन्थरा भी आ पहुंची, उसे देखते ही शत्रुघ्न को बड़ा क्रोध हुआ। उनने उसको चोटी पकड़ कर भूमि पर पटक दिया और ज़मीन पर घसीटना प्रारम्भ किया। घसीटने से उसके भूषण चारों ओर बिखर गये। कैकेयी ने शत्रुघ्न को रोकना चाहा। भरत ने कैकेयी को भी दपट दिया। कुब्जा भय से मूर्च्छित हो गयी। तब कैकेयी ने भरत से कुब्जा की प्राणरक्षा के लिए प्रार्थना की। भरत ने शत्रुघ्न से कहा—"प्रिय वत्स, शत्रुघ्न! यह क्या करते हो? शास्त्रों की आज्ञा है कि—स्त्रियां सदा अवध्य हैं। स्त्रियों को किसी अपराध में प्राणदण्ड देना उचित नहीं है। देखो, यदि मैं पापिनी माता कैकेयी को मार डालूं तो रामजी मुझे "मातृघाती" समझ कर मुझसे घृणा करेंगे। यदि तुम कुब्जा को मार डालोगे तो रामजी तुमको भी पापी समझ कर सम्भाषण तक नहीं करेंगे।" भरतजी की बात सुन कर शत्रुघ्न ने मंथरा को छोड़ दिया। वह कैकेयी के पैरों पर पड़ कर रोने लगी। कैकेयी ने आश्वासन दे कर किसी प्रकार कुब्जा को शान्त किया।

इसके बाद वशिष्ठजी के आज्ञानुसार भरत ने दशरथजी का श्राद्ध बड़ी श्रद्धाभक्ति से किया। जैसे चक्रवर्त्ती राजा दशरथ थे उन्हींके योग्यतानुसार उनका श्राद्ध भी हुआ। अनन्तर प्रजा की

ओर से एक बहुत बड़ी सभा की गयी। वशिष्ठ आदि सभी ऋषि वहां उपस्थित थे। बीच में भरतजी और उनकी दाहिनी ओर शत्रुघ्नजी बैठे थे। वशिष्ठजी ने कहा—ऐ कुमार भरत! तुम्हारे पिता के समान भाग्यवान् मनुष्य इस जगत् में बहुत ही कम हुए हैं, जिनके चारों पुत्र सुयोग्य हैं। उन स्वर्गवासी राजा के लिए तुम्हें शोक करना ठीक नहीं है। यह जो घटना हो गयी है उसमें भाग्य ही की प्रधानता है। किसीका कुछ अपराध नहीं है। जो हो! तुम्हीं विचारो, क्या दशरथजी के लिए शोक करना उचित है? सोच करना चाहिये उनके लिए—जो ब्राह्मण वेद नहीं जानता और विषय-रस में लिप्त रहता है, जो क्षत्रिय राजा नीति नहीं जानता और प्रजा को प्राण के समान प्यारी नहीं समझता, जो वैश्य कृषि, गोरक्षा तथा वाणिज्य नहीं करता तथा धनी होकर भी महा कृपण होता है और अतिथि सेवा नहीं करता, जो शूद्र ब्राह्मणों का निरादर करता है तथा अहंकारी होकर सबसे विवाद करता है तथा उच्च वर्णों की शुद्ध हृदय से सेवा नहीं करता। जो स्त्री कलहकारिणी और स्वेच्छाचारिणी है, तथा परपुरुष से संयोग करती है, जो ब्रह्मचारी अपना नियम तथा गुरु की आज्ञा नहीं पालन करता, जो गृहस्थ अपना कर्म नहीं करता, जो संन्यासी संसार के प्रपंचों में लगा रहता है, जिसे ज्ञान तथा विराग नहीं है, जो अकारण क्रोध करता है, दूसरेकी चुगली खाता है, और माता, पिता, गुरु तथा बांधवों से विरोध करता है, जो सर्वस्व छोड़ कर भगवान् का भजन नहीं करता, जो सब प्राणियों पर दया नहीं करता, ऐसे ही लोगों के

लिए शोक करना चाहिए। महाराज दशरथ के लिए सोच नहीं करना चाहिए जिनका प्रताप सारे संसार में फैल गया था। उनके समान राजा हुआ नहीं, है, नहीं, और होगा भी नहीं। उनके लिए शोक करना व्यर्थ है, हां अब तुम्हारा कर्तव्य यही है कि पिता की आज्ञा पालन करो। वे तुमको राज्य दे गये हैं? उसका मानना आवश्यक है। शास्त्रों में लिखा है कि "जो मनुष्य उचित, अनुचित का विचार छोड़ कर पिता की आज्ञा ही को शिरोधार्य समझ कर उसका पालन करता है वह सुख तथा यश पाता है और अन्त में स्वर्ग का अधिकारी होता है।" उन की बात मान ही लेने से स्वर्ग में उनकी आत्मा तृप्त होगी। कौशल्या तथा सुमित्रा को भी इसीमें शान्ति है। कैकेयी को भी आनन्द होहीगा, क्योंकि उन्हींकी इच्छा से ये सब बातें हुई हैं। राम तथा जानकी को भी यह सुन कर बड़ा सन्तोष होगा। मन की ग्लानि छोड़ कर राज्य का भार ले लो तुम्हारा राम पर बहुत स्नेह है, यह बात मैं भली भांति जानता हूं उनके आ जाने पर यह राज्य उन्हें सौंप देना। बिना राजा के राज्य ठहर नहीं सकता। इस लिए राजा का होना बहुत ज़रूरी है। दशरथजी स्वर्ग में हैं और रामजी वन में हैं, इसलिए सबके अवलम्ब तुम्हीं हो।

भरत ने उत्तर दिया कि आप लोगों का कहना ठीक है, किन्तु मैं इसके योग्य नहीं हूं। मुझ सरीखे अधम के राज्य में आप लोग सुख चाहते हैं, किन्तु यह असम्भव है। आप लोग मेरी प्रार्थना सुन लीजिए, पीछे जो उचित हो आज्ञा दीजिये। मेरी भलाई स्वामी की सेवा ही करने में है। वह तो माता की कुटिलता

से नष्ट हो गयी। विना सीता, रामजी के दर्शन के मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। जिस प्रकार वस्त्रों के बिना भूषण व्यर्थ है, विराग के विना ज्ञान व्यर्थ है, रोगी के लिए भोग व्यर्थ है, भगवान की भक्ति के बिना जप तथा योग व्यर्थ है, प्राण के बिना शरीर व्यर्थ है, उसी प्रकार रामजी के विना सभी विभव व्यर्थ हैं। मैं अवश्य उनकी शरण में जाऊंगा। यद्यपि मैं बड़ा अपराधी हूं तथापि वे शरण में जाने पर सब अपराध क्षमा कर देंगे। भरतजी की दीनता-भरी बातें सुनकर, वशिष्ठ आदि ऋषि तथा अन्यान्य सारी प्रजा की यही राय हुई कि एक वार सब लोग रामजी का दर्शन कर आवें।

भरतजी अपने विश्वासी सेवकों को कोट, नगर तथा राज्य की रक्षा में नियुक्त कर उसी पथ से चले जिस पथ से रामजी गये थे। भरद्वाजजी का दर्शन करके वाल्मीकि के आश्रम में पहुंचे। वहां से चित्रकूट की ओर चले। रास्ते में निषाद मिला। पहले तो उसे सन्देह हुआ कि ये रामजी से युद्ध करने जा रहे हैं, इसलिए उसने भी युद्ध करना विचारा, किन्तु जब वह भरतजी से मिला तब उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि ये रामजी की प्रार्थना करने के लिए जा रहे हैं, इस लिए वह भरतजी से आ मिला। भरतजी ने जब जाना कि "यह रामजी का भक्त है" तब उसे छाती से लगा लिया। उसके भाग्य की सभी प्रशंसा करने लगे कि भरतजी ने इसे छाती से लगाया। जो निषाद लोक तथा वेद दोनों प्रकार से नीच समझा जाता है, जिसकी छांह भी छू जाने से लोग स्नान करते हैं उसे रामजी ने छाती से लगाया था, इस लिए वह पवित्र हो गया था। रामजी की ऐसी ही महिमा है। जो लोग

राम का नाम लेकर जम्हाई लेते हैं उनके सब पाप छूट जाते हैं, इसे तो राम ही ने छाती से लगाया तो यह क्यों न पवित्र हो जाय? कर्मनासा का अपवित्र जल भी यदि गङ्गाजल में मिल जाता है तो पवित्र हो जाता है। वाल्मीकि उलटानाम "मरा-मरा" जप कर महर्षि हो गये। रामजी सदा समभाव से रहते हैं, उन के मन में बैर या प्रेम कुछ भी नहीं है। अपना अपना कर्म ही (कार्य ही) प्रधान है, जो जैसा कार्य करता है वह वैसा ही फल पाता है। तो भी भक्तों पर रामजी की अधिक कृपा रहती है। वे भक्तों ही के लिए सगुण हुए हैं। उनका सच्चा रूप निर्गुण ही है। उनने सदा भक्तों की रुचि रक्खी है। ये बातें वेदों में भी लिखी हैं। निषाद भी भरतजी के साथ हो कर चला। भरतजी की सेना बहुत दूर ही से देख पड़ती थी। लक्ष्मणजी ने उसे देखा। देखते ही उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। उनने रामजी से कहा—भगवन्! देखिये, भरतजी आपसे लड़ने के लिए सेना के साथ आ रहे हैं। उनकी इच्छा यही जान पड़ती है कि आपको मार कर निष्कण्टक राज्य करें। यद्यपि आप सब कुछ जानते हैं तथापि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूं। सुनिये, विषयी जीव प्रभुता पाकर अहङ्कार करने लगते हैं। भरतजी बड़े ही साधु और ज्ञानी हैं, किन्तु आज वे भी राज्यपद पाकर धर्म का त्याग कर रहे हैं। आपको वनवासी तथा अकेले जान कर मारने आये हैं। यदि उनके मन में कपट न होता तो इस सेना की यहां क्या ज़रूरत थी। भरत ही का दोष नहीं है। सभी राज्यपद पाकर पागल हो जाते हैं। इसी राज्य के मद से मत्त होकर चन्द्रमा ने पर-स्त्री-गमन किया, नहुष ब्राह्मणों

के कन्धों पर पालकी रखवा कर चढ़ा, वेणु राजा ने वेद त
लोक से निन्दित कार्य किया। सहस्रबाहु, इन्द्र, त्रिशंकु आ
बहुत से राजाओं ने राज्य के मद से अनेक कलङ्क के कार्य किये
भरत ने भी वैसाही आचरण किया। उनने आपको असहा
जान कर ऐसा करने का साहस किया है। किन्तु जब रण
आपका क्रोधयुक्त मुख देखेंगे तब उनकी आँखें खुल जायंगी
यह कह कर लक्ष्मणजी रामजी के पैरों को छूकर खड़े हो ग
और बड़ी वीरता से बोले—मैं भरतजी को आज पूरा साह
दिखला दूंगा। मैं कहां तक सहन करूं, जब आप मेरे साथ
और हाथ में तीर, धनुष है तब चिन्ता क्या है? मेरा जन्म क्षत्रि
जाति तथा रघु के कुल में है। मैं राम का छोटा भाई हूं।
कैसे निरादर सह सकता हूं? धूलि भी लात मारने पर सिर
चढ़ जाती है। अब मुझे लड़ने की आज्ञा दीजिये। वे राम
निरादर का फल पावें। भरत और शत्रुघ्न दोनों समरशय्या
शयन करें। बहुत ही अच्छा अवसर आ गया है। अपना सा
पुराना क्रोध आज प्रगट करूंगा। जैसे मृगराज गजसमूह
दलन करता है, और जैसे बाज लवा को लपेट लेता है वैसे
दोनों भाइयों को सारी सेना के साथ रणक्षेत्र में गिरा दूंगा
यदि शिवजी भी उनकी सहायता करेंगे तो उन्हें भी मार डालूंगा

रामजी ने कहा—"ऐ प्रिय भाई लक्ष्मण! तुम्हारी सभी बा
सच्ची हैं, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु कोई बात बिना विचारे जल
न करना चाहिए। बिना विचारे कार्य करने से पछताना पड़
है। यह बात सत्य है कि सबसे कठिन राज्यमद है। जि

राजा ने सज्जनों का उपदेश नहीं ग्रहण किया है उसको राज्य पाते ही मद हो जाता है। किन्तु भरत को राज्यमद होनेवाला नहीं है। अन्धकार सूर्य को निगल सकता है, मेघ आकाश को लील सकता है, अगस्त्यजी गौ के खुर सम जल में डूब सकते हैं, पृथिवी स्वाभाविक क्षमा छोड़ सकती है, मच्छड़ की फूंक से सुमेरु उड़ सकता है, किन्तु भरतजी को राज्यमद नहीं हो सकता। इसलिए यहां अस्त्र, शस्त्र का कुछ प्रयोजन नहीं है, भरत स्वयं हम लोगों से मिलने आ रहे हैं। तुम भरत को नहीं पहचानते। कसने से सोने की, परखने से मणियों की, और समय पड़ने पर मनुष्यों की परीक्षा होती है। जो काम हो उसे उचित अनुचित सोचकर करना चाहिए। इसीमें भलाई है। जो विना सोचे विचारे ही काम करता है वह अन्त में बड़ा दुःखी होता है। जब कि मैंने पिता के सामने भरत को राज्य देने की प्रतिज्ञा की है तब उनको मार करके इस निन्दित राज्य को लेकर क्या करूंगा? जिसके लेने में बन्धु बान्धव तथा मित्रों का नाश करना पड़े ऐसा धन मैं नहीं लेना चाहता। धर्म, अर्थ, काम या पृथ्वी तुम्हीं लोगों के लिए चाहता हूं, इसके लिए सच्ची शपथ करता हूं। मैं सत्य ही के लिए शस्त्र ग्रहण करता हूं। मैं भ्राताओं के सुख के लिए ही राज्य चाहता हूं। मेरे लिए सातों समुद्रों से परिवेष्टित यह सारी पृथ्वी भी दुर्लभ नहीं है, किन्तु इन्द्रपद भी मैं अधर्म से लेना नहीं चाहता। यदि भरत, लक्ष्मण वा शत्रुघ्न के विना मुझे सुख प्राप्त हो तो वह सुख अग्नि में जल कर भस्म हो जाय। मैं निश्चय जानता हूं कि भरत

हमलोगों को दुःखी जान कर मिलने या लौटा ले चलने के लि
आ रहे हैं। तुम उनसे तनिक भो कठोर वचन सम्भाषण न करना
नहीं तो मैं समझूंगा कि तुमने हमींको कठोर वचन कहा। तुम्हीं
कहो, भरत ने आज तक तुम्हारा क्या अपकार किया है, जिस
तुम इतना डरते हो ? यदि तुम राज्य के लिए ऐसा कहते हो, तो
देखना मैं आने पर भरत से कह दूंगा कि "लक्ष्मण को राज्य
दो।" वे तुरंत ही तुम्हें राज्य दे देंगे। रामचन्द्र की यह बात सु
कर लक्ष्मण बहुत ही लज्जित हो गये।

इधर भरतजी शत्रुघ्न तथा निषाद के साथ उस आश्रम
पास पहुंचे। राम को मुनिवेष में देख कर भरत को बड़ा क्ले
हुआ। उनकी दोनों आँखों से आँसुओं की धारा चल निकली
अन्त में जब राम को वेदी के पास पहुंचे तब लक्ष्मण
जी ने रामजी से निवेदन किया कि देव, देखिये, ये भरतज
आपको प्रणाम कर रहे हैं। यह वचन सुनते ही राम
जी की दृष्टि इनपर पड़ी। रामजी देखते ही तीर, धनु
फेंक, उठ कर भरतजी को उठा कर गले से लिपट गये। उस समय
उन्हें यह सुध न थी कि कहां मेरी तीर है, कहां मेरा धनुष है
कहां मेरा तरकस है और कहां मेरा वल्कल है। शत्रुघ्न ने भी
राम तथा लक्ष्मण को प्रणाम किया। लक्ष्मण ने भी भरत को
प्रणाम किया। फिर रामजी ने भरत की दशा देख कर बड़े
आश्चर्य के साथ पूछा—कुमार भरत! तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हो
रही है, कहो, तुम प्रसन्न तो हो न ? परिवार के लोग प्रसन्न हैं!
घर छोड़ कर बन में मेरे चले आने से तुम्हारी माता कैकेयी अवश्य

प्रसन्न होंगी। तुम राजधानी छोड़ कर इस बन में क्यों आये हो? तुम्हारे पिता कहां हैं? पिता के रहते उनकी सेवा छोड़ बन में आना उचित नहीं है। मैंने बहुत दिनों के बाद आज तुम्हें देखा है। तुम बहुत दिनों तक अपने मामा के घर रहे, फिर आज अयोध्या छोड़े भी मुझे कुछ दिन बीत ही गये। कब आये हो और युवराज बन कर किस प्रकार प्रजा का पालन करते हो? यद्यपि मैं अच्छी तरह जानता हूं कि तुम इन बातों को अवश्य करते होगे तो भी बड़े भाई के नाते तुम्हें कुछ उपदेश देता हूं, उसे ध्यान से सुनो—

महा पवित्र कुल में उत्पन्न अपने पुरोहित की प्रतिष्ठा करनी, प्रतिदिन यज्ञविधि को पूर्ण रूप से जाननेवाले ब्राह्मणों से अपने भवन में हवन कराना, देवताओं, पितरों, गुरुओं, पिता, वृद्ध, वैद्य, ब्राह्मण तथा अन्यान्य पूज्यों की प्रतिष्ठा करनी, अस्त्र शस्त्र चलानेवाले, धनुष विद्या में निपुण, अर्थ-शास्त्र जाननेवाले, तथा शास्त्र पढ़ानेवाले की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। जो अपने ही समान वीर, विद्वान्, जितेन्द्रिय, कुलीन और बिना कहे ही केवल चेष्टा से दूसरेके मन का या राजा के मन का हाल जाननेवाले हों उनको मन्त्री बनाना चाहिए। मन्त्रियों को उचित है कि राजा और मन्त्री के बीच जो मन्त्र (सलाह) हो उसे अच्छी तरह छिपा रक्खें। मन्त्र ही के छिपे रहने से राजाओं की विजय होती है। किसी विषय में कुछ मन्त्र करना हो तो एक ही मनुष्य से मन्त्र न करे. ऐसा करने से कार्य सिद्ध नहीं होता। बहुत से मनुष्यों से भी राय करना ठीक नहीं है, ऐसा करने से मन्त्र फूट कर चारों

और फैल जाता है। राजा को उचित है कि वह ठीक समय पर सोवे और ठीक समय पर जागे, और जब थोड़ी सी रात रह जाय तब उठ कर अर्थ की चिन्ता करे। जो प्रारम्भ में छोटा है किन्तु अन्त में उसका बहुत बड़ा उदय होनेवाला है ऐसे कार्य को बहुत शीघ्र कर डालना चाहिए। कोई कार्य हो उसे गुप्त रखना चाहिए, जब तक वह सिद्ध न हो जाय तब तक किसीपर प्रगट न होने देना चाहिए। राजा को ऐसे ऐसे बुद्धिमान् मन्त्री रखने चाहिएं जो बिना कहे ही राजा के मन का हाल समझ जायं और उस के अनुसार कार्य करें। हज़ारों मूर्खों को छोड़ कर एक पण्डित रखना उचित है, क्योंकि विपत्ति के समय पण्डित ही भलाई करता है, और हजारों मूर्ख रह कर भी कुछ भलाई नहीं कर सकते। यदि एक ही मन्त्री हो और वह विद्वान्, वीर, चतुर, आलस्यहीन तथा सच्चा शुभचिन्तक हो, तो वह राजा तथा राजपुत्रों की भली भांति भलाई कर सकता है। उत्तम कार्यों में उत्तम मनुष्यों को, मध्यम कार्यों में मध्यम मनुष्यों को, और लघु कार्यों में लघु मनुष्यों को लगाना चाहिए। जो मन्त्री पिता, पितामह के समय से कार्य करते चले आये हों, जो घूस न लेते हों, जो कपटी न हों, और जिनमें अच्छे अच्छे गुण हों, ऐसे ही मनुष्यों को मन्त्री बनाना चाहिए। जो जैसा अपराधी हो उसको वैसा ही दण्ड देना चाहिए। अकारण ही प्रजा को ऐसा कड़ा दण्ड न देना चाहिए जिससे प्रजा को उद्वेग हो और वह राजा की निन्दा करे। जो राजा छठे हिस्से से अधिक कर (मालगुज़ारी) वसूल करता है उससे प्रजा ऐसी

घृणा करती है, जैसी घृणा कुलवती स्त्रियां नीच पुरुषों से करती हैं और जैसी घृणा यज्ञ करानेवाले पतितों से करते हैं। जो राजा रोग बढ़ा कर द्रव्य कमानेवाले वैद्य को, स्वामी की हानि करनेवाले भृत्य को और राजा को मार कर धन ले लेने की इच्छा करनेवाले वीर को, नहीं मार डालता, वह उन्हीं लोगों से मारा जाता है। जो ढीठ, वीर, धीर, बुद्धिमान, कपटरहित, कुलीन, राजभक्त, तथा चतुर हों, उन्हींको सेनापति बनाना चाहिए। जो मनुष्य बलवान, वीर, युद्धविद्या में चतुर, पराक्रमी तथा कई लड़ाइयों में विजयी हो चुके हों, उनका आदर सत्कार करना चाहिए। सेना के वीरों का मासिक वेतन (तनख्वाह) और भोजन (भत्ता) ठीक समय पर दे देना चाहिए। यदि उन वीरों को ठीक समय पर तनख्वाह और भत्ता नहीं दिया जाता है तो वे राजा से क्रोधित होकर राजा की हानि करते हैं। जो राजा अपने कुटुम्ब के लोगों का आदर करता है उस राजा के लिए वे कुटुम्बी प्राण देने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। पढ़ा लिखा चतुर, समय पड़ने पर बुद्धिमानी के काम करनेवाला, सत्य वचन बोलने वाला तथा ठीक ठीक संदेश कहने वाला मनुष्य दूत होना चाहिए। मन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तःपुरपालक, कैदखाने का स्वामी, खज़ानची, राजा की आज्ञा सबको सुनानेवाला, जज (न्यायकर्त्ता), धर्माधिकारी, सभासद, सेना की तनख्वाह बांटनेवाला, कोतवाल (नगररक्षक) और राज्य की रक्षा करनेवाला इन सबोंको अपने वश में रखना चाहिए। जिसको एक बार निकाल दिया फिर

उसको न रखना चाहिए। निर्बल शत्रु से भी सदा सचेत रहना चाहिए। नास्तिकों को अपने राज्य में न रखना चाहिए, वे साधारण लोगों को अपने जाल में फंसा कर बड़ा बड़ा अनर्थ करते हैं और केवल तर्क के सहारे वेदादि सत् शास्त्रों की निन्दा करते हैं। ऐ भरत, अयोध्या में हज़ारों वीर रह कर उसकी रक्षा करते थे, उसका द्वार बड़ा दृढ़ था, उसमें हाथी, घोड़े, रथ तथा सैनिक सदा भरे रहते थे, वहां चारो वर्ण रह कर अपना अपना धर्म सेवन करते थे, वहां बड़े बड़े जितेन्द्रिय निवास करते थे, उसमें बड़ी बड़ी अट्टालिकाएं तथा बड़े बड़े ऊंचे भवन थे, वहां वैद्यों की भी कमी न थी, उसकी शोभा तथा स्वच्छता अवर्णनीय थी, जिसका "अयोध्या"—शत्रुओं से युद्ध करने के अयोग्य—यह नाम सत्य था उसकी रक्षा भली भांति करते हो या नहीं? जिस देश को मेरे पूर्वजों ने पाला था, जहां सैकड़ों अश्वमेध हो चुके हैं, जहां बड़े बड़े प्रतिष्ठित लोग रहते थे, जहां सैकड़ों देवमन्दिर, पनसाला, (पानी बांटने या पिलाने का स्थान) तथा तालाब थे, जहां के नर-नारियाँ सदा प्रसन्न रहती थीं, जहां नित्य नये नये उत्सव हुआ करते थे, जहांकी खेती अच्छी रीति से की जाती थी, जहां के पशुओं को चरने और जल पीने का बड़ा आराम था, जहां किसी प्रकार की हिंसा नहीं होती थी, जहां वर्षा न होने पर भी केवल नदियों से ही खेत सींच लिये जाते थे, जहां अनेक प्रकार की सुख-सामग्रियां थीं, जहां बाघ, सर्प आदि भयंकर जीव नहीं रहते थे, जहां रत्न तथा धातुओं की सैकड़ों खानें थीं; जहां के सभी मनुष्य

धर्मात्मा थे, उस उत्तम देश की रक्षा तुम भली भांति करते हो या नहीं? तुम्हारे राज्य के वैश्य खेती, गोपालन तथा वाणिज्य (खरीदना बेचना) भली भांति करके सुखपूर्वक निवास करते हैं या नहीं? फिर सुनो और स्मरण रक्खो—राजा को उचित है कि वह अपने राज्य में रहनेवाली प्रजाओं की भली भांति रक्षा करे। सदा स्त्रियों को प्रसन्न रखना चाहिए, उनकी रक्षा करनी चाहिए, उनका आदर करना चाहिए, किन्तु उनसे कोई गुप्त बात नहीं प्रगट करना चाहिए। जिस वन में हाथी तथा हथिनियां हों उसकी अच्छी तरह रक्षा करनी चाहिए। हाथियों के उत्पन्न कराने का उपाय भी कराते रहना चाहिए। राजा को उचित है कि जब वह सभा में बैठे या किले से बाहर निकले तब राजसी वस्त्रों तथा भूषणों से सजधज कर। नौकरों को बहुत डराना न चाहिए और उन्हें बहुत निर्भय भी नहीं कर देना चाहिए। कोई कार्य विना फलोदय हुए प्रगट न करना चाहिए। किलों को धनों, अन्नों, जलों, शस्त्रों, अनेक प्रकार के यन्त्रों (कल), बढ़ई लोहार आदि कारीगरों तथा सैनिकों से परिपूर्ण रखना चाहिए। आय से कम व्यय करना चाहिए। प्रतिवर्ष कुछ धन कोश में बढ़ाना चाहिए। कोश (खज़ाने) का काम किसी परमधार्मिक को देना चाहिए। चोर, लम्पट आदि को खजाने में प्रवेश न करने दे। देवताओं, पितरों, ब्राह्मणों, अभ्यागतों अतिथियों, मित्रों तथा योद्धाओं के सत्कार में धन व्यय करना चाहिए। यदि किसी प्रतिष्ठित पर कोई अपराध करने का सन्देह हो तो विना पूरे प्रमाण के उसको दण्ड न देना चाहिए।

किसी निरपराध को लोभवश दण्ड न देना चाहिए। यदि कोई चोर पकड़ा जाय और उसके अपराध का पूरा प्रमाण मिल जाय तो धन लेकर उसको न छोड़ना चाहिए। यदि किसी धनी और दरिद्र में किसी वस्तु के लिए झगड़ा हो तो उचित निर्णय करना चाहिए। धन के लोभ से धनी का पक्ष न करना चाहिए। निरपराध को दण्ड देने से उसकी आँखों से जो आँसू गिरते हैं उन से राजा के धन, जन का नाश हो जाता है। वृद्धों, बालकों और वैद्यों को दान, मान तथा वचन से प्रसन्न करना चाहिए। गुरुओं, वृद्धों, तपस्वियों, देवताओं, अतिथियों, चौराहों के वृक्षों, ज्ञानियों तथा ब्राह्मणों को सदा प्रणाम करना चाहिए। प्रातःकाल में धर्मसम्बन्धी, मध्याह्नकाल में धनसम्बन्धी और सायंकाल के अनन्तर कामसम्बन्धी कार्य करना चाहिए। समय को उलट पुलट कर कार्य न करना चाहिए। राजा को ऐसे ऐसे शुभकार्य करना चाहिए जिससे ब्राह्मण लोग, नगर के लोग तथा सारे राज्य के लोग आन्तरिक हृदय से आशीर्वाद दें। वेदों पर अविश्वास, असत्यभाषण, क्रोध, असावधानी, नित्यकृत्य (स्नान भोजनादि) में विलम्ब, ज्ञानियों को अलग रखना, तथा पांचों इन्द्रियों का सुख न करना चाहिए। प्रातःकाल होते ही उठ कर कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए। एक ही समय चारों दिशाओं के शत्रुओं से न लड़ना चाहिए। राजा के जितने दोष लिखे हैं उन सब दोषों से बचना चाहिए।

शिकार खेलना, जूआ खेलना, दिन में सोना दूसरेकी निन्दा करना, स्त्रियों के संग में विशेष रहना, अहंकार करना, बाजा

वजाना, गाना, नाचना, विना प्रयोजन घूमना, इनका नाम "दश-वर्ग" है, इनको न करना चाहिए। पानी पर, पर्वत पर, वृक्ष पर, ऊसर भूमि पर और धनुषधारियों के देश में किला वनाना चाहिए। इनका नाम "पञ्चवर्ग" है। साम, दाम, दण्ड, भेद, इनका नाम "चतुर्गण" है। राज्य के ये सात अङ्ग हैं। राजा, मन्त्री देश, किला, खज़ाना, सेना और मित्र। इनको रक्षा से राज्य की रक्षा होती है। चुगली करना, व्यर्थ साहस करना, द्रोह, डाह तथा निन्दा करना, व्यर्थ धन नष्ट करना, कठोर वचन वोलना, और कठोर दण्ड देना, इनका नाम "अष्ट वर्ग" है; इनको न करना चाहिए। खेती, वाणिज्य, किला, पुल, हाथियों को फंसाना, खानों को ढूँढ़ कर खोदना, मालगुज़ारी वसूल करना, एकान्त में रहना, इनका भी नाम "अष्टवर्ग" है। इनको तो अवश्य करना चाहिए। पहले अष्टवर्ग त्याज्य हैं और दूसरे अष्टवर्ग ग्राह्य हैं। धन, धर्म तथा काम इनका नाम "त्रिवर्ग" है। तीनों वेदों का नाम (त्रयी), कृषि, गोरक्षा तथा वाणिज्य का नाम (वार्ता) राजनीति के ज्ञान का नाम (दण्डनीति) है और तीनों के समूह का नाम "त्रिविद्या" है। इनका ज्ञान रखना चाहिए, अपनी दशों इन्द्रियों को अपने वश में रखना चाहिए। सन्धि (मेल करना), विग्रह (शत्रुता करना), यान (सवारी), आसन (वैठने का स्थान), द्वैध (शत्रु का उपद्रव), आश्रय (ठहरने की जगह), इनका नाम "षड्गुण" है। दैवी तथा मानुषी दो प्रकार की विपत्ति है। आग लगना, पानी की वाढ़, शरीर में रोग होना अकाल पड़ जाना और महामारी (प्लेग कलरा, शीतला आदि)

फैलना ये दैवी विपत्तियां हैं। अधिकारियों (राजकर्मचारियों) का कपटी हो जाना, चोरों का उपद्रव, शत्रुओं का आक्रमण (चढ़ाई) सीमाओं के राजाओं का लोभी हो जाना, ये मानुषी विपत्तियां हैं। तनख्वाह न बांटना, लोभी हो जाना, अहङ्कार करना, अप्रतिष्ठा पाना, क्रोध करना, दूसरोंको क्रोधित करना, डरना डराना, इनका नाम "नृपकृत्य" है, इन्हें न करना चाहिए। बालक, वृद्ध, दीर्घरोगी, जाति से निकाला हुआ, डरनेवाला, डरानेवाला, लोभ करनेवाला, दूसरोंको लोभी बनानेवाला, सब से उदासीनता रखनेवाला, विषयों (संसारसुखों) में सदा लिपटा रहनेवाला, चञ्चल चित्तवाला, देवताओं तथा ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाला, अभागा, सदा भाग्य ही की चिन्ता करनेवाला, अकाल की विपत्ति से दुःखी, निर्बल सेनारहित, परदेश में रहनेवाला, बहुत लोगों के साथ शत्रुता रखनेवाला, जिसका मरण समीप हो, ये लोग "विंशतिपुरुष" कहलाते हैं, इनसे कभी सन्धि न करे, सदा इनसे अलग ही रहने में भलाई है। जिसके राज्य, स्त्री, स्थान, देश, जाति, धन, मद, मान, ज्ञान, शक्ति तथा धर्म का नाश हो गया हो, जो शत्रु के मित्रों से मित्रता रखता हो, जो बन्धुओं से विहीन हो, जिससे सब लोग रुष्ट रहते हों, उनके साथ सन्धि न करना चाहिए। मन्त्री, राज्य, दुर्ग, कोश और दण्ड, इनके नाम प्रकृति हैं। मित्र, शत्रु, मित्र का मित्र शत्रु का मित्र, मित्र के शत्रु का मित्र, मित्र के मित्र का मित्र, आगे चलनेवाले, पीछे चलनेवाले, बगल में चलनेवाले इनका नाम मण्डल है। यात्रा पांच प्रकार का है, शत्रुता करा

जाना, मित्रता करके जाना, अपने वीर सामन्तों के साथ जाना, दूसरे काम के वहाने दूसरे काम को जाना, और शत्रु को तुच्छ समझ कर उसके मित्र के पास जाना। दण्डविधान अर्थात् सेना की रचना करना, सन्धि तथा विग्रह का नाम " द्वियोनि " है। यदि दो वलवान् शत्रु दोनों ओर से चढ़ आवें तो वचन से उन दोनों को आत्मसमर्पण करके कौए की आँख की तरह दोनों में मिल कर रहे। यदि वहुत से शत्रु चढ़ आवें तो जो सबसे वलवान् हो उसीसे मिल कर उसीके सहारे रहना चाहिए। शास्त्रलेख के अनुसार राजा को उचित है कि वह तीन या चार या सभी मंत्रियों को इकट्ठा करके मंत्र करे। ऐ भरत! क्या तुम्हारे वेद सफल हैं? तुम्हारी क्रियाएं सफल हैं? तुम्हारी स्त्रियां फलवती (पुत्रवती) हैं? तुम्हारा शास्त्र सफल है? क्या मैंने जो जो वातें पूछी और कही हैं वैसी ही तुम्हारी सब वातें हैं? तुम मेरे कथनानुसार अपनी वुद्धि वना लो, ऐसी वुद्धिवाले चिरंजीवी, यशस्वी और धर्म धन तथा काम से युक्त होते हैं। जिस प्रकार तुम्हारे पिता, पितामह कार्य करते आये हैं उसी प्रकार तुम भी करो। तुम्हारे पिता, पितामहों की चाल वड़ी अच्छी थी। उसी चाल से तुम्हारी भलाई है। कोई स्वादिष्ट अन्न अकेले न खाना। जिससे जो चीज देने के लिए प्रतिज्ञा की हो वह उसे जरूर दे देना। जो राजा धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता है वह जगत् में विजयी होता है और मरने पर स्वर्ग में जाता है।

इतना कहने के वाद राम ने भरत से आने का कारण पूछा।

भरत ने राजा दशरथ के मरने का समाचार कह सुनाया। और प्रार्थना की कि "आप चल कर राजसिंहासन पर बैठिये और पूर्वजों के समान राज्य का पालन कीजिये।" यह समाचार सुन कर रामचन्द्रजी बहुत ही दुःखी हो कर पिता के लिए विलाप करने लगे। जब राम ने जाकर सीता तथा लक्ष्मण से यह समाचार कह सुनाया तब सीता तथा लक्ष्मण ने बड़ा विलाप किया। उन की दशा देख कर भरत, शत्रुघ्न तथा कौशल्या, सुमित्रा आदि स्त्रियां बहुत विलाप करने लगीं, उस समय रामजी ने धैर्य धारण कर उन लोगों को समझाया कि–मनुष्य का जीव स्वाधीन नहीं है। यह पराधीन है। काल इसको इधर से उधर तथा उधर से इधर घसीटता रहता है। जो वस्तु इकट्ठी होती है वह नष्ट भी होती है। जो ऊंचा रहता है वह गिरता ही है, जहां संयोग है वहां अन्त में वियोग भी अवश्य है, जहां जन्म है वहां मरण भी निश्चित है। जैसे पके हुए फलों का झड़ कर गिर जाना निश्चित है वैसे ही जिसका जन्म होता है उसका मरण भी निश्चित है। जैसे कोई अत्यन्त दृढ़ भवन पुराना होने पर ढह कर गिर जाता है वैसे ही यह शरीर बुढ़ापे तथा मृत्यु के वश में होकर नष्ट हो जाता है। जो रात बीत जाती है वह फिर नहीं लौट आती, जो नदी समुद्र में मिल जाती है वह फिर नहीं समुद्र से अलग हो कर बाहर बहती। जो प्राणी मर जाता है वह फिर नहीं जी उठता। दिन, रात बीतती जाती है और मनुष्यों की आयु वैसे ही नष्ट करती जाती है, जैसे सूर्य की किरणें ग्रीष्मकाल में जल को नष्ट करती जाती हैं। तुम अपनेको सोचो, दूसरोंके लिए क्या

सोचते हो ? चलते ही फिरते तुम्हारी आयु बीतती जाती है। प्राणी के साथ ही मृत्यु चलती है. प्राणी के साथ ही मृत्यु बैठती है, बहुत दूर चले जाकर लौटने पर भी मृत्यु साथ ही लौट आती है। शरीर के चमड़े सिकुड़ गये, सिर के बाल पक गये, बुढ़ापे से सारा शरीर निर्बल हो गया, अब प्राणी कैसे कोई बल का काम कर सकता है ? सभी मनुष्य सूर्य का उदय तथा अस्त होना देख कर प्रसन्न होते हैं पर वे यह नहीं जानते कि उनकी मृत्यु समीप चली आ रही है। नवीन ऋतु का आगमन देख सभी प्रसन्न होते हैं, किन्तु वे यह नहीं जानते कि इन्हीं ऋतुओं के साथ उनकी आयु भी बीतती जाती है। जैसे नदी की धारा में दो काठ दो ओर से आकर आपस में मिल जाते हैं और अलग भी हो जाते हैं वैसे ही काल के प्रभाव से प्राणी इकट्ठे होते हैं और अलग भी होते हैं। स्त्री, पुत्र, जाति, धन आदि सभी मिलते हैं और छूटते हैं। कोई प्राणी मृत्यु को नहीं टाल सकता, इसलिए मरे हुए मनुष्य के लिए शोक प्रकाश करना व्यर्थ है। जैसे बटोही एकके बाद दूसरा जाता है वैसेही सभी प्राणी एकके बाद एक मरते रहते हैं। मृतक के लिए चिन्ता छोड़ कर आत्मा को विचार सुख में लिप्त कर देना चाहिए। मेरे पिता ने अनेक यज्ञ किये, ब्राह्मणों को दान दिये, और सभी उत्तम कर्म किये, उन पिता के लिए अब शोक करना व्यर्थ है। वे आज सुखपूर्वक स्वर्ग में निवास करते हैं। वे मनुष्यशरीर छोड़ कर तथा दैवी शक्ति पाकर ब्रह्मलोक में विहार कर रहे हैं। मृत मनुष्य के लिए विलाप करना शास्त्र से निषिद्ध है। ऐ भरत! अब अयोध्या चले जाओ और

शान्ति से राज्य पालन करो। मैं चौदह वर्षों तक वनवास करूंगा। हमलोगों के लिए पिता की ऐसी ही आज्ञा है। जिसे जो आज्ञा हुई है उसे वही करना चाहिए। देवता तथा ऋषि सभी सत्य की प्रतिष्ठा करते हैं। सत्य ही ईश्वर है। सत्यवादी इसी लोक में स्वर्ग तथा परलोक में मोक्ष पाता है। सत्य सब धर्मों का मूल है। सत्य से बड़ी कोई दूसरी चीज़ नहीं है! सज्जन लोग झूठे मनुष्य को सर्प से भी अधिक भयंकर समझ कर उससे डरते हैं। दान, यज्ञ, हवन, तप और वेदपाठ इन सबोंसे भी बड़ा सत्य ही है, यदि पिता के चार लड़के होते हैं तो अपने कर्मानुसार एक सारे देश का पालन करता है और एक कुलमात्र ही का पालन करता है। एक नरक में जाता है और एक स्वर्ग में जाता है। मैंने पूज्य पिताजी के सम्मुख जिस सत्य के पालन करने के लिए शपथपूर्वक प्रतिज्ञा की है उस सत्य का त्याग राज्य के लोभ से, अज्ञान से, भ्रम से या क्रोध से कभी नहीं करूंगा। और उस सत्य प्रतिज्ञा को कभी भूलूंगा भी नहीं। मैं कभी धर्म का सेतु नहीं तोड़ूंगा। जो मनुष्य चित्त चञ्चल करके सत्य का त्याग कर देता है, उसकी दी हुई पूजा देवता लोग नहीं ग्रहण करते हैं और उसका तर्पण किया हुआ जल भी पितर लोग नहीं पीते हैं। फिर क्षत्रिय-कुल में जन्म पाकर सत्य का त्याग कर दूं यह बात नहीं हो सकती। मनुष्य पहले पाप को सोचता है, फिर जिह्वा से कहता है, उसके बाद शरीर से करता है। पृथ्वी, कीर्ति, यश, लक्ष्मी, ये सभी सत्य ही को चाहते हैं, इस लिए सत्य की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। देखो, सत्य, धर्म, पराक्रम, जीवदया, प्रियवचन,

देवता, ब्राह्मण तथा अतिथि की पूजा ये सभी स्वर्ग के रास्ते हैं। इस लिए मुझको नगर में ले चलने तथा राज्य देने के लिए चेष्टा करना व्यर्थ है। चन्द्रिका चन्द्र से अलग हो सकती है, हिमवान् हिम का त्याग कर सकता है, समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ सकता है, किन्तु मैं अपने पिता की प्रतिज्ञा नहीं छोड़ सकता। और यह बात भी स्मरण रखना, इसे मेरी आज्ञा समझना। तुम्हारी माता ने चाहे लोभ से, चाहे अज्ञान से, यह कार्य किया है उसको कभी स्मरण न करना और उसके लिए परम पूज्य माता को कभी दुर्वाच्य न कहना। कोई किसीको दुःख या सुख नहीं दे सकता। कर्म के वश दुःख, सुख तथा हानि, लाभ होते हैं। कर्म की गति बड़ी कठिन है, उसे ईश्वर ही जान सकते हैं, जो शुभ तथा अशुभ फल देने-वाले हैं। ईश्वर की आज्ञा सबके ऊपर है, उन्हींकी आज्ञा से जगत् की उत्पत्ति, पालन तथा संहार होता है, उनकी ही आज्ञा से विष जीवों को मारता है और अमृत जीवों को जिलाता है।

भरतजी ने कहा—"यदि आप नहीं लौटेंगे तो अपनी रत्न-जटित खड़ाऊं देदीजिये, मैं उसे ही राज्य-सिंहासन पर बैठाऊंगा। उसीकी आज्ञा से राज्य-पालन करूंगा, चौदह वर्षों तक मैं भी जटा, वल्कल धारण कर तपस्वियों की भांति रहूंगा, जिस दिन चौदह वर्ष पूरे होंगे ठीक उसी दिन यदि आप अयोध्या में न आ जायंगे तो मैं उसी दिन चिता बनाकर अग्नि में प्रवेश करके प्राण त्याग कर दूंगा। मेरी भी यही प्रतिज्ञा है।" इसके वाद रामजी ने शत्रुघ्न को अपना शपथ दे कर कहा कि कभी कैकेयी माता को दुर्वाच्य न कहना। अन्त में सब लोग रामजी से विदा हुए।

जब से रामजी वन में रहते थे तब से यहां राक्षसों का बड़ा उपद्रव रहा करता था इस लिए ऋषियों के तप में बड़ा विघ्न होता था। यह समाचार रामजी को भी ज्ञात हो गया, रामजी को भी वहां रहना उचित नहीं जान पड़ा। इस लिए सीता तथा लक्ष्मण के साथ अत्रि ऋषि के आश्रम में चले गये, अत्रि ने उन तीनों का बड़ा आदर-सत्कार करके कहा—ऐ राम! यहां श्रीमती परम तपस्विनी अनसूयाजी रहती हैं, उनका तुम लोग दर्शन करो। उनके तप का प्रभाव अवर्णनीय है, इस लिए जानकीजी उनसे जाकर मिलें तो बहुत अच्छा हो। उनकी आज्ञा पाकर सीताजी अनसूयाजी के पास गयीं और उनने बड़ी भक्ति तथा नम्रता से अनसूया का चरण छूकर प्रणाम किया। अनसूयाजी ने बड़ी प्रीति से सीताजी को अपने पास बैठाकर पूछा,—ऐ पुत्रि, सीते! क्या तुम अपने कुल के अहंकार से बनवासी राम का निरादर तो नहीं करती? देखो, शास्त्रों में लिखा है कि—"पति वन में हो वा नगर में, पति सुरूप हो वा कुरूप, सुचरित्र हो या दुश्चरित्र, किन्तु जो विवाहिता स्त्री उससे शुद्ध प्रेम करती है वह इस जगत् में प्रतिष्ठा पाती है और अन्त में स्वर्ग में पहुंच जाती है। पति दुःशील हो, कामी हो, वा निर्धन हो, किन्तु जो सुशीला स्त्रियां हैं उनका पति ही परमदेवता है। मैंने बहुत सोच विचार कर देखा है कि पति से बढ़ कर संसार में कोई अपना सच्चा बन्धु नहीं है। वह इस लोक तथा परलोक में भलाई करनेवाला है। जो असती स्त्रियां हैं वे पति में अनुरक्त नहीं रहतीं, वे तो केवल संयोग-सुख के लिए इधर उधर दौड़ा करती हैं, वैसी स्त्रियां जगत्

में निन्दित समझी जाती हैं और मरने पर महा घोर नरक में पड़ती हैं और जो तुम्हारे समान गुणवती स्त्रियां हैं वे दोनों लोकों में प्रतिष्ठा तथा सुख पाती हैं। इस लिए सदा पति की अनुगामिनी बनो। माता, पिता, भ्राता, आदि परिवार के सभी हितकारी हैं और समय पर संक्षेप से धन देनेवाले हैं, परन्तु पति अपना सदा हितकारी तथा सर्वस्व देनेवाला है, ऐसे पति की जो सेवा नहीं करती वह अधम है। आपत्ति काल आने पर धीरता, धर्म, मित्र और स्त्री इन चारों की परीक्षा हो जाती है। पति वृद्ध, रोगी, मूर्ख, दरिद्र, अंधा, बहरा, क्रोधी या दुःखी हो किन्तु जो स्त्री उसका अपमान करती है वह यमपुर में जा कर बड़ा दुःख पाती है। स्त्रियों के लिए एक ही धर्म, एक ही व्रत, और एकही नियम है कि स्त्री पति के चरणों में तन मन तथा वचन से सदा प्रेम रक्खे। जगत में चार प्रकार की पतिव्रताएं होती हैं। उत्तम, मध्यम लघु, तथा अधम। उत्तम पतिव्रता, जगत में अपने ही पुरुष को पुरुष समझती है दूसरेको पुरुष समझती ही नहीं। मध्यम पतिव्रता दूसरे पुरुषों को पिता, भ्राता तथा पुत्र के समान समझती है। लघु पतिव्रता धर्म विचार कर अपने पति की सेवा करती है या कुल की मर्यादा की रक्षा करती है। अधम पतिव्रता वह है जो समय न मिलने के कारण या भय से अपने धर्म की रक्षा करती है। जो अपने पति से छल करके पराए पति से प्रेम करती है वह करोड़ों कल्पों तक रौरव नरक में पड़ती है। जो क्षणिक सुख के लिए करोड़ों जन्मों के दुखों को नहीं समझती उसके समान अधम कौन है? जो छल छोड़ कर पतिव्रत धर्म धारण

करती है वह बिना परिश्रम ही परमगति पा जाती है। जो पति से प्रेम नहीं करती वह दूसरे जन्म में युवती होकर विधवा हो जाती है। स्त्री स्वभाव ही से अपवित्र है किन्तु वह पति की सेवा करके शुभगति पा जाती है। ऐ सीते! तुम्हारे शुद्ध आचरण देख मुझे पूरा विश्वास होता है कि तुम पतिव्रताओं में प्रधान समझी जाओगी। सब लोग तुम्हारा यश गावेंगे।

जानकी जी ने कहा—ऐ देवि, आपने जो बातें मुझसे कृपा करके कही हैं वे सभी बातें मैं भी जानती हूं क्योंकि जिस समय मेरा विवाह हुआ और मेरी माता ने रामजी के हाथ में मुझे समर्पण किया वहीं समर्पण करते समय यही बात मेरी माता ने भी कही थी। मैं भी उन्हें सदा स्मरण रखती हूं कि पति कैसा हू अधम, दरिद्र वा कुरूप हो किन्तु उसे देवता समझ कर प्रीति ही करनी चाहिए। फिर जो गुणी है, दयालु है, जितेन्द्रिय है, प्रेम रखनेवाला है धर्मात्मा है और माता पिता के समान पालन करनेवाला है इस के साथ में क्यों नहीं प्रीति करूंगी? मेरे पूज्य पति रामजी जो व्यवहार अपनी माता कौशल्या के साथ करते हैं वही व्यवहार मेरे पूज्य ससुर दशरथ की और स्त्रियों के साथ भी करते हैं। मेरे धर्मात्मा पति का यह स्वभाव है कि दशरथजी एक वार भी नजर उठा कर जिस स्त्री को देखते हैं उसको भी मेरे पति माता के समान समझते हैं। जब मैं वन में आने लगी तब मेरी सास कौशल्या ने भी जो समझाया था वह मेरे हृदय में स्थिर है, मैं भूली नहीं हूं। मैं अच्छी तरह जानती हूं कि पतिसेवा से बढ़ कर कोई दूसरा तप नहीं है। सावित्री पतिसेवा ही से

स्वर्ग में चली गयी। आप भी पतिसेवा ही से स्वर्ग की अधिकारिणी हो गयी हैं और आपने पतिसेवा ही से अलौकिक प्रभाव पा लिया है, आप पतिसेवा ही से पतिव्रताओं में सर्वश्रेष्ठ समझी जाती हैं। जिस प्रकार रोहिणी चन्द्रमा के बिना नहीं रह सकती उसी प्रकार आप पति के बिना नहीं रह सकतीं। जो आप ही के समान आचरण करती है वही पतिवृता समझी जाती है और वही अपने पुण्यों के प्रभाव से सत्यलोक में चली जाती है।

सीता की बात सुन कर अनसूयाजी बहुत प्रसन्न हुईं। और बोलीं—" ऐ सीते! मैं तुम्हें स्वर्गीय माला, वस्त्र भूषण महावर, सिंदूर तथा कज्जल देती हूं, तुम इन्हें धारण करो। यह कहकर अनसूयाजी ने अपने हाथों से सीताजी को सुसज्जित कर आशीर्वाद देकर विदा किया। राम ने जानकी की शोभा देख कर पूछा—ये सब स्वर्गीय वस्त्र तथा भूषण तुमको किसने दिये हैं? सीताजी ने सब समाचार कह सुनाया। रामजी सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। और सीता के साथ आनन्दपूर्वक वहां रहे।

एक दिन रामजी ने अगस्त्यजी से पूछा—भगवन्? मैं कहां जा कर निवास करूं? अगस्त्यजी ने कहा—तुम सर्वज्ञ हो किन्तु अज्ञानियों की तरह पूछते हो। तुम्हारे ही भजन के प्रभाव से तुम्हारी महिमा मैं कुछ जानता हूं, गूलर के पेड़ के समान तुम्हारी माया है। अनेक ब्रह्माण्ड उसके फलों के समान हैं। उनमें चराचर जन्तु कीड़े के समान हैं। वे उन ब्रह्माण्डों के भीतर रहते हैं, बाहर की बात कुछ भी नहीं जानते। काल उन

फलों का भक्षण करनेवाला है परन्तु वह काल तुमसे डरता है। तुम जगत् के स्वामी हो। मेरे हृदय में सदा निवास करो। क्योंकि मैं सगुण ब्रह्म का उपासक हूं और तुम्हीं सगुण ब्रह्म हो। मेरी अनुमति है कि तुम पंचवटी में जाकर रहो।

इधर भरतजी अपने समस्त समाज के साथ अयोध्या में लौट आये और समूचे राज्य का प्रबंध शत्रुघ्नजी को सौंप कर बोले—ऐ वत्स, शत्रुघ्न! यह सारा राज्य रामजी का है। हमलोग उनके केवल कर्मचारी हैं, इसलिए ध्यान रखना चाहिए कि कोई वस्तु नष्ट न होने पावे। अब मैं तुम्हारे ही भरोसे नन्दिग्राम में जाकर चौदहों वर्षों तक तप करूंगा। तुम रामजी की खड़ाऊं को ही राजा समझ कर और उसकी आज्ञा ले कर सब कार्य करना। ऐसा उपदेश दे कर रामजी की खड़ाऊं को राज्यसिंहासन पर रख दिया।

भरतजी नन्दिग्राम में चले आये। जटा, वल्कल धारण कर, कुशासन पर बैठ कर और कन्द, मूल, फल भोजन कर तप करने लगे। रामजी तपस्वी हो कर बन बन घूमने लगे और भरतजी नन्दिग्राम ही में रह कर तप करने लगे। दोनों का जीवन एक ही समान बीतने लगा।

——:-:*:-:——

अरण्य काण्ड

—:*:—

अनसूयाजी के आश्रम से निकल कर राम, सीता तथा लक्ष्मण के साथ दण्डकारण्य में पहुंचे। वह अरण्य बड़ा ही सुहावना तथा पवित्र था, वहां कुछ दिनों तक ये तीनों रहे। जब एक दिन ये तीनों घूम रहे थे तब इन्होंने विराध नामक एक राक्षस को देखा। उस राक्षस ने सीताजी को दोनों हाथों से पकड़ कर उठा लिया। राम ने लक्ष्मण से कहा—ऐ लक्ष्मण! आज कैकेयी का मनोरथ सफल हुआ! मेरी आँखों के सामने पर-पुरुष ने जानकी को स्पर्श कर लिया। यह बड़े कष्ट की बात है। लक्ष्मण ने कहा—भगवन्! मेरे जीते जी आप किसी बात की चिन्ता न करें! ऐसा कह कर लक्ष्मण ने उसपर बाणों की वर्षा कर दी। राम ने भी कई बाण मारे किन्तु वह राक्षस न मरा। राक्षस ने राम से कहा—मैं शस्त्रों से नहीं मर सकता, यदि आप मुझे गढ़े में गाड़ दें तो मैं मर सकता हूं। राक्षसों के लिए गढ़े में गाड़ा जाना ही अच्छा समझा जाता है। उनका यही सनातनधर्म है। जो गढ़े में गाड़े जाते हैं उनको सनातन लोक प्राप्त होता है।* अन्त में राम ने उसको भूमि पर पटक दिया और उसकी छाती पैर से दबा कर लक्ष्मण से कहा—ऐ लक्ष्मण, एक बहुत बड़ा गढ़ा

---

* इसी प्रथा के अनुसार अब भी म्लेच्छ लोग ज़मीन में गाड़े जाते हैं।

खोदो, मैं उसीमें इसे जीते जी गाड़ दूंगा। अन्त में ऐसा ही किया गया। वह पूर्वजन्म का गंधर्व था, कुवेर के शाप से राक्षस हुआ था। वह दिव्य शरीर धारण कर स्वर्ग में चला गया।

इसके वाद वे तीनों शरभङ्ग ऋषि के आश्रम में पहुंचे। शरभङ्ग ने सीता, राम, लक्ष्मण का दर्शन तथा सत्कार किया और कहा, आप यहां से आगे सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम में चले जायं। अव मैं स्वर्ग धाम को जाता हूं। ऐसा कह कर चिता जला कर वे मुनि उसमें प्रवेश कर गये और उनकी आत्मा स्वर्ग में चली गयी। इसके वाद उस आश्रम के रहनेवाले ऋषि लोग रामजी के पास आकर वोले—आप पृथिवीपति महाराज दशरथ के वड़े पुत्र हैं, इसलिए आप ही हमलोगों के महाराज हैं। हमलोग आप से याचना करने के लिए आये हैं। आप हम लोगों की रक्षा कीजिये। जो राजा पृथिवी की उपज का छठा भाग प्रजा से लेता है और प्रजा की रक्षा नहीं करता वह राजा नरकगामी होता है। जो राजा अपने प्राणों को तुच्छ समझ कर प्रजा को पुत्रों के समान जान कर धर्मपूर्वक पालन करता है वह इस लोक में अक्षय कीर्ति पाता है और मरने पर ब्रह्मलोक में जा कर निवास करता है। कन्द, मूल, फल खा कर मुनि लोग जो तप करते हैं उस तप के पुण्य का चौथा हिस्सा धर्मपूर्वक प्रजा-पालन करनेवाले राजा को मिलता है। वेही मुनिगण आपके राज्य में वसते हैं किन्तु आपके रहते हुए भी राक्षसों से नष्ट किये जाते हैं। यदि विश्वास न हो तो अपनी आँखों देख लीजिये। ये मारे गये मुनियों की हड्डियां पड़ी हैं। आप ही हम लोगों की रक्षा कर सकते हैं।

आप इन राक्षसों के मारने की प्रतिज्ञा करें, तब हम लोगों को शान्ति मिलेगी।

राम ने कहा, आप लोग प्रार्थना क्यों करते हैं? आज्ञा दीजिये, मैं तो आप लोगों का दास हूं। मैं राक्षसों के नाश करने की प्रतिज्ञा करता हूं। इसके बाद रामजी सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम में पहुंचे। सुतीक्ष्ण ने स्वागत करने के बाद कहा—मैं आप ही लोगों के दर्शन के लिए यहां ठहरा था। अब आप लोगों का दर्शन हो गया, इसलिए दिव्य शरीर धारण कर स्वर्ग में चला जाता हूं। और आपको आशीर्वाद दिये जाता हूं कि आप मेरे ही पुण्यों के प्रभाव से इस वन में रमण कीजिये और दुःख संकटों से बच कर अन्त में त्रैलोक्य-विजयी बनिये। यहां आपको बड़ा सुख प्राप्त होगा, किन्तु यहां मृगों का बड़ा उपद्रव है, इसलिए उन से बच कर रहना पड़ेगा। बहुत से राक्षस हरिण का रूप धारण कर इधर उधर घूमा करते हैं, ये भी समय समय पर बड़ा कष्ट देते हैं। राम ने कहा—मैं उन्हें भी मार कर वन को शान्तिमय कर दूंगा। किसी प्रकार का कष्ट ऋषियों को न होने पावेगा। यह कह कर राम अपनी स्त्री तथा भाई के साथ सुतीक्ष्ण के बताये हुए पथ से चले।

उस समय जानकीजी ने बड़ी नम्रता तथा प्रेम के साथ अत्यन्त मधुर शब्दों में अपने पति से कहा—साधारण उचित कामों से भी कभी कभी पाप हो जाते हैं, ऐसे पापों से सदा बचना चाहिए। तीन प्रकार के कामज व्यसन हैं, जो पाप-स्वरूप हैं—विना वैर क्रोध करना, मिथ्या बोलना, तथा पर-स्त्री सेवन करना। मिथ्य

बोलना तो आपके लिए सर्वथा असम्भव है, सत्य ही आपको प्यारा है, सत्य ही के लिए आप इतना कष्ट सहन कर रहे हैं। परस्त्री-गमन भी आपने नहीं किया, न करते हैं और करेंगे भी नहीं। यह काम आप मन से भी नहीं कर सकते। आप सदा स्वदार-निरत हैं, धर्मिष्ठ हैं, सत्य-प्रतिज्ञ हैं और पिता के आज्ञाकारी हैं। आपके ही शरीर में सदा सत्य और धर्म निवास करता है। आप की जितेन्द्रियता सबके अनुकरण करने योग्य है। तृतीय व्यसन जो विना वैर क्रोध है जिससे मनुष्य जीवहिंसा करता है, वह व्यसन आप करने के लिए तत्पर हैं। राक्षसों ने तथा मृगों ने क्या अप-राध किया है; जिससे आप मारने के लिए तत्पर हुए हैं? आपने दंडकारण्य-निवासी ऋषियों की रक्षा के लिए राक्षसों के वध करने की प्रतिज्ञा की है। इसी कार्य के लिए आपने अपने भ्राता के साथ तीर, धनुष लेकर दंडकवन के लिए प्रस्थान किया है। मैं आप की प्रतिज्ञा का हाल जानती हूं। आप अपनी प्रतिज्ञा को सच्ची करेंगे ही। मैं आपकी शुभ-कामना की इच्छा से आपका दंड-कारण्य के लिए प्रस्थान देख कर डर गयी हूं। दण्डकारण्य में जाना मुझे तनिक भी पसन्द नहीं है। मैं दण्डकारण्य में जाना नहीं चाहती। उसका कारण बताती हूं, सुनिये। आप दोनों भाई तीर, धनुष लेकर वन में विचरण करेंगे ही और वनचरों को देख तीर चलावेंगे ही। क्षत्रियों के हाथ में शस्त्र अग्नि के समान प्रज्वलित रहता है, वह क्षत्रियों के बल को बढ़ाता है। जैसे अग्नि में घी तथा लकड़ी डालने से अग्नि का तेज बढ़ता है वैसे ही शस्त्र धारण करने से क्षत्रियों का तेज बढ़ता है और वे शत्रुओं को

सर्वनाश कर देते हैं। प्रेम के कारण बड़ी प्रतिष्ठा के साथ मैंने आपको स्मरण करा दिया है। मैं आपको शिक्षा नहीं दे सकती, दण्डकारण्य-निवासियों को विना अपराध दण्ड न दीजियेगा; चाहे राक्षस हों चाहे हरिण हों। जो क्षत्रिय वन में तपस्वी हो कर रहते हैं उनका शस्त्र केवल दीन दुःखियों की रक्षा ही के लिए है। कहां शस्त्र, कहां वन, कहां क्षत्रिय-धर्म और कहां तप, ये सभी परस्पर-विरोधी कार्य्य हैं। हम लोगों को इस समय वनधर्म का अवलम्बन करना चाहिए। शस्त्र धारण करने से तामसी बुद्धि उत्पन्न होती है। जब अयोध्या में चलियेगा तब क्षात्रधर्म का अवलम्बन कीजियेगा। यदि आप राज्य छोड़ कर वन में तपस्वी हो कर आये हैं, तो मुनियों के समान सात्विकी वृत्ति से रहिये। इसीमें मेरी सास तथा ससुर को आनन्द होगा। धर्म से धन होता है धर्म से सुख होता है, धर्म ही से सब कुछ मिलता है, सारा संसार धर्म ही पर अवलम्बित है। जो आत्मा को नियमों से कष्ट देता है वही धर्म पाता है। धर्म ही से सुख मिलता है। कष्ट ही से सुख मिलता है। सुख से सुख नहीं मिल सकता। आप इस तपोवन में पवित्रता के साथ धर्म का आचरण करें। आप तो सर्वज्ञ हैं। केवल मैंने स्त्री-स्वभाव की चञ्चलता तथा प्रीति से ये बातें कही हैं, सो क्षमा कीजियेगा। आपको कौन धर्म सिखला सकता है? अपने भाई से सम्मति ले कर जो उचित हो वह कीजिये।

सीताजी के कोमल वचन सुन कर रामजी ने कहा—हे प्यारी जानकी! तुमने जो भलाई की बातें कही हैं वे सब ठीक हैं। उसी

में मेरी भलाई है। तुमको धर्म का भी अच्छा ज्ञान है इसमें सन्देह नहीं है। तुमने जो कहा है वही मेरा भी कहना है। क्षत्रिय लोग दीन दुःखियों की रक्षा ही के लिए शस्त्र धारण करते हैं। दण्डकारण्य के निवासी मुनिगण बहुत ही दुःखी हो कर मेरी शरण में आये थे। वे वन में केवल फल, मूल खा कर समय व्यतीत करते हैं, किन्तु राक्षसों के मारे उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। नरमांस-भक्षी राक्षस मुनियों को पकड़ पकड़ कर खा जाते हैं। ऋषियों ने आकर मुझसे कष्ट छुड़ाने के लिए प्रार्थना की थी। मैंने दयावश तथा क्षात्र धर्म समझ कर उन के दुःख छुड़ाने की प्रतिज्ञा की थी। यह बात सत्य है कि राक्षस लोग पूजा, पाठ, तर्पण, तथा हवन के समय ऋषियों को बड़ा कष्ट देते हैं। तब तुम्हीं बताओ क्या करना चाहिए? वे लोग शाप देकर राक्षसों को नष्ट कर सकते हैं; किन्तु तप नष्ट हो जाने के भय से वे लोग ऐसा करना नहीं चाहते। शाप देने से उन लोगों के अति परिश्रमार्जित तप नष्ट हो जायंगे। वे लोग मारे गये पर उन लोगों ने शाप न दिया। केवल मेरी शरण में अपनी रक्षा के लिए ही आये। उन लोगों ने हाथ जोड़ कर कहा—'आप मेरे रक्षक हैं, रक्षा कीजिये।" मैंने उनका दुःख देख कर प्रतिज्ञा की थी। अब प्रतिज्ञा कैसे छोड़ूं? अपनी प्रतिज्ञा अवश्य सत्य करूंगा। तुम्हारी शिक्षा से मैं बहुत ही प्रसन्न हूं, तनिक भी रुष्ट नहीं हूं। जो पतिव्रता का काम है वह तुमने किया है। तुम मेरी प्राणप्यारी पत्नी हो। मैं—जहां तक हो सकेगा वहां तक—तुम्हारे वचनों के अनुसार कार्य करूंगा, किन्तु सत्य का पालन अवश्य करूंगा।

ऋषियों की रक्षा जैसे हो सकेगी वैसे ज़रूर करूंगा। ऐसा कह कर रामजी, सीता तथा लक्ष्मण को ले कर दण्डकारण्य में गये।

आगे रामचन्द्र, मध्य में जानकी, उनके पीछे लक्ष्मण इसी प्रकार तीनों जन उस वन में परिभ्रमण करने लगे। वहां अनेक ऋषियों के आश्रमों में गये। जहां जितने दिनों तक इच्छा हुई, वहां उतने दिनों तक रहे। कहीं दस महीने, कहीं एक बरस, कहीं चार महीने, कहीं पांच महीने, कहीं छः महीने, कहीं अधिक, कहीं कम, इसी प्रकार दस बरसों तक वे तीनों वहां रहे। एक दिन राम ने सुतीक्ष्ण के पास आ कर पूछा भगवन्! अगस्त्य ऋषि का आश्रम कहां है? मैंने सुना है कि वे इसी वन में कहीं रहते हैं। सुतीक्ष्ण ने रास्ता बता दिया। रामजी सीता तथा लक्ष्मण को लिये वहां पहुंच गये। अगस्त्यजी इन तीनोंको देख कर बहुत प्रसन्न हुए। उनने कहा--इधर उधर दौड़ती फिरती सीताजी थक गयी हैं। इसलिए अब यहीं कहीं कुछ दूर पर आश्रम बना कर रहो, यहां से दो योजन पर "पंचवटी" नाम का एक स्थान है, वहां कन्द, मूल, फल, जल, सभी पदार्थ बहुतायत से मिलते हैं! वहां तुम्हारी धर्म-पत्नी को भी बड़ा सुख प्राप्त होगा। यह तुम्हारी स्त्री बड़ी सुकुमारी है, किन्तु तुम्हारे प्रेम में निमग्न रहती है, इसलिए वन के दुःखों को कुछ भी नहीं गिनती। जिस तरह इसका मन प्रसन्न रहे वही करो। इसने तुम्हारे साथ वन में आ कर बड़ा कष्ट उठाया है। जब से यह सृष्टि है तभी से स्त्रियों का यही स्वभाव है कि वे धन, धान्य से सुखी पति का ही साथ करती हैं और दरिद्र पति को छोड़ देती हैं। इनका मन बिजली

के समान चंचल, शस्त्रों के समान तीक्ष्ण, और गरुड़ तथा वायु के समान वेगवान् होता है। इनका मन बदलते देर नहीं होती, प्रेम टूटते विलम्ब नहीं होता, इनके विचार सदा हवा के समान उड़ा करते हैं। किन्तु सीता में ये सब दोष तनिक भी नहीं हैं, इसलिए सदा इनकी रुचि का कार्य करते रहना चाहिए।

अगस्त्य के आज्ञानुसार ये तीनों पंचवटी की ओर चले। रास्ते में जटायु से भेंट हुई। जब दोनोंमें परिचय हुआ तब जान पड़ा कि ये जटायु नामक गृध्र हैं और दशरथ के मित्र हैं। आगे बढ़ कर जब तीनों पंचवटी में पहुंचे तब लक्ष्मण ने कहा—भगवन्! यह स्थान बहुत ही उत्तम है, यहां जल, कुश, कन्द, फूल, फल सब सुलभ हैं। मेरी इच्छा होती है कि हम लोग यहीं कुछ दिनों तक निवास करें। राम ने कहा,—ऐ प्रिय वत्स, लक्ष्मण! मैं सदा तुम्हारे अधीन हूं, तुम जो कहोगे वही करूंगा। ज़हां रुचि हो वहीं वासस्थान बना लो।

वहां आश्रम बना कर तीनों रहने लगे। एक दिन लक्ष्मण ने रामजी से कहा—ऐ प्रिय भाई, रामजी! हेमन्त ऋतु आ गयी। सब लोग आनन्दपूर्वक दिन व्यतीत करने लगे, किन्तु मेरे प्रिय भाई ऐसे समय भी तप करके कठिन दुःख भोग रहे हैं। जो पुण्य आपने वन में तप करके प्राप्त किया, वह पुण्य भरत ने अयोध्या ही में रह कर तप के द्वारा प्राप्त कर लिया। शास्त्रों में लिखा है कि द्विपद अर्थात् मनुष्य माता के स्वभाव के अनुसार ही स्वभाव वाले होते हैं, किन्तु भरत ने इस सिद्धान्त को मिथ्या सिद्ध कर दिया। जिसके पति दशरथ इतने बड़े धर्मात्मा और पुत्र भरत

इतने बड़े साधु उसी माता कैकेयी का स्वभाव इतना क्रूर क्यों हुआ? रामने कहा—माता कैकेयी की निन्दा मत करो, हां, रघुकुल-तिलक भरत की प्रशंसा जहां तक हो सके करो, किन्तु माता कैकेयी को कुछ मत कहो, वे सदा हमलोगों की पूज्य हैं।

एक समय की बात है कि राम, लक्ष्मण तथा जानकीजी ये तीनों एक ही स्थान पर बैठे हुए थे। लक्ष्मणजी ने बड़ी नम्रता के साथ रामजी से पूछा—हे भगवन्! कृपा करके मुझे बताइये कि ईश्वर और जीव में क्या भेद है? ज्ञान का तत्व, वैराग्य का स्वरूप, और माया क्या है? भक्ति किसे कहते हैं, जो तुम्हारी बड़ी प्रिय वस्तु है? रामजीने कहा,—मैं थोड़े ही में यह बात समझा देता हूं। देह में अहंभाव, अपने पदार्थों में ममता, औरोंके धन में ममत्व, यही माया का स्वरूप है। मैं, तैं, मेरा, और तेरा, इन्हीं शब्दों ने सबको अपने वश में कर लिया है। जहां तक मन तथा इन्द्रियां जा सकती हैं वहां तक सभी माया ही है। माया के दो भेद हैं। विद्या और अविद्या। अविद्या दुःख-स्वरूप है जिस के वश होकर जीव संसाररूपी कूप में पड़ा है। विद्या नाम की माया प्रभु की आज्ञा से जगत् की रचना करती है। त्रिगुण (रजोगुण, तमोगुण, और सत्वगुण) उस माया के वश में हैं और माया ईश्वर के वश में है। ज्ञान उसे कहते हैं जहां मान, अपमान कुछ भी नहीं है। सब ब्रह्मस्वरूप ही देख पड़ता है। जो तीनों गुणों की सिद्धि को तृण के समान त्याग कर देता है, उसे परम विरागी समझना चाहिए। जब तक आत्मा अपनेको "माया का ईश" अर्थात् ईश्वर नहीं जानती तब तक तक जीव कहलाती है।

जब उसने अपनेको जान लिया, तब बंधन से छूट गया, सबसे परे हो गया, और माया को आज्ञा देनेवाला ईश्वर बन गया। माया में बद्ध आत्मा जीव है और माया से मुक्त आत्मा ईश्वर है। धर्म से त्याग होता है, योग से ज्ञान होता है और ज्ञान से मोक्ष होता है। किन्तु भक्ति सब सुखों का मूल है जो संतों की कृपा से प्राप्त होती है। भक्ति ही से भक्त लोग मुझे सहज ही पा जाते हैं। सच्चे ब्राह्मणों के चरणों में प्रीति रखना, अपने धर्म में प्रीति रखना और सब विषयों से विराग रखना, इन्हीं कारणों से मेरी भक्ति उत्पन्न होती है। मुमुक्षु मेरी नवधा भक्ति करे, मेरे चरित को प्रेमपूर्वक श्रवण करे, संतों की सेवा करे, मन, वचन तथा कर्म से मेरे भजन में प्रेम करे, मुझे ही अपना गुरु, पिता माता, बंधु तथा पति सब कुछ समझे। मेरा गुण गाते ही जिसके शरीर के सब रोम खड़े हो जाते हैं, वचन गद्‌गद हो जाता है, आँखों से आँसू की धारा बहने लगती है, और जिसके मन में कामादि विकार नहीं रहता है, उसीके वश में मैं रहता हूं। जो मेरे ही अवलम्ब से रहता है और निष्काम हो कर मेरा भजन करता है उसके हृदयकमल में मेरा निवास रहता है। यह उपदेश सुन कर लक्ष्मणजी बहुत प्रसन्न हुए।

एक दिन तीनों जन बैठे परस्पर कुछ बातें कर रहे थे, उसी समय एक राक्षसी आयी जिसका नाम "सूर्पणखा" था। वह राम का रूप देख कर मोहित हो गयी। उसने राम से कहा, देखो, मैं सीता से बढ़कर सुन्दरी हूं। तुम मेरे पति बनो। मैं तुम्हारे योग्य सुन्दरी स्त्री हूं। सीता कुरूपा है। जब उसे मैं खा जाऊंगी, तब हम लोग

निष्कण्टक सुख भोगेंगे। राम ने उसकी निर्लज्जता देख हंस कर कहा—मेरा विवाह हो चुका है। मेरा भाई लक्ष्मण अभी क्वारा और युवा है, तुम उसीके साथ विवाह करलो। यह वचन सुन सूर्पणखा लक्ष्मण के पास पहुंची। लक्ष्मण ने कहा—मैं दास हूं। दास की स्त्री होने से तुम्हें दासी वनना पड़ेगा। तुम मेरे भाई के पास जाओ। इसी प्रकार दोनोंने कहा और सूर्पणखा बारी बारी से दोनोंके पास गयी, अन्त में क्रोधित हो कर सीता की ओर मारने के लिए झपटी। राम ने क्रोध करके कहा—ऐ लक्ष्मण, इस राक्षसी का नाक, कान काट लो। लक्ष्मण ने वैसा ही किया। वह रोती हुई "खर" के पास गयी। खर उसका भाई था। उसने उसकी दशा देख पूछा—"किसने तुम्हारी ऐसी दशा की है?" कौन काले सर्प को पैर से दबा कर अपनी मृत्यु के लिए जगाना चाहता है? कौन अपनी गर्दन में कालपाश डालना चाहता है? और कौन हलाहल विष पीना चाहता है? सूर्पणखा ने कहा—राम तथा लक्ष्मण ने मेरी ऐसी दुर्दशा की है। खर, दूषण और त्रिशिरा, ये तीनों ही चौदह हज़ार राक्षसों की सेना लेकर आये। अकेले राम ने उन सबोंको मार डाला, किन्तु खर बचा हुआ था, उससे जब युद्ध होने लगा तब राम ने कहा, ऐ खर, तुम बड़े पापी हो, देखो, जो दुष्ट होता है और सबको कष्ट देता है उसे सब लोग विषधर सर्प के समान दुःखदायी समझ कर मार डालते हैं। जो लोभ वा काम के वश हो कर पाप करते हैं उनका अवश्य नाश होता है। तुमने दण्डकारण्यवासी तपस्वी सात्विक ऋषियों को मारकर क्या फल पाया है? जो लोग पापी हैं क्रूर हैं और

लोक-निन्दित कार्य करनेवाले हैं, वे लोग ऐश्वर्य पाकर भी निर्बल-मूलवाले वृक्षों के समान बहुत दिनों तक नहीं ठहर सकते। पाप कर्म करनेवाले जन अपने किये पापों का भयंकर फल अवश्य पाते हैं। जैसे वृक्ष ऋतु के फूलों तथा फलों को समय पाकर अवश्य पा जाते हैं, जैसे विषयुक्त अन्न के खाने का फल तुरत होता है, वैसे ही किये हुए पापों का फल भी तुरत ही हो जाता है। राजा दशरथ ने, ऋषियों को दुःख देनेवाले तथा पाप करने वाले राक्षसों के प्राण नष्ट करने के लिए मुझे इस वन में भेजा है। ये मेरे फेंके हुए बाण तुम्हारे शरीर छेद कर पृथिवी में प्रवेश कर जायंगे'

खर ने कहा—ऐ राम, तुम साधारण निर्बल राक्षसों को मार कर इतना अहंकार कर रहे हो। जो सच्चे वीर तथा पराक्रमी होते हैं वे अपने मुंह अपनी प्रशंसा कभी नहीं करते, किन्तु जो अधम नर हैं वे ही अपने मुंह अपनी प्रशंसा करते हैं। कौन ऐसा मूर्ख होगा जो मृत्यु के समय अपनी प्रशंसा करेगा? जिनके गले में कालपाश पड़ जाता है, उनके मन तथा सब इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं और उन्हें कर्तव्य अकर्तव्य, का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता।

इस प्रकार दोनोंमें विवाद हुआ, अन्त में राम ने सब परिवार के साथ खर का नाश किया। दण्डकारण्य के राक्षसों के मरने के बाद अकम्पन ने रावण से सब समाचार कह सुनाया। कुछ देर के बाद सूर्पणखा रावण के पास पहुंची। उसने बड़ा क्रोध करके रावण से कहा—तुम काम-भोग में प्रमत्त हो रहे हो, अपनी

इच्छा के अनुसार कार्य कर रहे हो, निर्भय हो रहे हो, तुम्हारे ऊपर घोर विपत्ति आकर खड़ी हुई है, पर तुम अपनी अज्ञानता से नहीं जानते हो। पर जानना उचित था। जो राजा भोग में आसक्त हो जाता है और स्त्रियों में लिप्त रहता है उससे प्रजा घृणा वैसे ही करती है जैसे सब लोग श्मशान की आग से घृणा करते हैं। जो राजा उचित समय पर अपने सब कार्य नहीं करता उसके सब कार्य और राज्य दोनों नष्ट हो जाते हैं। जिस राजा के योग्य चार नहीं रहते, जिसका दर्शन सब प्रजा नहीं पा सकती, जो राजा स्त्री, मद्य, जूआ, आदि के अधीन रहता है, उससे प्रजा अलग ही रहना चाहती है, जैसे नदी के कीचड़ से हाथी अलग रहना चाहता है। जो राजा दूसरेके अधीन राज्यों को अपने वश में नहीं करता, और अपने अधीन करके उनका पालन नहीं करता उसकी वृद्धि नहीं होती, जैसे समुद्र में डूबे हुए पहाड़ों की वृद्धि नहीं होती। तुमने बलवान् देव दानव, तथा गन्धर्वों से शत्रुता कर ली है; पर तुम्हारे चार योग्य नहीं हैं, तुम भी चञ्चल हो तब कैसे राजा बने रहोगे? तुम्हारा स्वभाव बालकों के समान है, तुम बुद्धिहीन हो, जो जानना चाहिए वह नहीं जानते हो, तब तुम्हारा राज्य कैसे स्थिर रहेगा? जिसके दूत, कोश, तथा नीति अपने अधीन नहीं हैं, वह राजा साधारण मनुष्यों के समान है। जिन चारों के द्वारा दूर रहनेवाले पदार्थों को भी राजा लोग देख लेते हैं उन्हीं चारों के कारण राजा लोग दूरदर्शी (दूर की वस्तु देखनेवाले) समझे जाते हैं। मैं जानती हूं कि तुम्हारे मन्त्री साधारण लोग हैं, तुम्हारे दूत भी

अच्छे नहीं हैं, इसीलिए तुम्हारे राज्य में बसनेवाले तुम्हारे आत्मीय जन मारे गये हैं, पर तुम नहीं जानते हो। राम ने चौदह हज़ार राक्षसों को मार डाला; खर, दूषण तथा त्रिशिरा भी मारे गये, पर तुमको कुछ भी ख़बर नहीं है। उसने ऋषियों को अभय कर दिया, दण्डकवन को शान्तिपूर्ण कर दिया और जनस्थान को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। ऐ रावण! तुम लोभी, पागल, और मतवाले हो, इसीसे तुम्हारे राज्य में भय उत्पन्न हो गया है; पर उसे तुम नहीं जानते हो। जो कठोर, कृपण, मतवाला, अहंकारी, तथा धूर्त्त, होता है उस राजा को विपत्ति पड़ने पर प्रजा छोड़ देती है। कोई उसके पास नहीं जाता। जो अत्यन्त अभिमानी, अपने जनों से घृणा करनेवाला, आपही अपनी प्रतिष्ठा करनेवाला, और क्रोधी होता है, उस राजा को विपत्ति पड़ने पर अपने जन भी मार डालते हैं। जो राजा उचित समय पर कार्य नहीं करता, या उसके मन्त्री कार्य नहीं करते, जो भय के समय डर कर भय छुड़ाने का उपाय नहीं करता या उसके मन्त्री नहीं करते, वह राज्य से गिर कर तृण के समान निस्तेज हो जाता है। सूखी लकड़ियों, ढेले, तथा धूलियों से काम बन जाते हैं, पर राज्य से गिरे हुए राजाओं से कुछ काम नहीं बन सकता। जैसे पुराना वस्त्र, तथा मुरझायी हुई माला व्यर्थ हैं, वैसे ही राज्य से गिरा हुआ राजा व्यर्थ तथा शक्तिहीन है। जो राजा सावधान, सर्वज्ञ, इन्द्रियों को वश में रखनेवाला, उपकार माननेवाला तथा धर्मात्मा होता है वह बहुत दिनों तक राज्य पर बैठा रहता है। जो राजा आँखों से सोया करता है, पर नीति के नयनों से जगा

रहता है (जो सदा नीति-पूर्वक प्रजा पालन करता है) और जो समय पर क्रोध कर के दण्ड देता है और प्रसन्न होकर पारितोषिक देता है, वह राजा सबसे पूज्य होता है। ऐ रावण, तुम इन गुणों से विहीन हो इस लिए राजा बनने के योग्य नहीं हो। देखो,-शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, राजा और सांप, यदि ये छोटे हों तो भी इनसे डरना चाहिए।

सूर्पणखा की बात सुन कर रावण को बड़ा क्रोध हुआ। उस ने पूछा—राम कौन है? कैसी उसकी वीरता है? और वह क्यों दण्डकारण्य में आया है? सूर्पणखा ने सब समाचार विस्तार से कह सुनाये। रावण ने कहा—अच्छा, मैं उससे बदला ले लूंगा। फिर वह मारीच के पास गया और बोला—ऐ मित्र मारीच, मैं राम की पत्नी सीता को चुरा कर अपनी लङ्का में लाना चाहता हूं, तुम सुवर्ण के मृग बन कर राम के आश्रम में चलो, जब जानकी तुम्हें देख पति से पकड़ने के लिए कहेगी तब राम तुम्हारे पीछे दौड़ेंगे। जब दूर चले जायंगे तब तुम राम ही के स्वर में "हा सीते, हा लक्ष्मण", मेरी रक्षा करो" ऐसा कह कर पुकारना। जब लक्ष्मण उनकी रक्षा के लिए आश्रम से बाहर चला जायगा तब मैं सीता का हरण कर लूंगा। मारीच ने कहा—सुनो, मैं तुम्हारा शुभचिन्तक हूं; इस लिए उचित शिक्षा देता हूं। देखो, प्रिय बोलनेवाले तो बहुत से मनुष्य मिलेंगे किन्तु हितकारी, कठोर वचन कहनेवाले बहुत ही कम मिलेंगे, या मिलेंगे ही नहीं। राम से बैर करना ठीक नहीं है। यदि वे क्रोधित हो जायंगे तो तुम्हारा नाश कर देंगे। जो तुम्हारे समान कामी,

निर्लज्ज, और पापी होते हैं वे अपने शरीर, परिवार तथा राज्य का नाश कर देते हैं। राम अग्नि के समान हैं, उनके खड्ग तथा धनुष सूखी लकड़ी के समान हैं, उनके बाण धधकती ज्वाला के समान हैं, अब तुम अपराध करके फतिंगे के समान उसमें पड़ कर भस्म हो जाओगे। तुम्हारे ही साथ निरपराध हम लोगों का भी नाश हो जायगा। देखो, जो लोग निरपराध होते हैं वे भी पापियों के संग से नष्ट हो जाते हैं जैसे तालाब की मछलियां हाथियों के प्रवेश कर जाने से। परायी स्त्री के संग करने से जो पाप होता है वह पाप सबसे बड़ा है। उसके बराबर कोई पाप नहीं है। अपनी विवाहिता स्त्री से प्रेम करना परमधर्म है। रामचन्द्र की वीरता का हाल मैं जानता हूं, जिस समय वे बालक थे और विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने के लिए उनके आश्रम में आये थे उस समय जब मैं यज्ञ विध्वंस करने के लिए वेदी के पास गया, तब उनने बिना मुख का बाण मुझे मारा। बाण के लगते ही मैं सौ योजन पर समुद्रतट में आकर गिरा। इस लिए मैं राम से बहुत डरता हूं।

रावण ने कहा—तुम मेरे मंत्री हो, जो मैं कहूं उसे कर लेना चाहिए। यदि राजा मन्त्री से दोष वा गुण, उपाय वा अपाय पूछे तो बताना चाहिए। मैं तुमसे सम्मति नहीं मांगता। इसलिए जो कहूं वह करो। जो मन्त्री बिना पूछे हित की भी बात कहता है उसे राजा नहीं सुनता, वरन अपमान करता है। राजा, अग्नि, इन्द्र, चन्द्र, यम और वरुण इन पांचों का स्वरूप है। क्रोध, पराक्रम, शान्ति, दण्ड और प्रसन्नता

ये पांचों धर्म क्रमशः उन पांचों देवता के हैं, उनका भी धारण वह राजा करता है। इसलिए राजा को सदा प्रतिष्ठा करनी चाहिए। तुम धर्म न जान कर मोह में पड़ कर उपदेश कर रहे हो। मैं तुमसे सहायता मांगने के लिए आया हूं। धर्मोपदेश सुनने के लिए नहीं।

मारीच ने कहा—जिस मंत्री ने तुमको यह सम्मति दी है उसका वध करना चाहिए। क्योंकि वह तुम्हें इस नीच पथ से नहीं हटाता। मंत्री का कर्तव्य है कि यदि राजा कामी हो जाय, कुत्सित पथ से चले, तो मंत्री उसे नीति-शास्त्र का उपदेश करके रोके। स्वामी ही की कृपा से मंत्री अर्थ, धर्म, काम और यश पाते हैं। यदि स्वामी अयोग्य होता है, और मन्त्रियों पर कृपा नहीं रखता, तो मन्त्रियों के अतिरिक्त दूसरे लोग भी दुःख ही पाते हैं। राजा ही सबका मूल है, राजा ही से, धर्म तथा यश प्राप्त होता है। इस कारण सब अवस्था में राजा को रक्षा करनी चाहिए। यदि कोई राजा तथा मन्त्री चाहे कि कठोरता से राज्य-शासन करें, तो हो नहीं सकता, प्रजा से शत्रुता करके, या अहंकार कर के कोई राजा सुखी नहीं रह सकता। यदि राजा कठोर होते हैं, और उनके मन्त्री भी कठोर होते हैं तो दोनोंका नाश होता है, जैसे मूर्ख सारथीवाला रथ कीचड़ में फंस कर स्वयं नष्ट होता है, और स्वामी तथा सारथी भी नष्ट हो जाते हैं। बहुत से सज्जन जो सदा धर्म का पालन करते हैं वे भी दूसरेके अपराध से सपरिवार नष्ट हो जाते हैं। जो राजा कठोर दण्ड देता है और प्रजा से सदा अप्रसन्न रहता है उसकी प्रजा रक्षित होने पर भी वैसे ही नष्ट

हो जाती है, जैसे सिंह आदि भयंकर जन्तुओं से रक्षित मृग नष्ट हो जाते हैं। यह निश्चय है कि अब तुम्हारा नाश होगा। तुम्हारे समान यदि कामी राजा है तो राक्षसों का नाश हो ही जायगा। मैं तो राम को देखते ही मर जाऊंगा किन्तु तुम भी थोड़े ही दिनों के बाद सपरिवार नष्ट हो जाओगे। मैंने तुम्हें बहुत समझाया पर तुम नहीं जानते हो, जिसका काल समीप आता है वह हित वचन नहीं सुनता। ऐसा कह कर मारीच रावण के साथ चला। वह राम के आश्रम में जाकर अत्यन्त सुन्दर सुवर्ण मृग बन कर घूमने लगा। सीताजी उसे देख बहुत प्रसन्न हुईं और उनने रामजी से कहा—ऐ प्रिय! मेरे लिए इस मृग को पकड़ लाओ। यदि यह जीता पकड़ा जायगा तो वनवास समाप्त होने पर हम लोग इसे अयोध्या के राजभवन में ले चल कर रक्खेंगे। वहां इसे देख सब लोग आश्चर्य करेंगे। यदि मारा जायगा तो इसका चाम बिछा कर हमलोग बैठेंगे।

सीता की बात सुनते ही राम तीर, धनुष ले कर खड़े हो गये और लक्ष्मण से बोले, "ऐ भाई लक्ष्मण, मैं इस हरिण को पकड़ने जा रहा हूं। इस वन में राक्षस बहुत हैं, तुम यथाशक्ति सीता की रक्षा करना।" इसके बाद रामचन्द्र मृग के पीछे दौड़े। जब कुछ दूर हरिण चला गया तब रामने बाण मारा। मरते समय वह राक्षस "हा लक्ष्मण, हा सीते, मुझे राक्षस मार रहा है, मेरी रक्षा करो।" इत्यादि कह कर पुकारने लगा। वह शब्द जानकी तथा लक्ष्मण के कानों में पड़ा। जानकी ने कहा, "ऐ लक्ष्मण, जान पड़ता है कि मेरे पति इस समय संकट में पड़े हैं। तुम तुरत जा

कर सहायता करो।" लक्ष्मण ने कहा"—मुझे रामजी तुम्हारी रक्षा के लिए छोड़ गये हैं। तुम्हें अकेली छोड़ कैसे जाऊं। मैं निश्चय जानता हूं कि रामजी को कोई नहीं मार सकता। यह केवल राक्षसी माया है।" जानकी ने क्रोध करके कहा—"तुम राम का मरना ही पसन्द करते हो, तुम गुप्त शत्रु हो, क्या तुम राम के न रहने पर मुझे अपनी स्त्री बनाना चाहते हो? तुम्हारा यह मनोरथ कभी सिद्ध न होगा। मैं अग्नि में भस्म हो जाऊंगी, जल में डूब जाऊंगी या विष खाकर मर जाऊंगी,।" यह सुनकर लक्ष्मण को बड़ा क्रोध हुआ। उनने कहा, "ऐ सीते! तुम्हारे नाश का समय आ गया है, इसी लिए ऐसा अनुचित वाक्य कह रही हो। तुम्हारे बाण के समान वचन मेरे कानों को अत्यन्त कष्ट दे रहे हैं। अच्छा, जाता हूं" ऐसा कह कर लक्ष्मण राम को ढूंढ़ने चले गये।

लक्ष्मण के चले जाने पर सीता अकेली पड़ गयीं। रावण ने अपनी कार्यसिद्धि के लिए अच्छा अवसर पा लिया। वह तुरत ही भिक्षुक का भेष धारण कर सीता के सामने आ खड़ा हुआ। सीता देखते ही डर गयीं। परिचय पूछने पर उसने साफ साफ अपना परिचय बता दिया। रावण का नाम सुनते ही सीताजी के प्राण सूख गये। रावण ने सीता को पकड़ कर रथ पर बैठा दिया। सीता "हा राम! हा लक्ष्मण! मेरी रक्षा करो" ऐसा कह कर बड़े जोर से चिल्लाने और रोने लगीं। उस समय जटायु नामक गृध्र ने सीता का रोदन सुना। वे तुरत आकर रावण से बोले—"ऐ रावण! तुम राजा हो, तुमको अपने धर्म पर स्थिर रहना चाहिए। स्त्रियों की सदा रक्षा करनी चाहिए। रानियों की रक्षा

तो अधिकतर करनी उचित है। पराई स्त्री के स्पर्श करने इच्छा मत करो, बुद्धिमान पुरुष वह काम न करे जिसकी निन्दा दूसरे लोग करें। विद्वान् जन जिस प्रकार अपनी स्त्री की रक्षा करते हैं उसी प्रकार दूसरेकी स्त्री की भी रक्षा करनी चाहिए। सबलोग शास्त्र-लिखित बातों पर ध्यान न देकर केवल राजा के आचरण का अनुकरण करते हैं; इसलिए राजा को कभी अनुचित कार्य नहीं करना चाहिए। राजा ही धर्म, धन, तथा काम का प्रधान आधार है। पाप या पुण्य राजा ही के कारण होते हैं। कामी का स्वभाव कभी छूट नहीं सकता। कामियों के घर में धर्म का निवास नहीं हो सकता। तुम कैसा अनर्थ कर रहे हो? पराई स्त्री का हरण महापाप है। चादर के अंचल में विषधर सर्प को बांध रहे हो, और गले में कालपाश डाल रहे हो, पर जानते नहीं हो कि इसका परिणाम क्या होगा। वही बोझ उठाना चाहिए जो उठ सके और वही अन्न खाना चाहिए जो अच्छी तरह पच जाय, वह काम नहीं करना चाहिए जिसके करने से खेद हो। काम वही करना चाहिए जिससे धर्म, यश तथा कीर्ति हो। जो हो, तुम मेरे देखते देखते कभी जानकी का हरण नहीं कर सकते। यदि इच्छा हो तो युद्ध कर लो। इसके बाद दोनों में युद्ध होने लगा। जटायु ने रावण को लड़ाई में हरा दिया, किन्तु अन्त में क्रोध से रावण ने बड़ा साहस करके अपनी तीखी तलवार से जटायु के पंख तथा पर काट दिये। जटायु शिथिल होकर भूमि पर गिर गये। रावण निर्भय होकर जानकी को आकाशमार्ग से ले चला। जानकी विलाप करती

जाती थीं, किन्तु रावण तनिक भी ध्यान नहीं देता था, जब जानकी किष्किन्धा के समीप ऋष्यमूक पर्वत के ऊपर पहुचीं तब उस पर्वत की चोटी पर पांच वानरों को देखा। सीता ने मन में सोचा कि यदि कदाचित् राम लक्ष्मण मुझे ढूंढ़ते ढूंढ़ते इधर आ जायंगे तो ये लोग मेरा समाचार राम, लक्ष्मण से कहेंगे। इसी विचार से जानकी ने अपनी चादर तथा कुछ गहने (बाजूबंद, पायजेब, और कुण्डल) उन्हीं वानरों के बीच गिरा दिये, और कहा—ऐ वानरो! यदि राम, लक्ष्मण इस रास्ते आवें तो उनसे कह देना कि रावण जानकी को चुरा ले गया। रावण जानकी को लेकर लंका में पहुंच गया और अशोकवाटिका में बड़ी सावधानी के साथ छिपा रक्खा। वहां बहुत सी भयंकर रूपिणी राक्षसियों का पहरा बैठा दिया।

जब रामचन्द्र मारीच को मार कर लौटे आ रहे थे तब रास्ते में उनने लक्ष्मण को देख कर पूछा, "क्यों भाई लक्ष्मण? तुम जानकी को छोड़ कर यहां क्यों चले आये! लक्ष्मण ने कहा —मेरी इच्छा नहीं थी कि मैं जानकी को अकेली छोड़ कर आऊं, किन्तु जब वन से आपही के समान करुणाभरे शब्द जानकी के कानों में आ पड़े तब जानकी ने मुझे आपकी रक्षा के लिए आने को कहा। जब मैंने उनका कहना नहीं माना तब उनने कहा, "ऐ लक्ष्मण! तुम पापी हो और राम के नष्ट हो जाने पर मेरे साथ पाप करना चाहते हो, तुम भरत की ओर से गुप्त-दूत बन कर हम लोगों का नाश करना चाहते हो, इत्यादि।" भला! आप ही बतलाइये मैं ऐसा कठोर वचन सुन कर कब ठहर

सकता था !" राम ने कहा—'तुमने अच्छा नहीं किया । निश्च है कि जानकी से अब भेंट न होगी । उनको राक्षस हर ले गये होंगे या मार कर खा गये होंगे ।" जब दोनों भाई अपने आश्रम लौटे तब जानकी को वहां न देख कर बहुत दुःखी हुए । राम जानकी के लिए बड़ा विलाप किया । लक्ष्मण ने समझा बुझा उन्हें किसी प्रकार चुप कराया । अन्त में दोनों भाई जानकी ढूंढ़ने के लिए बाहर निकले । रास्ते में जटायु से भेंट हुई जटायु ने सब समाचार कह सुनाये और कहा कि अब मैं तु प्राणत्याग करूंगा । राम ने कहा यदि कहिये तो आपके जीव का उपाय करूं । जटायु ने कहा, "जिसका नाम स्मरण कर से मोक्ष होता है फिर जब साक्षात् उसीका दर्शन हो गया, अब मोक्ष में क्या विलम्ब है' । राम ने कहा—"आप अपने शुभकर्मों के प्रभाव से मोक्ष पा रहे हैं । जो सदा परोपकारी उनके लिए जगत् में कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है । अब आप शरी त्याग कर वैकुण्ठ में चले जाइये ।"

अन्त में जटायु ने शरीर त्याग किया । राम ने उनकी दा क्रिया की; इसके अनन्तर विधिपूर्वक श्राद्ध-विधान किया । अ कुछ और आगे बढ़े तो शबरी मिली । उसने राम, लक्ष्मण बड़ा सत्कार किया और अनेक प्रकार के फल खिलाये । राम कहा—"ऐ शबरी ! मैं भक्ति ही से प्रसन्न होनेवाला हूं । जाति पांति, कुलधर्म, प्रतिष्ठा, धन, बल, परिवार, गुण, चतुरता आदि की शोभा भक्ति के बिना नहीं हो सकती, जैसे जल के बिना मेघ की । मैं तुमसे नवधा भक्ति का वर्णन करता हूं, सुनो ।

१ सन्तों का संग, २ रामकथा में प्रीति, ३ गुरु की सेवा ४ गुणगान करना, ५ मेरे मन्त्र का जप करना और दृढ़ विश्वास रखना, ६ इन्द्रियों को वश में रखना, विराग धारण करना, और सज्जनों का धर्म धारण करना, ७ सारे संसार को राममय देखना, और राम से अधिक सन्तों को समझना, ८ जो मिल जाय उसीसे सन्तोष करना और पराये का दोष न देखना, ९ कपट न करना, मुझपर विश्वास रखना; इनमें से यदि एक भी हो, तो मैं उसे मोक्ष देता हूं। क्योंकि मैं सबसे अधिक भक्त ही को प्यार करता हूं।"

"जो परमधाम योगियों को भी दुर्लभ है वही तुम्हारे लिए आज सुलभ हो गया है, क्योंकि मेरा दर्शन निष्फल नहीं हो सकता। तुम्हारी भक्ति भी सच्ची है। सुनो, मैं तुम्हें सन्तों का लक्षण सुनाता हूं—जिसे काम क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य का तनिक भी लेश नहीं है, जिसने इन छओं विकारों को जीत लिया है, जिसकी बुद्धि स्थिर है, जिसे किसी बात की कमी नहीं है, जिसके हृदय में सदा सन्तोष रहता है, जो सदा पवित्रता के साथ रहता है, जो सदा सुखी रहता है, जिसको पूर्ण ज्ञान है, जिसे किसी बात की इच्छा नहीं रहती, जो संसार का सुख बहुत कम भोगता है, जो अपनी प्रतिज्ञा का सदा पालन करता है, जो सदा योगरत रहता है, जो भक्ति करने में परम प्रवीण है, जो सब गुणों से विभूषित है, जिसे संसार का कोई दुःख नहीं व्यापता, जिसे किसी बात का संदेह नहीं है, जिसका प्रेम देह और गेह में नहीं है, जो केवल मेरे चरणों ही

में भक्ति रखता है, जो अपना गुण सुन कर लज्जित होता है, और दूसरेका गुण सुन कर आनन्दित होता है, जो कभी नीति का त्याग नहीं करता, जिसका चित्त सदा शान्त रहता है, जिसका स्वभाव कोमल रहता है, जो जप, तप, व्रत, दम, संयम, तथा नियम के साथ रहता है, जो परमेश्वर, गुरु और ब्राह्मणों में श्रद्धा रखता है. जिसके हृदय में क्षमा, दया श्रद्धा, मित्रता आदि गुण निवास करते हैं, जिसे वेदों का पूर्णज्ञान है, जो भूल कर भी कुमार्ग में पद नहीं रखता, जो सदा मेरी लीला गाता और सुनता है, जो विना कारण परोपकार करता है, वही साधु पुरुष या सन्त कहलाता है।"

रामचन्द्र शबरी से विदा हो कर आगे बढ़े। फिर भी सीता को याद कर विलाप करने लगे। लक्ष्मण ने कहा, "भगवन्! जो आप के समान बुद्धिमान् महाबली और श्रेष्ठ जन हैं वे विपत्तियों में भी नहीं घबड़ाते हैं।" राम ने कहा—"ऐ लक्ष्मण! तुम तनिक सोच कर मेरी विपत्तियों को देखो; राज्य छूट गया, वन में रहना पड़ा, सीता हरी गयी, और मेरे सहायक वृद्ध पक्षी जटायु भी मारे गये। मेरी यह भयङ्कर विपत्ति धधकती आग को भस्म कर सकती है।"

इसी प्रकार ढूंढ़ते ढूंढ़ते दोनों भाई "क्रौंचारण्य" में पहुंचे। उसे पार कर मतङ्गाश्रम में गये। आगे जाने पर कबन्ध से भेंट हुई। कबन्ध दोनों भाई को हाथ से पकड़ कर खाने का यत्न करने लगा। लक्ष्मण ने कहा—भगवन्! यह विपत्ति कहां से आ पहुंची? क्या हमलोगों की मृत्यु निकट है? जो शूर हैं, बलवान्

हैं तथा शस्त्र चलाने में निपुण हैं, वे भी जब काल के वश हो जाते हैं जब वालू के पुल के समान निर्बल होकर गिर जाते हैं।" राम ने कहा—तुम अभी लड़के हो तुरत घबड़ा जाते हो, खूब वीरता के साथ इसकी बाईं भुजा को अपनी तीखी तलवार से काट डालो, दाहिनी भुजा को मैं काटूँगा। दोनोंने ऐसा ही किया। बांह कट जाने पर कबंध ने कहा--मैं पूर्व जन्म का गन्धर्व हूं, एक ऋषि के शाप से राक्षस हो गया हूं। आप कृपा करके मुझे चिता में डाल कर भस्म कर दीजिये। मुझसे जहां तक हो सकेगा मैं आपकी सहायता करूंगा। राम, लक्ष्मण ने पहाड़ की एक खोह में सूखी घास, पात डाल कर कवन्ध को जला दिया। कवन्ध ने दिव्य रूप धारण कर कहा—'ऐ राम! तुम ऋष्यमूक पर्वत पर जा कर सुग्रीव से मिलो। वह तुम्हारा सब कार्य सिद्ध करेगा। वहां पंपा नामक सर है जो सब प्रकार सुखदायक है।" यह कह कर वह स्वर्ग में चला गया और ये दोनों भाई भी उसी के बताये हुए रास्ते से ऋष्यमूक पर्वत की ओर चले।

—:०:—

किष्किन्धा काण्ड।

राम और लक्ष्मण दोनों ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुंच गये। पर्वत के ऊपर सुग्रीव हनुमान आदि अपने पांच बानर मन्त्रियों के साथ, बैठे हुए थे। उनने इन दोनोंको देख बालि का भेदिया समझ हनुमान से कहा—"ऐ मित्र! जान पड़ता है कि ये दोनों बालि के मित्र हैं। राजाओं के बहुतसे मित्र होते हैं। इसमें कुछ भी आश्चर्य

नहीं है कि वालि को मनुष्य से मित्रता है। वालि ने मुझे मारने ही के लिये इन दोनोंको यहां भेजा है। शत्रु लोग विश्वास उत्पन्न करा कर दूसरेके द्वारा अपने शत्रुओं का वध कराते हैं। शत्रु शत्रु को अवसर पाकर मार डालते हैं। राजा लोग बड़े बुद्धिमान होते हैं, वे अपनी दूरदर्शिता से युक्ति कर के शत्रुओं का नाश करते हैं। तुम जाकर परीक्षा करो कि वे दोनों कौन हैं और यहां किस लिये आये हैं।"

हनुमान सुग्रीव की आज्ञा पा ब्राह्मण का रूप धारण कर दोनों भाई के निकट आये और प्रणाम कर के इन दोनोंसे आने का कारण पूछा। इनकी नम्रता तथा वचनचातुरी देख कर रामजी ने लक्ष्मणजी से कहा—"ऐ लक्ष्मण! देखो, इनके सम्भाषण से जान पड़ता है कि इनने चारों वेद तथा छओं अंगों के साथ समस्त व्याकरण पढ़ डाले हैं, क्योंकि इनके वचनों में कोई अशुद्धि नहीं है। इनके बोलने के समय मुख, नेत्र, ललाट, भौंहें, तथा अन्य अङ्गों में कोई विकार नहीं होता है, इससे जान पड़ता है कि ये सच्चे तथा निष्कपट हैं। इनके वचन संक्षिप्त, सन्देहरहित, विलम्बरहित तथा कष्टशून्य हैं। जो इनके हृदय में है उसीका ये उच्चारण भी करते हैं। इनका वचन सुन कर हृदय में हर्ष उत्पन्न होता है। कौन ऐसा पुरुष है जिसको इनका वचन सुन कर आनन्द न हो? इस प्रकार गुणसम्पन्न जिसके दूत हैं उसके कार्य क्यों न सिद्ध होंगे? जिसके साधक गुणी होते हैं उसके सब कार्य अवश्य पूर्ण होते हैं।"

हनुमान् ने कहा—"मैं आपसे यह पूछना चाहता हूं कि आप कौन हैं और यहां किस कारण आये हैं ?" लक्ष्मण ने राम की आज्ञा से सब समाचार कह सुनाया। हनुमान् ने कहा—भगवन् ! मैं आप को जान गया, आप मेरे प्रभु हैं, हे नाथ ! यह जीव आपकी माया से मोहित रहता है, जब आपकी कृपा होती है तब इसका उद्धार होता है। सेवक स्वामी के भरोसे और पुत्र पिता के भरोसे सदा निर्भय रहता है। राम ने कहा—यद्यपि मैं समदर्शी हूं तथापि सेवकों पर मेरा अधिक प्रेम रहता है। हनुमान् ने कहा—ऐ वीर-शिरोमणि राम ! आपके साथ सुग्रीव मित्रता करना चाहते हैं। वे वानरों के राजा हैं। उनसे मित्रता करने पर दोनोंकी भलाई है। राम ने लक्ष्मण की अनुमति से मित्रता करना निश्चय किया। हनुमान् ने दोनोंको पीठ पर चढ़ा कर सुग्रीव के पास पहुंचा दिया। दोनोंमें अग्नि की साक्षी दे कर मित्रता की स्थापना की गयी। सुग्रीव ने कहा—आपकी स्त्री सीताजी को चुरा कर रावण आकाशमार्ग से चला जाता था। हमलोगों को देख कर सीताजी ने अपने कुछ गहने और वस्त्र गिरा दिये थे, जो मेरे पास यत्नपूर्वक रक्खे हैं, कहिये तो उन्हें दिखला दूं। रामने गहने तथा वस्त्र मांगे, तब हनुमान् ने लाकर राम के सामने रख दिये। राम देखते ही अधीर हो कर विलाप करने लगे। सुग्रीव ने कहा—भगवन् ! धैर्य धारण कीजिये। आप अपनी वीरता की मर्य्यादा का उल्लंघन मत कीजिये। धीर पुरुष, विपत्ति पड़ने पर, दरिद्रता आ जाने पर, भय उत्पन्न होने पर या मरण का समय प्राप्त होने पर अपनी विचारबुद्धि के सहारे शोक नहीं करते। जो कायर होते हैं वे

साधारण विपत्ति में भी घबड़ा जाते हैं। जिस प्रकार बड़े बोझ से लदी नाव पानी में डूब जाती है, वैसे ही वे कायर अयश में डूब जाते हैं। मैं आपको हाथ जोड़ता हूं। आप प्रसन्न हों, शोक न करें। आप बल का अवलम्बन करें। जो शोक करते हैं वे सुख नहीं पा सकते। उनका तेज भी नष्ट हो जाता है। जो शोक करते हैं उनके जीवन में भी सन्देह हो जाता है। आपके समान वीर पुरुष कभी धैर्य नहीं छोड़ते। आप धैर्य धारण करें। जहां तक हो सकेगा आपकी सहायता करूंगा। जब मुझपर देवताओं की कृपा हुई है तभी आप सरीखे महात्मा मेरे मित्र मिले हैं। मैं निश्चय जानता हूं कि आपकी प्रीति निश्चल है, क्योंकि आप सरीखे धीरों की प्रीति अवश्य स्थिर होती है। मित्र धनी हो वा दरिद्र हो, सुखी हो वा दुःखी हो, किन्तु मित्र की रक्षा करनेवाला एक मित्र ही है, दूसरा कोई नहीं। मित्र के स्नेह को हृदय में रख कर मित्र—धन, सुख और देश—सभी का त्याग कर देता है। जो उपकार करता है वही मित्र है और जो अपकार करता है वही शत्रु है।

राम ने कहा—ऐ मित्र सुग्रीव, जो मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते उनका मुंह देखने से भी पाप होता है। अपने पर्वतसमान महादुःख को भी धूलि के समान समझना चाहिए और मित्र के धूलिसमान दुःख को भी पर्वत के समान समझना चाहिए। मित्र का धर्म है कि वह अपने मित्र को कुपथ से हटा कर सुपथ पर चलावे, मित्र के अवगुण को छिपावे और गुण को प्रगट करे। धन देने या लेने में शंका न करे और बल के अनुसार

सदा हित करे। विपत्ति-काल में सौगुना स्नेह बढ़ावे, ये ही मित्र के गुण हैं, ऐसा शास्त्रों में लिखा है। जो सामने कोमल वचन बोलता है, और पीछे बुराई तथा दुष्टता करता है, जो सर्प के समान ऊपर से चिकना, चमकीला तथा कोमल होता है और भीतर भयंकर विष धारण करता है, ऐसे मित्रों को त्याग ही करने में भलाई है। दुष्ट सेवक, कृपण राजा, व्यभिचारिणी स्त्री और कपटी मित्र ये सब शूल के समान हैं। ऐ मित्र सुग्रीव, तुम सोच मत करो, मैं सब प्रकार तुम्हारी सहायता करूंगा।

सुग्रीव ने कहा—मेरा बड़ा भाई वालि है। हम दोनोंमें बड़ी मित्रता थी। एक दिन मायावी नामक राक्षस आया। वालि ने उसे भगाया। वह कंदरा में जा छिपा। वालि भी उसी कंदरा में घुस गया। मैं एक महीने तक उसी कंदरा के द्वार पर खड़ा था। जब कंदरा के भीतर से रुधिर की धारा बह चली तब मैंने जाना कि वालि मारा गया। अब वह राक्षस आकर मुझे भी मारेगा, इस लिए मैं कंदरा के द्वार पर पत्थर की चट्टान रख कर भाग आया। किष्किंधानगरी के सब लोगों ने वालि को मरा जान कर मेरी इच्छा न रहने पर भी मुझे राजा बना दिया। जब वालि लौट आया तब मैंने उसको राज्य सौंप दिया। तोभी उसके मन से संदेह नहीं गया। उसने मुझसे शत्रुता कर के मेरी स्त्री को हर लिया और मुझे नगर से बाहर निकाल दिया। अब वह मुझे मारना चाहता है, किन्तु मैं छिप कर इस पर्वत पर रहता हूं। एक ऋषि के शाप के डर से वह इस पर्वत पर नहीं आता। वालि बड़ा बलवान् है। क्या आप उसे मार सकेंगे? वालि ने दुंदुभिनामक

राक्षस को मारा था जिसकी ये हड्डियां पड़ी हैं। ये ताल के सात वृक्ष जो सामने देख पड़ते हैं, इन सबको बालि हिलाता था। राम ने उन हड्डियों के पर्वत को पैर के अँगूठे से चार कोस दूर पर फेंक दिया और ताल के सातों वृक्षों को एक ही बाण से काट कर गिरा दिया। यह देख कर सुग्रीव को विश्वास हो गया कि रामजी बालि को अवश्य मारेंगे।

दूसरे दिन सुग्रीव रामजी को लेकर बालि के पास युद्ध करने के लिये गया। किष्किंधा के द्वार पर खड़े हो कर सुग्रीव ने बालि को ललकारा। बालि सुनते ही दौड़ा। तारा ने कहा—ऐ पति, युद्ध करने के लिए मत जाओ। इसमें कुछ गुप्त भेद जान पड़ता है। सुग्रीव तो तुम्हारे डर से भागा फिरता था, आज क्या कारण है कि वह निर्भय होकर तुमसे लड़ने के लिए ललकार रहा है? इसको कोई प्रबल सहायक अवश्य मिल गया है। मैंने अंगद के मुंह से सुना है कि दशरथ के पुत्र परम वीर राम, लक्ष्मण से इसकी मित्रता हो गयी है। मेरी राय है कि तुम सुग्रीव से संधि कर लो। बालि ने कहा—तुम्हारा कहना सत्य है, किन्तु मेरे सरीखे वीर से ऐसा निरादर नहीं सहा जा सकता। वह तो युद्ध करने के लिए मुझे ललकार रहा है और मैं संधि के लिए प्रार्थना करूं? किसी शत्रु का गर्जन सह लेना वीरों के लिए मरण से बढ़ कर दुःखदायी है। यह कह वह किले से बाहर निकला। तारा के हित-वचन पर उसने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। सच है—जो काल के वश हो जाता है वह किसीका हित-वचन नहीं सुनता। इसके बाद दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। राम ने पेड़ की

ओट में खड़े हो कर एक बाण मारा, जिससे घायल हो कर वालि भूमि पर गिर पड़ा। रामचन्द्र उसके सामने आ कर खड़े हो गये और बोले—क्या तुम्हारे प्राणों की रक्षा करूं? वालि ने कहा— मुझे यह नहीं जान पड़ता कि आपने मुझे मार कर क्या फल पाया है! दम, शम, क्षमा, धीरता, बल, पराक्रम, और अपकारियों को दण्ड देना, ये सब राजा के गुण हैं। भूमि, सुवर्ण तथा रुपये, इन्हीं सबोंके लिए राजा किसीको मारता है या कैद करता है। मेरे समान निरपराध वनचारी को आपने क्यों मारा है? यदि सज्जन लोग आपसे इसका कारण पूछेंगे तो आप क्या उत्तर देंगे? राजा को मारनेवाला, गौ को मारनेवाला, प्राणियों को निरपराध वध करनेवाला, चोरी करनेवाला, नास्तिक और बड़े पुत्र या पुत्री का विवाह न कर के छोटे पुत्र या पुत्री का विवाह करनेवाला, ये सब नरकगामी होते हैं। दूसरेकी निन्दा करनेवाला, परम कृपण, मित्रघाती और गुरुस्त्री-गमन करनेवाला. नरक में पड़ता है। मेरा मांस धर्मात्मा लोग नहीं खाते, मेरा चाम बिछाने या किसी दूसरे काम में नहीं आता, फिर आपने मेरा वध क्यों किया? राम ने कहा—कई ऐसे ही कारण हैं जिनके लिए मैंने तुम्हें मारा है। देखो, तुम कामी हो, धर्म छोड़ कर अधर्म करते हो। बड़ा भाई, पिता और गुरु ये तीनों बराबर हैं। छोटा भाई पुत्र के बराबर है, उसकी स्त्री (भौह), बहिन, पतोहू और पुत्री ये चारों बराबर हैं। तुमने छोटे भाई की स्त्री से प्रसङ्ग किया है. इस कारण मैंने तुम्हारा वध किया है। इस पाप का पूर्ण दण्ड प्राणवध ही है। जो राजा पापियों को दण्ड नहीं देता वह नरक

में पड़ता है। दूसरी बात यह कि जिस समय सुग्रीव से मुझे मित्रता हुई उसी समय सुग्रीव ने तुमको मारने के लिए मुझसे दृढ़ प्रतिज्ञा करा ली थी, इससे मैं विवश था। जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करता वह नरक में पड़ता है। जो हो, यदि कहो तो मैं तुम्हें जिला दूं। बालि ने कहा—आप मेरे अपराधों को क्षमा करें। मेरे प्रिय पुत्र अंगद को पुत्र समझ कर पालन करने की प्रतिज्ञा करें। जिस प्रकार आप भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न पर कृपा रखते हैं उसी प्रकार अंगद पर कृपा रक्खें। सुग्रीव राज्यमद से मत्त हो कर तारा का निरादर न करे, ऐसा ही यत्न आप कीजियेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अङ्गद आपकी पूरी सेवा करेगा। अब मुझे जीने की इच्छा नहीं है, बहुत अच्छा अवसर आ गया है। अब प्राण-त्याग करने ही में भलाई है। मुनिलोग कई जन्म तप करते हैं पर अन्त में रामचन्द्र का नाम स्मरण नहीं होता। जिसके नाम के बल से शिवजी काशी में मरनेवालों को मोक्ष देते हैं उसीका आज दर्शन हो गया। अब मैं मर कर परम-पद पाऊंगा। यह कह कर बालि ने अपना शरीर त्याग कर दिया। तारा ने बड़ा विलाप किया। रामजी ने कहा—ऐ तारा! अब सोच करना व्यर्थ है! शोक करने से मृतक को बड़ा कष्ट होता है। भाग्यही सबका कारण है। भाग्य ही सब कार्यों का पूरा करनेवाला है। भाग्य ही के कारण मनुष्य किसी कार्य में प्रवृत्त होता है। काल कभी नष्ट नहीं होता, काल कभी दुर्बल नहीं होता। काल का कोई बन्धु नहीं है। संसार के सभी पदार्थ काल के वश में हैं। धर्म, अर्थ, काम सभी काल ही के क्रम में बंधे हैं। इस लिए बालि की मृत्यु पर

शोक करना व्यर्थ है । पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन्हीं पांच तत्वों से यह शरीर बना है । वही शरीर तुम्हारे आगे पड़ा है और जीव तो कभी मरता ही नहीं, वह नित्य है, फिर तुम किस लिये रो रही हो ? यह वचन सुनकर तारा को बहुत कुछ धीरज हो गया ।

बालि के मरजाने के बाद राम ने सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा और अंगद को युवराज बना दिया । धन्य हैं रामजी ! प्राणियों का हितैषी उनके समान दूसरा कोई नहीं है । देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, सभी स्वार्थवश प्रेम करते हैं, किन्तु रामजी का प्रेम निःस्वार्थ है और परोपकार के लिये है । जो सुग्रीव बालि के डर से सदा दुःखी रहा करते थे, उन्हें ही रामजी ने किष्किन्धा का राजा बना दिया ।

रामजी ने कहा, ऐ सुग्रीव, अब वर्षा ऋतु आ गई, यह उद्योग का समय नहीं है, इससे मैं इसी पर्वत पर लक्ष्मण के साथ चौमासा बिताऊंगा । मैं चौदह वर्षों तक बस्ती में नहीं जाऊंगा । तुम अंगद के साथ राज्य करो । शरद्‌ऋतु के आजाने पर सीता को ढूंढ़ने का उद्योग करना । सुग्रीव किष्किन्धा में जाकर राज्य करने लगे और रामजी पर्वत पर झोंपड़ा बना कर लक्ष्मण के साथ रहने लगे । वर्षा ऋतु आ गई । पानी बरसने लगा । ताल, तलैया नदियां, आदि सभी भर गये । भूमि घासों से हरी हो गई, मोर कूकने लगे, आकाश में बिजली चमकने लगी । वर्षा की विचित्र शोभा देख राम ने सीता के बिरह से दुःखी होकर लक्ष्मण से कहा—

ऐ लक्ष्मण ! देखो, वर्षा ऋतु आ गई। बादलों को देख मोर नाचने लगे, जैसे सच्चे वैष्णव विष्णुभक्त को देख कर आनन्द से नाचने लगते हैं। दुष्टजनों को प्रीति के समान बिजली चमक कर मेघ में लीन हो जाती है। जैसे विद्वान् विद्या पाकर झुक जाते हैं वैसे ही ये बादल झुक झुक कर बरस रहे हैं। जैसे खलों के वचन संत सहते हैं वैसे ही पर्वत बून्दों की चोटें सह रहे हैं। जैसे थोड़े धन से दुष्टजन अहङ्कार कर इतराते फिरते हैं वैसे ही छोटी नदियां जल से भरकर उतराने लगती हैं। जैसे जीव माया के संग से मलिन हो जाता है वैसे ही जल भूमि पर पड़ते ही गंदले हो जाते हैं। जैसे सद्गुण सज्जनों के पास आ जाते हैं वैसे ही जल समिट समिट कर तालावों में आ जाते हैं। जैसे जीव ब्रह्म में जाकर स्थिर हो जाता है वैसे ही जल समुद्र में जाकर स्थिर हो जाते हैं। जैसे पाखण्डियों के विवाद से उत्तम ग्रन्थ (वेदादि) लुप्त हो जाते हैं वैसे ही घासों के उग आने से रास्ते छिप गये हैं, तनिक भी नहीं देख पड़ते। जैसे ब्राह्मणों के ब्रह्मचारी बालक वेद पाठ करते हैं वैसे ही मेढ़क अपनी टरटराहट लगा रहे हैं। जैसे साधकों के मन में विवेक उत्पन्न होते हैं वैसे ही वृक्षों में नये नये पल्लव उत्पन्न हो रहे हैं। जैसे अच्छे राज्य में खलों के उद्योग नष्ट हो जाते हैं वैसे ही अर्क और जवासों के पत्ते नष्ट हो गये हैं। जैसे क्रोध से धर्म का नाश हो जाता है वैसे जल बरसने के कारण धूलि का नाश हो गया है। जैसे उपकारी पुरुषों की सम्पत्ति शोभा पाती है वैसे अन्न की हरी घासों (धानों) से भूमि शोभा

पा रही है। जैसे दम्भीजन मूर्खों के सामने अपनी विद्या प्रगट करते हैं वैसे ही अन्धकार में जुगनू अपनी ज्योति फैला रहे हैं। जैसे स्त्रियां स्वतन्त्र होकर इधर उधर घूमा करती हैं वैसे ही खेतों की क्यारियां महावृष्टि होने से फूट कर चारों ओर जल फैला रही हैं। जैसे ज्ञानी जन मोह, मद तथा मान को अपने मन से निकाल कर दूर फेंक देते हैं वैसे ही चतुर किसान खेतों से घास निकाल कर फेंक रहे हैं। जैसे कलियुग में धर्म का दर्शन नहीं होता वैसे ही वर्षा ऋतु में चकवा, चकई का दर्श नहीं होता। जैसे भक्तों के हृदय में काम उत्पन्न नहीं होता वैसे ऊसर खेतों में घास नहीं उगती। जैसे अच्छे राजा के राज्य में प्रजा बढ़ जाती है और राज्य की शोभा होती है वैसे ही भूमि पर अनेक प्रकार के जीव जन्तु बढ़ गये हैं और भूमि की शोभा हो रही है। जैसे ज्ञान के उदय होने पर इन्द्रियां शिथिल होकर अपना अपना काम करना छोड़ कर रुक जाती हैं वैसे ही पथिक लोग थक कर इधर उधर रुक कर चुपचाप बैठ गये हैं और रास्ता चलना छोड़ दिया है। जैसे कुपुत्र के उत्पन्न होने से कुल के सब अच्छे धर्म नष्ट हो जाते हैं वैसे ही प्रबल वायु के बहने से मेघ नष्ट हो जाते हैं। जैसे सुसंग से ज्ञान उत्पन्न होता है और कुसंग से ज्ञान नष्ट हो जाता है वैसे ही कभी सूर्योदय होता है और कभी सघन अन्धकार हो जाता है।

ऐ लक्ष्मण! देखो, देखते ही देखते वर्षा भी बीत चली, शरद् ऋतु आ गई। यह बड़ी सुहावनी ऋतु है। चारों ओर कासों के श्वेत श्वेत पुष्प देख पड़ते हैं। जान पड़ता है कि अब वर्षा

ऋतु का बुढ़ापा आ गया। जैसे लोभ सन्तोष को सुखा देता है वैसे अगस्त्य का उदय पथ के जलों को सुखा रहा है। जैसे संतों के हृदय, मद, मोह न रहने के कारण निर्मल होते हैं वैसे ही नदियां तथा तालावों के जल निर्मल हो रहे हैं। जैसे ज्ञानियों की ममता धीरे धीरे नष्ट हो जाती है वैसे ही नदियों तथा सरोवरों के जल धीरे धीरे सूख रहे हैं। जैसे सुसमय पाकर पुण्य शोभित होते हैं वैसेही शरद् ऋतु को पाकर खंजन पत्ती शुशोभित हो रहे हैं। जैसे नीति में परम निपुण राजाओं के कार्य सुशोभित होते हैं वैसे ही पृथिवी पंक तथा धूलि के न रहने से सुशोभित हो रही है। जैसे वड़े परिवारवाला मनुष्य धन के घट जाने से घवड़ा जाता है, वैसे जल के घट जाने से मछलियां घवड़ा रही हैं। जैसे भगवान् के भक्त सब आशा छोड़ कर निर्लोभ हो जाते हैं वैसे ही मेघों के न रहने से आकाश निर्मल हो रहा है। जैसे कोई कोई मेरी भक्ति पा जाते हैं वैसे ही कहीं कहीं थोड़ी वृष्टि हो जाती है। जैसे भक्ति पाकर आश्रमी लोग अपना अपना आश्रम छोड़ देते हैं वैसे ही शरद्ऋतु को पाकर राजा, तपस्वी, व्यापारी तथा भित्तुक अपना अपना घर छोड़ बाहर निकलने लगे हैं। जैसे विष्णु भगवान् की शरण में भक्त सुख से निवास करते हैं वैसे ही अथाह जल में मछलियां सुखपूर्वक निवास करती हैं। जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण होने से सुन्दर जान पड़ता है वैसे ही कमलों के खिल जाने से तालाव सुन्दर जान पड़ते हैं। जैसे दुष्टजन दूसरेकी सम्पत्ति देख कर दुःखी हो जाते हैं वैसे ही चकवा, चकई रात को देख कर दुःखी हो जाती है। जैसे शिवजी का शत्रु कभी सुखी

नहीं होता और व्यर्थ बकवाद किया करता है वैसे ही पपीहा की प्यास नहीं मिटती और व्यर्थ "पी पी हो" को रट लगाये रहता

दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही रात के विमल चन्द्र के प्रकाश से दिन में होनेवाला ताप नष्ट हो जाता है। जैसे भक्तजन बड़ी चाह से भगवान का दर्शन करते हैं वैसे ही चकोर गण चन्द्र को बड़ी चाह से देखते हैं। जैसे ब्राह्मणों के साथ द्रोह करने से कुल का नाश हो जाता है, वैसे ही हिम के त्रास से मच्छड़ तथा डंस नष्ट हो रहे हैं। जो हो, मेरे लिए सीता के बिना सभी दुःखदायी हैं। चाहे वर्षा हो, चाहे शरद हो विरहियों के लिए सदा दुःख ही दुःख है।

ऐ लक्ष्मण वर्षा बीत गई, शरद् आ गई; किन्तु सीता की सुध न मिली, सुग्रीव भी मेरी सुध भूल गया। वह राज्य तथा स्त्रीसुख में मत्त हो गया। विषयसुख के समान दूसरा मद नहीं है, जो मुनियों के मन को भी मत्त बना देता है। जो हो, मैंने जिस वाण से वालि को मारा है उसी वाण से सुग्रीव को मारूंगा। तुम जा कर सुग्रीव को मेरे सामने ले आओ।

लक्ष्मण ने कहा—ऐ वीर, आप जानते ही हैं कि सोच करने से सभी कार्य नष्ट हो जाते हैं। आप काम करनेवाले, देवताओं पर विश्वास रखनेवाले, वेदों पर श्रद्धा रखनेवाले, धर्मशील तथा उद्योग करनेवाले हैं, आपको शोक करना उचित नहीं है। यदि आप व्यवसाय न करेंगे तो उस दुष्ट राक्षस को कैसे जीतेंगे? इस लिए शोक का त्याग कीजिये और व्यवसाय का अवलम्बन कीजिये तब आप उस राक्षस को सारे परिवार के साथ मार

सकेंगे । सुग्रीव के लिये चिन्ता मत कीजिये, मैं अभी उसे पकड़ कर लाता हूं । रामजी की आज्ञा पाते ही लक्ष्मण तीर, धनुष लेकर किष्किन्धा के द्वार पर पहुंच गये । वहां जा कर उनने बड़े ज़ोर से धनुष का टंकार किया । सुनते ही सुग्रीव डर गये । उनने अपनी स्त्री तारा को लक्ष्मण को प्रसन्न करने के लिये भेजा, और कहा—ऐ तारा ! तुम स्त्री हो इस लिए लक्ष्मण जी तुमपर क्रोध नहीं करेंगे । क्योंकि "महात्मा लोग स्त्रियों पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं करते हैं ।"

तारा आकर लक्ष्मणजी को समझा बुझा कर प्रसन्न करने लगी । लक्ष्मण ने कहा, तुम्हारा पति सुग्रीव राज्यमद से क्यों ऐसा मत्त हो गया है कि अपनी की हुई प्रतिज्ञा को भी स्मरण नहीं करता ? वह दिन रात मद्य पीकर मतवाला बना रहता है । मद्य पीने से धर्म, अर्थ तथा काम सभी नष्ट हो जाते हैं । उपकार के बदले उपकार न करने से धर्म का लोप होता है, राजकार्य में ध्यान न देने से धन की हानि होती है । मित्र के काम का नाश हो जाने से अपना भी नाश हो जाता है । तुम्हारे पति ने मदमत्त हो कर धर्म का त्याग कर दिया है । उसे मित्रता तथा अपनी प्रतिज्ञा का कुछ भी ध्यान नहीं है । तारा ने कहा—ऐ राजकुमार ! आपको क्रोध करना उचित नहीं है । जो क्रोध को दबा देता है वही वीर तथा सर्वोत्तम पुरुष है । यदि आप क्षमा करें तो मैं सुग्रीव को आप की शरण में ले आऊँ । लक्ष्मण के स्वीकार करने पर सुग्रीव ने लक्ष्मण के सामने आकर बड़ी नम्रता से झुक कर प्रणाम किया । लक्ष्मण ने कहा—ऐ सुग्रीव ! सुनो, जो राजा बल तथा प्रताप से

युक्त होता है और दयावान होता है तथा इन्द्रियों को वश में रखता है, उपकार माननेवाला तथा सत्यवादी होता है, वही राजा लोक में प्रतिष्ठा पाता है। जो अधर्म करता है और मित्रों को विश्वास देकर विश्वासघात करता है वह बड़ा पापी तथा निर्दय है। उसका मुंह देखने में भी महा पाप है। जो एक घोड़ा देने की प्रतिज्ञा कर के नहीं देता उसे सौ घोड़े मारने का पाप होता है, जो एक गौ देने की प्रतिज्ञा कर के नहीं देता उसे हज़ार गौ मारने का पाप होता है। जो मनुष्य से किसी काम के करने की प्रतिज्ञा करके उसे पूरा नहीं करता वह आप नरक में पड़ता है और अपने पितरों को भी नरक में डाल देता है। जो मित्र से कार्य कराकर उसके बदले में मित्र का प्रत्युपकार नहीं करता वह कृतघ्न है उसका वध कर डालना चाहिये। इस बात को ब्रह्मा ने भी लिखा है, कि कृतघ्न का उद्धार नहीं होता। गोहत्या करनेवाले, मद्य पीने वाले, चोरी करनेवाले, तथा प्रतिज्ञा त्याग करनेवाले के पाप छूटने का उपाय शास्त्रों में लिखा है, किन्तु कृतघ्नों का पाप छुड़ाने का उपाय किसी शास्त्र में नहीं लिखा है। वह पाप छूटता ही नहीं। तुम अधम हो, कृतघ्न हो और मिथ्यावादी हो. राम के किये उपकार का बदला तुमने कुछ भी नहीं दिया। जो याचकों की इच्छा पूरी नहीं करता उपकार के बदले में प्रत्युपकार नहीं करता, और किसीको आशा देकर उसे पूर्ण नहीं करता वह अधम पुरुष है। बुरा या भला जो मुंह से निकल जाय उसे पूरा करना चाहिये। अपने वचन को सत्य करनेवाला ही मनुष्य उत्तम पुरुष कहलाता है। जो मनुष्य उपकारी मित्र के उपकार का बदला नहीं देता उस

का मांस राक्षस भी खाना नहीं चाहते। ऐ सुग्रीव ! देखो, वह रास्ता अब भी खुला हुआ है जिस रास्ते से बालि स्वर्ग में चला गया। अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहो, बालि के रास्ते मत चले जाओ।

सुग्रीव ने कहा—भगवन् ! मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये। बड़े बड़े ऋषि तथा तपस्वी काम में आसक्त हो जाते हैं। मैं तो एक पशु चंचल-स्वभाव बानर हूं। यदि मैं कामों में आसक्त हो जाऊं तो आश्चर्य ही क्या है ? आपके समान महापुरुष शीघ्र क्रोध नहीं करते। वे सोच विचार कर क्रोध करते हैं। यह वचन सुन कर लक्ष्मण ने क्षमा कर के कहा—ऐ सुग्रीव शीघ्र चलो; रामजी तुमसे मिलना चाहते हैं। दोनों साथ ही रामजी के पास गये। राम ने उठ कर सुग्रीव को छाती से लगा लिया। बैठने के बाद राम ने कहा—ऐ सुग्रीव ! देखो, उचित समय पर धर्म, अर्थ तथा काम का सेवन करना चाहिये। जो समय-विभाग कर के इन तीनों का सेवन करता है वही उत्तम राजा है। जो धर्म तथा धन का त्याग करके काम का सेवन करता है वह वृक्ष पर सोये हुए मनुष्य के समान नीचे गिर जाता है। जो शत्रुओं का वध करता है और मित्रों का पालन करता है और समयानुसार धर्म, धन, तथा काम का उपभोग करता है वही राजा धर्मात्मा कहलाता है और वही सुखी होता है। देखो, यही उद्योग का समय है।

सुग्रीव ने कहा—हे भगवान् ! इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं है। आपकी माया बड़ी प्रबल है, यदि आप दया करें तो वह माया छूट सकती है। सुर, नर, मुनि सभी विषय सुख के वश में रहते हैं। मैं तो पशु बानर हूं, मेरा क्या ठिकाना ? जिसे पूर्ण रूप से

ब्रह्मज्ञान हो जाता है उसे ही स्त्रियों के नयनरूपी वाण नहीं वेधते। जिसके गले में लोभ की डोरी नहीं लगी है वह आप ही के समान ईश्वर है। ये सभी बातें साधन से नहीं प्राप्त हो सकतीं। हां, यदि आपकी कृपा हो तो अवश्य हो सकती हैं।

रामजी ने कहा—ऐ सुग्रीव! अब वही उपाय करो जिससे सीता की सुधि शीघ्र मिले। सुग्रीव ने हनुमान् अंगद नील नल आदि वानरों से कहा—ऐ वानरो! तुम लोग भालुओं के राजा जाम्बवान् के साथ दक्षिण दिशा में चले जाओ और जानकीजी का ठीक ठीक पता लगा लाओ। देखो, यह स्वामी का कार्य है, इस में विलम्ब या आलस्य करना उचित नहीं है। शास्त्रों में लिखा है कि—सूर्य की सेवा पीठ से, अग्नि की सेवा पेट से, स्वामी की सेवा छल छोड़ कर सब प्रकार से, तथा परलोक की सेवा माया छोड़ कर करनी चाहिये। शरीर धारण करने का यही फल है कि सब काम छोड़ कर राम की सेवा करे। वही गुणवान और वही भाग्यवान् है जो रामचन्द्र के चरणों में सच्ची भक्ति करता है।

सुग्रीव का वचन सुन कर सब लोग दक्षिण दिशा की ओर चले। सबके बाद हनुमान् ने जाकर रामजी को प्रणाम किया। रामजी हनुमान् के बल पौरुष को भली भांति जानते थे। उनने बड़े प्रेम से हनुमान् के हाथ में अपनी अंगुली से उतार कर अंगूठी दी और कहा—ऐ हनुमान्! तुम जानकीजी से मेरे विरह की सारी कथा कह सुनाना। मेरी ओर से मानो मेरे ही मुख से यह संदेशा कहना कि—"ऐ जानकी! मैं वियोग के भय से फूल की माला भी इस कारण धारण नहीं करता था कि तुम्हारे और

मेरे बीच में फूल की माला की ओट पड़ जायगी, किन्तु आज ऐसा समय आ गया है कि तुम्हारे और मेरे बीच में हज़ारों पर्वत, हज़ारों नदियां, तथा हज़ारों वृक्ष आ गये हैं। भला, इस वियोग का कुछ ठिकाना है!"

राम तथा सुग्रीव से बिदा होकर सब वानर ढूंढ़ते हुए चले। जाते जाते सब लोग समुद्र के निकट पहुंच गये। वहां संपाती नामक गीध से भेंट हुई। गीध ने पहले तो इन लोगों को खाने का विचार किया और कहा, मैं भूखा हूं, तुम सबोंको बारीबारी से खाजाऊंगा। देखो—"गन्धर्वों को काम अधिक होता है, सांपों को क्रोध अधिक होता है, मृगों को भय अधिक होता है और गीधों को भूख अधिक होती है।" किन्तु जब गीध ने सुना कि ये वानर मेरे भाई जटायु के मित्र दशरथ के पुत्र रामजी की स्त्री सीता को ढूंढ़ने निकले हैं तब सीता का पता बता दिया कि समुद्र के उस पार लंका नगरी है। वहां रावण अगणित राक्षसों के साथ निवास करता है। वही सीताजी को हरकर इसी रास्ते ले गया है। जो समुद्र लांघ सके वह जाकर सीता की सुध ले आवे। अब विचार होने लगा कि कौन समुद्र पार करेगा। किसीने दस, किसीने बीस, किसीने तीस योजन जाने का साहस किया। सौ योजन चौड़ा समुद्र था सो किसीने यह नहीं कहा कि मैं समुद्र पार कर जाऊंगा। जाम्बवान् ने कहा, मैं बुड्ढा हो गया, नब्बे योजन जा सकता हूं। मैं जिस समय युवा था उस समय जब वामनजी तीनों लोक नापने के लिए बढ़े तब मैंने दो घड़ी में उनकी सात प्रदक्षिणाएं कीं। अंगद ने कहा, मैं समुद्र पार कर सकता हूं, किन्तु

थक जाऊंगा, इस लिए लौटने में संदेह होता है। जाम्बवान् ने कहा—"आप सबके स्वामी हैं। आपका जाना ठीक नहीं है। स्वामी ही सबका मूल है। उसीकी रक्षा से सबकी रक्षा होती है। शास्त्र की आज्ञा है कि धन के मूल की रक्षा करनी चाहिये। मूल ही की रक्षा से सब फल उत्पन्न होते हैं।" अन्त में जाम्बवान्, अंगद आदि के उत्साह दिलाने पर हनुमान् ने समुद्र पार करने तथा सीता का पूरा समाचार लेकर लौटने की दृढ़ प्रतिज्ञा की। जाम्बवान् ने कहा—तुम केवल यही देख आओ कि सीताजी लंका में हैं या नहीं। जीती हैं या नहीं। पीछे तो रामजी अपनी सारी वानरी सेना लेकर सुग्रीव के साथ लंका में जाकर रावण को मार कर जानकीजी को ले ही आवेंगे। इस समय तुम उत्साह कर के यह कार्य करो। उत्साह ही से सब कार्य सिद्ध होते हैं। विषाद कभी न करना चाहिये। विषाद से बहुतसी हानियां होती हैं। विषाद पुरुष को मार डालता है। जो मनुष्य विक्रम के समय विषाद करता है वह तेज से हीन होकर निर्बल हो जाता है और उसका कार्य सिद्ध नहीं होता। पुरुष का काम केवल उद्योग करना है, उसका फल भाग्याधीन है। इसके बाद सब लोग समुद्र के तट पर बैठ गये और हनुमान् जी समुद्र पार करने के लिये कमर कसने लगे।

सुन्दरकाण्ड।

सब लोगों की अनुमति पाकर हनुमान्‌जी समुद्र लांघने के लिये आकाश की ओर उड़े। कुछ दूर जाने पर समुद्र ने देखा कि हनुमान् रामकार्य के लिये जा रहे हैं। उनने मैनाक पर्वत से

कहा कि तुम जल से बाहर निकलो और हनुमान को थोड़ी देर अपने ऊपर बैठा कर उन्हें विश्राम दो। उनके पिता ने तुम्हारा बड़ा उपकार किया है। जब इन्द्र ने क्रोध किया था तब हनुमान के पिता वायु ने उठा कर समुद्र में डाल दिया था, जिससे तुम्हारी रक्षा हुई, नहीं तो इन्द्र तुम्हारे दोनों पक्ष काट डालते। देखो, उसका बदला तुम्हें देना चाहिये। "जो उपकार करे उसके बदले में उसका प्रत्युपकार करना चाहिये।" यही सनातनधर्म है। मैनाक बाहर निकला। हनुमान् उसे आदर के साथ केवल छूकर आगे बढ़े। आगे सुरसा से भेंट हुई। सुरसा ने इनको खाना चाहा। ये उसके मुंह में घुस कर कान के रास्ते बाहर निकल आये। आगे बढ़े तो सिंहिका नाम की राक्षसी ने इनकी छाया पकड़ ली। हनुमान् उसे मार कर आगे बढ़े। अपने पराक्रम से विघ्न-बाधाओं को दूर कर समुद्र पार कर गये। वहां पहुंच कर उनने देखा कि लंका में घुसना बड़ा कठिन है। चारों ओर राक्षस घूम रहे हैं। वे सोचने लगे कि दूत का काम बड़ा कठिन है। कौन ऐसा उपाय करूं जिससे जानकी को एकान्त में भेंटूं और रामजी का सब समाचार कहूं। काम ऐसा करना चाहिये जिससे रामजी का मनोरथ सिद्ध हो। दूत ही की चतुरता से सब कार्य सिद्ध होते हैं। जैसे सूर्योदय के होने से अन्धकार नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही मूर्ख दूत के हाथ से देश तथा काल के प्रतिकूल कार्य होने से वे सभी कार्य अवश्य नष्ट हो जाते हैं। जिस कार्य को स्वामी और मन्त्री दोनों ने सिद्ध करने का निश्चित उपाय कर लिया है वह कार्य भी दूत की

मूर्खता से नष्ट हो जाता है। यदि मैं अपने ठीक रूप से लंका में प्रवेश करूंगा तो मैं मारा जाऊंगा और स्वामी का कार्य भी नष्ट हो जायगा। वही उपाय मुझे करना उचित है जिससे कार्य सिद्ध हो और समुद्र का लांघना भी सफल हो। इस लिए दिन में जाना ठीक नहीं रात ही में जाना ठीक होगा। यह सोच विचार कर वे वहीं ठहर गये। जब रात हुई तब विल्ली के समान छोटा रूप धारण कर लंका में घुसे। लंका के प्रधान द्वार पर लंकिनी नाम की एक राक्षसी रहा करती थी, उसने कहा—तू कौन है जो चोर के समान लंका में घुस रहा है? हनुमान् ने क्रोध कर के बड़े ज़ोर से उसे एक घूंसा मारा, वह भूमि पर गिर पड़ी, फिर सम्हल कर उठी और बोली—ब्रह्मा ने मुझे वर दिया था कि जब तुम वानर के मारने से विकल हो जाओगी तब समझना कि अब राक्षसों का नाश होगा, इस लिए जान पड़ता है कि अब राक्षसों का अवश्य नाश होगा। मैं तुमको आशीर्वाद देती हूं कि तुम लंका में प्रवेश कर अपना मनोरथ सिद्ध करोगे, तुम रामजी के भक्त हो तुम्हारे सब काम सिद्ध ही हैं। जिसपर राम की कृपा रहती है उसके विष और गरल? दोनों मित्र हो जाते हैं, यद्यपि ये दोनों परस्पर शत्रु हैं। उसके लिए समुद्र भी गाय के खुर के गड्ढे के समान हो जाते हैं, और बहुत बड़ा पर्वत भी उसके लिए धूलि के समान छोटा तथा हलका हो जाता है। भगवान का नाम लेकर नगर में प्रवेश करो।

हनुमान्जी लंका में घुस गये और जानकीजी को ढूंढ़ने लगे। वे घूमते घूमते रावण के घर में पहुंच गये, जहां वह अगणित

स्त्रियों के साथ बेसुध सो रहा था। स्त्रियों के वस्त्र अपने अपने स्थान से हट गये थे, जिससे उनके शरीर देख पड़ते थे। उन्हें देख हनुमान्‌जी के मन में चिन्ता हुई कि मुझे ज़रूर पाप लगेगा, क्योंकि मैं पराई स्त्रियों को निद्रितावस्था में खुले अंग देख रहा हूं। इससे मेरा धर्म नष्ट होता है। मैंने पराई स्त्रियों के हरण करनेवाले रावण का मुख देखा है, इससे भी मुझे कुछ पाप अवश्य लगेगा। फिर सोचने लगे, मुझे पाप नहीं हो सकता, क्योंकि मैं काम-बुद्धि से पराई स्त्रियों को नहीं देख रहा हूं, किन्तु स्वामी का कार्य सिद्ध करने के लिए अपनी अभिलषित वस्तु ढूंढ़ रहा हूं। मैंने हज़ारों स्त्रियों को यहां देखा है, किन्तु मेरे चित्त में तनिक भी विकार नहीं उत्पन्न हुआ है, इसलिए मुझे तनिक भी पाप नहीं लगेगा। सभी इन्द्रियों के झुकाव का कारण मन ही है सो तो मेरा ठीक है, तब कैसे पाप लगेगा? मेरा मन सभी अवस्थाओं में स्थिर रहता है। फिर यदि सीताजी को ढूंढ़ता हूं तो स्त्रियों ही में ढूंढ़ना पड़ेगा, क्योंकि स्त्री स्त्रियों ही के साथ रहती है। यदि स्त्री खो गई है तो उसे हरिणियों के बीच ढूंढ़ना ठीक नहीं है। मैंने शुद्ध मन से जानकी को ढूंढ़ा, पर वे नहीं मिलीं। मेरा परिश्रम व्यर्थ हो गया, तथापि मैं उत्साह न छोड़ूंगा, अभी फिर ढूंढूंगा। उत्साह ही से लक्ष्मी प्राप्त होती है, उत्साह ही से सुख मिलता है और उत्साह ही से सब कार्य सिद्ध होते हैं, जिन्हें मनुष्य करता है। इस कारण जहां नहीं देखा है वहां देखूंगा। जान पड़ता है कि जब रावण सीता को लेकर समुद्र लांघने लगा है तब सीता उसके हाथ से छूट कर समुद्र में गिर

गई हैं। या डर से रावण की गोद में ही मर गई हैं, या राक्षसियां मिल कर खा गई हैं, या रावण ने ही जब देखा होगा कि जानकी मुझे पति बनाना नहीं चाहती तब जानकी को मार डाला होगा। यह समाचार जाकर रामजी से कहना ठीक है या नहीं? यदि मैं जानकी को बिना देखे ही किष्किंधा में चला जाऊंगा तो मेरी क्या प्रतिष्ठा होगी? वे दोनों भाई तथा वानर लोग क्या कहेंगे? यदि मैं जाकर कह दूंगा कि मैंने जानकी को नहीं देखा है तो सुनते ही रामजी अपना प्राण त्याग कर देंगे। राम को मरा देख लक्ष्मण भी प्राण त्याग देंगे। दोनों भाई का मरना सुन कर भरतजी मरेंगे। भरत के बाद उसी दुःख से शत्रुघ्न भी मर ही जायंगे। पुत्रों को मरा देख तीनों माताएं मर जायंगी। इन सभों के बाद परम कृतज्ञ सुग्रीव भी नहीं जियेंगे। तारा और रुमा भी पतिवियोग से मर जायंगी। माता, पिता के बिना अंगद की भी वही अवस्था होगी। वानरों की मौत भी निश्चित ही है। यदि मैं यहीं पड़ा रहूंगा तो आशा से दोनों भाई जीते रहेंगे। यदि मैं जानकी को न पाऊंगा तो संन्यासी होकर यहीं रहूँगा, अथवा चिता जला कर उसी में जल कर भस्म हो जाऊंगा। या जल में डूब कर मर जाऊंगा। जो हो, यदि यहीं जीता रहूंगा तो भी बहुत से कार्य होंगे। जीनेवाला कभी न कभी अवश्य कल्याण देखता है। मरने से कुछ नहीं हो सकता। मैंने सारी लंका ढूँढ़ी, पर अभी अशोकवाटिका को नहीं ढूंढ़ा है इस लिए भगवान् का स्मरण कर वहीं चलें।

वहां जाकर हनुमान ने चारों ओर ढूंढ़ा, अंत में एक सीसम के वृक्ष के नीचे पहुंचे, जहां सीताजी बैठी हुई थीं। उनका विचित्र

सौन्दर्य देखते ही पहचान गये और सोचने लगे कि धन्य हैं राम, जिनकी स्त्री ऐसी सुन्दरी है। इनसे वियोग होने पर भी राम जीते हैं यह बड़ा कठिन काम है। इनके लिए यदि राम सारी पृथ्वी को त्याग दें तो भी अनुचित नहीं है। यदि तुला के एक पलड़े पर जानकी और दूसरे पलड़े पर तीनों लोकों का राज्य रख दिया जाय, तो जानकी का ही पलड़ा भारी होगा। इनके सामने तीनों लोकों का राज्य भी कुछ नहीं है। जगत् में ऐसी पतिव्रता भी नहीं मिल सकती। ये राक्षसियों को नहीं देखतीं या पुष्पित वृक्षों को नहीं देखतीं; ये तो ध्यान लगा कर एकाग्रचित्त से केवल राम को देख रही हैं। यह बात ठीक है कि—पति ही स्त्रियों का भूषण है। इसी कारण ये सुन्दरी होकर भी बिना पति शोभा नहीं पातीं। हनुमान् उस वृक्ष की सघन पत्रों से परिपूर्ण शाखा पर छिप कर बैठे बैठे ये सब बात सोच रहे थे। इसी समय बहुत सी स्त्रियों को साथ लिये रावण वहां आ पहुंचा। रावण ने सीता को बहुत से लोभ दिखला कर कहा—ऐ सुन्दरी! यदि तुम मेरी स्त्री बन जाओ तो मैं तुम्हें अपनी प्रधान रानी बना दूंगा और अपना सारा राज्य और सारा विभव तुम्हारे चरणों पर रख दूंगा। यह सुन कर जानकी को बड़ा क्रोध हुआ। उनने मुंह फेर कर कहा—ऐ रावण! धर्म का पालन करो, जैसे अपनी स्त्रियों की रक्षा करते हो वैसे ही दूसरेकी स्त्रियों की भी रक्षा करो। अपनी ही स्त्रियों के साथ रमण करो। जो मनुष्य चित्त चंचल कर के अपनी स्त्री से प्रसन्न नहीं रहता उसे सज्जन लोग धिक्कार देते हैं। जो अपनी ही स्त्री के साथ आनन्द करता है उसके दोनों लोक पवित्र रहते हैं।

सब लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। क्या यहां सज्जन लोग नहा रहते हैं जो तुम्हें यह पाप करने से रोकें? पापी और अन्यायी राजा को पाकर सारे राज्य, नगर, तथा विभव नष्ट हो जाते हैं। केवल एक तुम्हारे ही अपराध से सारी लंका तथा सारे राक्षस नष्ट हो जायंगे। तुम्हीं सोचो, क्या मैं राम को छोड़ कर दूसरेको स्त्री हो सकती हूं? रामचन्द्र की भुजा को तकिया बना उसपर सिर रख कर सुख से सो चुकी हूं। फिर, क्या मैं दूसरेकी भुजा पर सिर रख कर सोऊंगी? देखो, मैं सत्य कहती हूं, मेरी आशा छोड़ दो। यदि सारा संसार उलट जाय तो उलट जाय, पर मेरा यह विचार कभी पलट नहीं सकता। आत्मा नित्य है, इसका नाश नहीं हो सकता, जब तक मेरी आत्मा बनी रहेगी तब तक हज़ारों जन्म क्यों न बीत जायं, पर मैं राम ही की स्त्री बनी रहूंगी। मैं किसी जन्म में दूसरेको पति नहीं बना सकती। यदि वेद तथा शास्त्र सत्य हैं तो मैं सत्य-लोक में जाकर राम ही के साथ युग युगान्तरों तक सदा निवास करूंगी। व्यर्थ अपना प्राण मत नष्ट करो। यदि दोनों (राम, लक्ष्मण) सुनेंगे तो यहां आकर अग्नि के समान भयङ्कर बाणों से तुम्हारा नाश कर देंगे। यदि अपना कल्याण चाहते हो तो उनके पैरों पर पड़ो और मुझे उनके चरणों में समर्पण कर निर्भय तथा सुखी हो जाओ।

सीता के कठोर वचन सुन कर रावण ने क्रोध कर के कहा—यदि पुरुष प्रार्थना करता है तो स्त्री प्रसन्न होती है, पर तुम ऐसी क्रूर स्त्री हो कि मैं जितनी ही प्राथना करता हूं। तुम उतनी ही रुष्ट होती हो। काम का स्वभाव ही उलटा है कि जिसपर

मनुष्य आसक्त होता है वह कितना हू कठोर आचरण करे पर वह स्नेह नहीं छोड़ता। जो हो, मैं दो महीने तक और प्रतीक्षा करूंगा इसके बाद यदि तुम मेरा कहना न मानोगी तो मैं बल से सतीत्व भ्रष्ट करूंगा अथवा तुम्हें मार कर प्रातःकाल का भोजन बना कर खा जाऊंगा।

जानकी ने कहा—ऐ अधम रावण जिन आंखों से तू मुझे देख रहा है वे तेरी पापभरी आंखें निकल कर पृथ्वी पर क्यों नहीं गिर पड़तीं? जिस जीभ से तू पाप की बातें कहता है वह तेरी जीभ कट कर क्यों नहीं गिर जाती? मैं अपना तप बचाती हूं और रामजी से डरती हूं, नहीं तो मैं तुझे अपनी सत्यता की ज्वाला से भस्म कर देती। मैं जानती हूं कि ईश्वर ने रामजी को तेरे ही बध के लिये रचा है। देख, मेरा पति दीन है वा राज्यहीन है, पर मेरा पूज्य है, मैं उसीमें प्रेम रखती हूं। जैसे शची इन्द्र के साथ, अरुन्धती वशिष्ठ के साथ, रोहिणी चन्द्रमा के साथ लोपामुद्रा अगस्त्य के साथ, सुकन्या च्यवन के साथ, सावित्री सत्यवान् के साथ, श्रीमती कपिल के साथ, मदयन्ती सौदास के साथ और दमयन्ती नल के साथ, प्रीति रखती है; वैसे ही मैं रामजी के साथ प्रीति रखती हूं।

सीता की बात सुन कर रावण को बड़ा क्रोध हुआ। वह सीता को कष्ट देने के लिये राक्षसियों को आज्ञा देकर चला गया। राक्षसियां रावण को आज्ञा पाकर सीता को अनेक प्रकार से भय तथा कष्ट देने लगीं। जानकी ने कहा, तुम लोग मुझे खा जाओ, पर मैं तुम लोगों की बात माननेवाली नहीं हूं।

यह कह कर जानकी विलाप करने लगीं और सोचने लगीं कि क्या सचमुच अब रामचन्द्रजी इस जगत् में नहीं हैं? क्या लक्ष्मण भी इस जगत् से चल बसे? यदि वे जीते होते तो मेरी सुध अवश्य लेते। अथवा वे लोग मुझे ही मरी जानते हैं तभी तो मेरी खोज पूछ नहीं करते। या अलग होने से मेरे प्यारे पति का प्रेम ही मुझसे कम हो गया? क्योंकि जब तक मनुष्य सामने रहता है तभी तक प्रीति होती है, मुंह पीछे प्रीति नहीं होती। कृतघ्न लोग प्रीति छोड़ देते हैं, किन्तु रामजी कृतज्ञ हैं, इस लिए वे प्रीति नहीं छोड़ेंगे। प्रीति ही सब दुःखों का कारण है। धन्य हैं वे ऋषि, मुनि, महात्मा लोग जिनका कोई न मित्र है न शत्रु है, जिन्हें प्रिय से सुख नहीं होता और अप्रिय से दुःख नहीं होता, जो सदा एक रस में रहते हैं उन महात्माओं को मैं भक्ति से प्रणाम करती हूं।

जानकी की यह दशा देख हनुमान् को बड़ा कष्ट हुआ। उनने सोचा, यदि मैं जानकी को रामजी का शुभ संवाद नहीं दूँगा तो जानकी अब एक दिन भी नहीं जियेंगी। अच्छा, तो मैं जानकी से किस भाषा में बात करूं। यदि मैं संस्कृत में बात बोलूंगा तो जानकी मुझे रावण समझ कर डर जायंगी। इस लिए अयोध्या की सर्वसाधारण भाषा में ही बातचीत करूंगा। यदि जानकी मुझे राक्षस समझ कर डर से चिल्लाने लगेंगी तो राक्षसियां जग जायंगी, फिर बातचीत करना भी कठिन हो जायगा। यह सोच विचार कर हनुमान्जी रामचन्द्र का चरित्र वर्णन करने लगे। आदि से अन्त तक रामजी की समूची कथा सुन

कर जानकी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कौन शुभचिन्तक है जो इस मधुर कथा से मुझे सुखी कर रहा है। फिर जानकी ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई तो देखा कि उसी सीसम के पेड़ की डाल में छिपा हुआ एक वानर यह मधुर कथा कह रहा है। हनुमान् ने भी प्रगट होने का अच्छा अवसर पाया। वे वृक्ष से उतर कर नीचे चले आये और उनने बड़ी नम्रता से जानकी जी को प्रणाम किया। वे फिर बोले—ऐ देवि सीते! मैं वानरों के राजा सुग्रीव का मन्त्री हूं और दशरथ के प्रथमपुत्र श्रीरामचन्द्र जी का परम विश्वासी दूत हूं. मैं शपथ करता हूं कि मैं कपट करनेवाला राक्षस नहीं हूं। यदि आपको विश्वास न हो तो मैं यह अंगूठी देता हूं। रामजीने आपको विश्वास के लिए यह अंगूठी दी है। अंगूठी देखते ही जानकीजी को बड़ा आनन्द हुआ। पर पति के विरह की बातें सोच बड़ा विषाद भी हुआ। हनुमान् ने कहा—देवि! जितना आपका प्रेम है उससे दूना रामजी का स्नेह है। वे सदा आप ही के ध्यान में मग्न रहते हैं। शरीर पर मक्खियां, मच्छड़, सांप, कीड़े या पक्षी बैठ जायं तो उन्हें हटाने की सुध भी उन्हें नहीं रहती। उन्हें कभी नींद नहीं आती। यदि नींद आती भी है तो आप ही का नाम लेकर उठते बैठते हैं। जानकी ने कहा—ऐ हनुमान्, यदि वे दो महीने के भीतर न आ जायंगे तो मुझे जीता न पावेंगे। मैं जानती हूं कि उनमें उत्साह, पौरुष, बल, दया, बिक्रम और प्रभाव सब कुछ है। जहां तक हो सके वे मुझे यहां से शीघ्र ले चलें नहीं तो अब मैं नहीं जी सकती, वे तो बड़े दयालु हैं, उनका चित्त बड़ा ही कोमल है, तब उनने

ऐसी निठुरता क्यों धारण की है? वे सदा सेवकों को सुख देने-वाले हैं, मुझसे बढ़ कर कौन उनकी सेविका हो सकती है? क्या वे कभी मुझे याद करते हैं? क्या मैं कभी उनकी मधुर मूर्त्ति का दर्शन पा सकूंगी?

हनुमान् ने कहा—यदि आप आज ही चाहें तो मेरी पीठ पर चढ़ कर चल सकती हैं। मैं आपको पीठ पर लेकर अच्छी तरह समुद्र पार कर सकता हूं। जानकी ने कहा—तुम सचमुच बन्दर ही हो, भला! तुम तो ठीक बिल्ली के बराबर हो, मैं तुम्हारी पीठ पर चढ़ कर कैसे चल सकती हूं? हनुमान् ने कहा—ऐ देवि! क्या आप मेरा पराक्रम नहीं जानती हैं? "अच्छा, देखिये" ऐसा कह कर हनुमान् ने सुवर्ण पर्वत के समान महा विशाल अपना शरीर प्रगट किया। देख कर जानकी ने बड़ी प्रसन्नता प्रगट की और हनुमान्जी के बलवीर्य की बड़ी प्रशंसा की। फिर जानकी बोलीं—मैं जानती हूं कि तुम मुझे ले चलोगे, किन्तु मैं तुम्हारे दौड़ने के वेग से मूर्च्छित हो जाऊंगी या गिर कर समुद्र में डूब जाऊंगी। जब राक्षस देखेंगे कि तुम मुझे लिये जा रहे हो तब तुम्हारा पीछा करके युद्ध करेंगे। उस समय मैं तुम्हारे कांख से गिर कर मर जाऊंगी। यदि रामजी यहां आ, राक्षसों को मार कर मुझे ले चलेंगे तभी यश होगा। दूसरी बात यह कि मैं पति को छोड़ दूसरे पुरुष का शरीर स्पर्श करना भी नहीं चाहती। रावण जो मुझे ले आया उस समय मैं विवश थी। उस समय मैं कर ही क्या सकती थी! सबसे अच्छा यही है कि रामजी यहां आकर अपनी वीरता से राक्षसों को मार

कर मुझे यहां से लेचलें । हनुमान् ने कहा—ऐ देवि ! जैसा पतिव्रताओं को कहना चाहिये वैसा ही आपने कहा है। मैंने आपकी उत्कण्ठा देख कर प्रेम से ऐसा कहा है। यदि चलने की इच्छा नहीं है तो विश्वास का कुछ चिह्न ही दीजिये जैसे रामचन्द्रजी ने दिया है । जानकी ने चूड़ामणि उतार कर दे दिया और प्रार्थना की, कि मेरी ओर से मेरे प्रिय पति तथा देवर से कह देना कि वे मुझपर दया कर के शीघ्र मेरा उद्धार करें। यदि सुग्रीवजी मेरा समाचार पूछें तो उनसे भी मेरी ओर से यही प्रार्थना करना कि वे मुझे एक दीन स्त्री समझ कर मेरी रक्षा करें और रामजी का उत्साह बढ़ा कर अत्यन्त शीघ्र युद्ध करने के लिए उत्साहित करें। मैं जानती हूं कि गरुड़, वायु, या तुम ये ही तीन समुद्र के पार हो सकते हैं । देखूं, सारी सेना यहां कैसे पहुंचती है। मैं रामही के लिए असह्य दुःख, हृदय वेधनेवाली बातें, और राक्षसों के बीच का निवास सहन करती हूं। अच्छा, अब तुम जाओ, मैं जानती हूं तुम ज़रूर मेरा सब कार्य सिद्ध करोगे। जो स्वामी के कहे हुए कार्य को पूरा कर के स्वामी की भलाई करनेवाला दूसरा कार्य भी पूरा कर देता है, वह सब कुछ कर सकता है। जो काम को थोड़े प्रयत्न से पूरा कर लेता है वही सब कुछ पूरा करता है। इसके बाद हनुमान् जानकी से विदा हुए । चलते समय हनुमान् ने विचारा कि यदि इस दुष्ट का परम सुन्दर उपवन नष्ट भ्रष्ट कर दें तो बहुत ही अच्छा हो । न मालूम इस दुष्ट ने कितने लोगों को कष्ट दे कर इसकी सामग्रियां इकट्ठी की होंगी। ऐसा सोच कर उनने

पेड़ों को तोड़ना, लताओं को उखाड़ना और भवनों का ढाहना प्रारम्भ कर दिया। रखवालों ने मना किया तो उन्हें मार डाला, जो बचे सो रावन के पास पहुंचे। रावण ने वीरों के कई झुण्ड भेजे पर हनुमान् ने सबको मार डाला। रावण बड़ा दुखी हुआ। उसने जानकी से पूछा तो जानकी ने कहा—इन कपटी तथा मायावी राक्षसों की बात मैं क्या जानूं? तुम्हीं लोग जानते होगे कि यह कौन है। सांपों के पैरों की बात सांप ही जानते होंगे, मैं भी डर गई हूं। मैं नहीं जानती यह कौन है। यह कोई मायावी राक्षस ही होगा। रावण ने कहा, मैं भी उसे वानर नहीं समझता, क्योंकि उसके पराक्रम बड़े ही आश्चर्यकारक हैं। मैंने बालि, सुग्रीव, जाम्बवान्, नील, द्विविद आदि हज़ारों वानरों को देखा है, पर ऐसा पराक्रमी किसीको नहीं देखा है। अन्त में रावण ने अपने पुत्र अक्षयकुमार को भेजा। उसके साथ हनुमान् ने घोर युद्ध किया और अन्त में पछाड़ कर मार डाला। इसके बाद मेघनाद आया। मेघनाद के साथ भी महा युद्ध हुआ। अन्त में मेघनाद ने ब्रह्मपाश से हनुमान् को बांध लिया। हनुमान् उसकी प्रतिष्ठा रखने तथा रावण का दर्शन करने के अभिलाष से चुप चाप बंध गये। मेघनाद इनको पकड़ कर रावण की सभा में ले गया। रावण को देखते ही हनुमान् बड़े ही आश्चर्य में पड़ गये और मन ही मन उसके विभव की प्रशंसा करने लगे—अहो! यदि यह अधर्मी न होता तो तीनों लोकों का राजा बनने के योग्य था। इसके क्रूर कर्मों ही के कारण सब लोग इससे डरते और घृणा करते हैं। रावण ने कहा—रे वानर! तुम सत्य सत्य कहो

किसने तुमको यहां भेजा है ? यदि सच कहोगे तो छोड़े जाओगे, नहीं तो तुरत ही मार डाले जाओगे। हनुमान् ने कहा—मैं रामजी का विश्वासी दूत हूं और उन्हींके एक आवश्यक कार्य के लिए आया हूं। राम की धर्म-पत्नी जानकी को ढूंढ़ता यहां आ गया हूं। तुम्हारे घर में मैंने जानकी को पाया है। मैं मारुत का पुत्र हूं; मेरा नाम हनुमान् है। तुम धर्मशास्त्र जाननेवाले हो, तप के बल से तुमने इतना विभव पाया है। तुमको यह उचित नहीं है कि तुम पराई स्त्री को अपने घर में रोक रक्खो। जो तुम्हारे समान बुद्धिमान् हैं वे कभी उस धर्मविरुद्ध कार्य में हाथ नहीं लगाते, जिसमें बहुत हानि और अपना समूल नाश हो। लक्ष्मण के छोड़े हुए भयंकर बाणों के सामने कौन खड़ा हो सकता है ? तीनों लोकों में कोई ऐसा मनुष्य नहीं है जो राम से विरोध कर के सुखी रहे। मेरा धर्म-युक्त वचन मानलो, जानकी को रामजी के हाथ में सौंप दो। जैसे विषमिला हुआ अन्न खा कर कोई सुखी नहीं रह सकता वैसे ही कोई जानकी को अपने घर में रख कर सुखी नहीं रह सकता। धर्म का फल उत्तम और अधर्म का फल अधम होता है। तुमने तप दान आदि धर्म का फल विभव पा लिया है; अब पराई स्त्री के चुराने के अधर्म से नाश पाओगे। राम ने सीता के चुरानेवाले का नाश करने की प्रतिज्ञा की है। जिसे तुम सीता जानते हो उसे तुम अपनी कालरात्रि समझो। राम को मनुष्य मत समझो।

हनुमान् की बात सुन कर रावण ने क्रोध कर के हनुमान् को मारने की आज्ञा दी। विभीषण ने कहा—दूत को मारना उचित

नहीं है। राजा लोग कभी दूत का वध नहीं करते। आपके समान धर्मज्ञ, कृतज्ञ, तथा राजनीतिनिपुण राजा बहुत सोच विचार कर कार्य करता है। यदि आप सरीखे विद्वान् भी क्रोध के वश हो जायंगे तो शास्त्र पढ़ने का परिश्रम ही व्यर्थ हो जायगा। इस लिए आप प्रसन्न हों और सोच विचार कर इस दूत को उचित दण्ड दें। रावण ने कहा—पापियों को वध करने में कोई पाप नहीं लगता। इस पापी वानर को अवश्य मार डालूंगा। विभीषण ने कहा— यह बहुत ठीक है, किन्तु दूत तो सदा अवध्य है। दूत के लिए बहुत से दण्ड लिखे हैं वे दण्ड क्यों नहीं करते? अंगभंग करना, कोड़े मारना, सिर मुड़ा देना, दाग देना, ये सब दूतों के लिए दण्ड लिखे गये हैं, किन्तु दूतों को प्राणदण्ड देना कहीं नहीं लिखा है। आप इस क्षुद्र पर क्यों कोप करते हैं? बलवानों को क्रोध नहीं होता। धर्मज्ञान में, लोक-चातुर्य में, तथा शास्त्र के विचार करने में आपके समान कोई नहीं है। आपकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। इस वानर को मारने से क्या फल होगा? हां, जिन लोगों ने इसे यहां भेजा है उन्हीं लोगों का दण्ड किया जाय। जो संदेश कहने के लिए उन लोगों ने कहा होगा वही यह कह रहा है। यह तो पराधीन है, इसका क्या अपराध है। यदि यह जीता रहेगा तो फिर लौट आवेगा और आपको नया नया समाचार सुनावेगा। रावण ने कहा तुम ठीक कहते हो, वानरों का अहंकार पूंछ पर रहता है. इस लिए इसको पूंछ पर कपड़े लपेट कर उसे तेल में भिगाकर उसमें आग लगा दो। रावण की आज्ञा से ऐसा ही किया गया। जब हनुमान् की पूंछ में आग जलने लगी

तब हनुमान् अपना बंधन तोड़ उछल कर अटारी पर चढ़ गये और चारों ओर घूमने लगे। जिधर जिधर जाते थे उधर उधर आग लगती जाती थी। इसी प्रकार सारी लंका में आग लग गई। यह देख जानकी जी को बड़ा डर हुआ। जानकी जी ने अग्नि से प्रार्थना की—हे अग्निदेव! यदि मेरा पातिव्रत्य सच हो तो तुम शीतल हो जाओ। बात भी सच ही हुई। इतने वेग से आग धधक रही थी किन्तु सीता की प्रार्थना से अग्निदेव हनुमान्‌जी के लिए बर्फ के समान शीतल हो गये थे। हनुमान् को तनिक भी कष्ट नहीं होता था। जब सारी लंका जलने लगी तब हनुमान्‌जी घबड़ा कर सोचने लगे, अहो! मैंने क्रोध में आकर लंका को जला दिया! यह अच्छा नहीं किया। धन्य हैं वे महात्मा, जो कदापि क्रोध नहीं करते! जिस प्रकार जल से अग्नि को शान्त करते हैं उसी प्रकार वे महात्मा अपने शुद्ध विचार से क्रोध को शान्त कर देते हैं। क्रोध में पड़ कर मनुष्य पाप करता है; क्रोध में पड़ कर गुरु को भी मार डालता है, क्रोध में पड़ कर सज्जनों को भी दुर्वचन कह देता है। क्रोधी पुरुष यह नहीं जानता कि क्या क[illegible]ना चाहिए और क्या न[illegible] थे और क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। जो उत्पन्न हुए क्रोध को क्षमा से हटा देता है वही महापुरुष है। मैं बड़ा मूर्ख हूं कि बिना विचारे ही मैंने ऐसा काम किया है। यदि कहीं लंका के साथ जानकी भी जल गई होगी तो सब परिश्रम ही व्यर्थ हो जायगा। यदि यह बात सच होगी तो मैं भी अपना शरीर भस्म कर दूंगा, या समुद्र में डूब कर मर जाऊंगा, जिससे जल-जन्तु मेरा मांस

खाकर तृप्त हो जायंगे। मैंने सीता का दशा बिना विचारे ही लंका जला दी। मेरी यह मूर्खता देख कर लोग मुझे सचमुच वानर ही कहेंगे। मेरा यह वानरपन तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो जायगा। दूसरी बात यह है कि जानकी का मरण सुन राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव आदि सभी मर जायंगे। अथवा जिस प्रकार यह आग मेरी पूंछ नहीं जलाती उसी प्रकार जानकी को भी नहीं जलावेगी। ऐसा विचार कर ही रहे थे कि राक्षसियों के मुंह से यह सुना कि—बड़े आश्चर्य की बात है कि सारी लंका जल गई पर जानकी न जली। इसके अनन्तर पूंछ की आग समुद्र में बुझा कर, फिर जानकी को प्रणाम कर, समुद्र लांघ, इस पार चले आये। अंगद, जाम्बवान् आदि साथियों से आनन्द का समाचार सुनाकर, उन सबोंको साथ ले कर, रामजी के पास चले आये। राम, लक्ष्मण तथा सुग्रीव को प्रणाम कर लंका का सब समाचार कह सुनाया। पूरे विश्वास के लिए रामजी के हाथ में वह चूड़ामणि दे दी जिसे जानकी ने रामजी को दिखलाने के लिए दिया था। राम ने मणि देख कर बड़ा विलाप किया। उनकी दोनों आंखों से आंसू की धारा बहने लगी। राम ने हनुमान् से पूछा—ऐ वीर, हनुमान्! जानकी ने क्या संदेश कहा है? हनुमान ने कहा—वे अब एक मास से अधिक नहीं जी सकतीं। आप शीघ्र लंका में चल, रावण को मार कर, जानकी का उद्धार कीजिये। विरह से उनकी दशा शोचनीय हो रही है। यह सुन कर रामजी ने सुग्रीव से कहा—ऐ कपिराज सुग्रीव! हनुमान् ने मेरा बहुत बड़ा कार्य किया है। इसने मेरी तथा मेरे समस्त

वंश की रक्षा करदी। जो भृत्य स्वामी के कठिन कार्य को भी बड़े प्रेम तथा उत्साह से करता है और स्वामी के विना कहे भी अपने विचार से स्वामी का हितकारी कार्य करता है वही उत्तम भृत्य है। जो भृत्य स्वामी के केवल उतने हो कार्य को करता है जितना करने के लिए स्वामी ने कहा हो, उससे अधिक कुछ कार्य नहीं करता, वह मध्यम भृत्य है। जो भृत्य स्वामी के कार्य को केवल अपनी नौकरी के साधारण भाव से करता है, और कोई हितकारी कार्य नहीं करता वह अधम भृत्य है। हनुमान ने तो सब प्रकार अच्छे ही कार्य किये हैं। मैं इस समय तो दीन हो गया हूं, इस लिए सब कार्यों के बदले में उठ कर हनुमान्‌जी को गले लगा लेता हूं। इस समय इससे बढ़ कर मेरे पास कोई दूसरी उत्तम वस्तु है ही नहीं जो इनको दूं। हनुमान्‌जी ने कहा—यदि आप सचमुच प्रसन्न हैं तो मुझे अपने परम पवित्र युगल चरण-कमलों में अविचल भक्ति दीजिये। रामजी ने कहा—"एवमस्तु।" फिर कहा—अब मैं सीता का समाचार पा कर एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। ऐ प्यारे सुग्रीव! अब बहुत शीघ्र लंका चलने की तैयारी करो। तुम्हारे ही उत्साह से सब कुछ होने की आशा है। जो उत्साह-हीन दीन तथा शोकपूर्ण होते हैं उनके सब कार्य नष्ट हो जाते हैं और विपत्तियां भी आकर उनके शिर पर चढ़ जाती हैं। जिस प्रकार सेतु बांधा जाय, और मैं सारी सेना के साथ लंका मे पहुंच जाऊं वही काम करना चाहिए। समुद्र में पुल बांधे बिना सारी सेना वहां पहुंच जाना बड़ा कठिन है। सुग्रीव ने कहा, आप धैर्य धारण करें, मैं सब कुछ कर दूंगा। अधैर्य से सब कार्य नष्ट

हो जाते हैं। आप शोक न करें। शोक सकल कार्यों का नष्ट करने-वाला है। आप सरीखे वीरों के पास शोक नहीं आता। जिस समय आप धनुष उठा लेंगे उस समय कोई ऐसा वीर नहीं है जो पराजित न हो जाय। अब आप शोक छोड़ दें और क्रोध का अवलम्बन करें। जो क्षत्रिय शान्त-चित्तवाला होता है उस का आदर कोई नहीं करता और कोई उससे डरता भी नहीं। क्रोधी क्षत्रिय से सभी डरते हैं और उसकी आज्ञा में रहते हैं। आप निश्चय रक्खें कि समुद्र में पुल बँध जायगा, सारी सेना पार हो जायगी, और रावण मारा जायगा। अब हम लंका चलने की तैयारी में लग गये।

लंका काण्ड

—:o:—

रामजी ने सुग्रीव से पूछा—अब लंका के लिए यात्रा करने में क्या विलंब है? फिर यह भी तो जान लेना बहुत ज़रूरी है कि वह लंका कैसी है, उसमें किस प्रकार प्रवेश करना होगा। समुद्र कैसे पार किया जायगा? यह सारी सेना कैसे उस पार पहुंचेगी? हनुमान् ने कहा—मैं तो लंका देख आया। वह बड़ी विचित्र है, उस की चारों ओर बहुत ऊंची पत्थर की दीवार हैं। चारों द्वारों पर अगणित तोप सजे हुए रखे हैं। भीतर दीवार की चारों ओर अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित सेना तैयार रहती है जो समय पड़ने पर शत्रु पर आक्रमण करती है। किन्तु मैंने लंका को बहुत ही नष्ट भ्रष्ट कर दिया है, इससे मेरी सेना के प्रवेश करने में कुछ विघ्न नहीं होगा। रामजी ने फिर सुग्रीव से कहा, जहां तक हो सके शीघ्र चलना चाहिए। जानकी के मर जाने पर हमलोग जाही कर क्या करेंगे? यदि सीता हमलोगों की यात्रा का हाल सुनेंगी तो जी सकेंगी, जैसे मरणापन्न मनुष्य अमृत पाकर जी जाता है। मेरी सारी सेना व्यूह रचना करके चलेगी। सबसे आगे प्रसिद्ध प्रसिद्ध वीरों के साथ राजा सुग्रीव रहेंगे। बाईं तथा दाहिनी ओर भी बड़े बड़े वीर रहेंगे। सेना के पीछे भी कुछ प्रसिद्ध वीरों का रहना उचित है; मैं और लक्ष्मण बीच में रहेंगे। मैं हनुमानजी के कंधे पर और लक्ष्मण

अंगद के कंधे पर चढ़ कर चलेंगे। उस समय इन्द्र से भी बढ़कर हमलोगों का पराक्रम हो जायगा।

इस प्रकार सजधज कर सारी सेना समुद्र के तट पर पहुंच गई। जब सेना के तीर पर पहुंचने का समाचार रावण को मिला तब रावण ने अपने मंत्रियों को बुला कर पूछा—ऐ मेरे मंत्रियो, तुम लोगों ने तो देख लिया है जो हनुमान् ने किया है, राम को सेना समुद्र के तट पर पहुंच गई। आप लोगों का क्या मंत्र (राय) है? मंत्र ही करके कार्य करने से विजय होती है। इस जगत् में तीन प्रकार के मनुष्य हैं—उत्तम, मध्यम तथा अधम—अब उनका गुण आप लोगों को बताता हूं। जिसका मन्त्र तीन मनुष्यों के मन्त्रों के समान होता है, जो समर्थ मित्रों की उचित अनुमति लेकर मन्त्र देता है, जिसका मन्त्र धन धर्म तथा काम से संयुक्त होता है, जो देवताओं की सहायता के लिए यत्न करता है, जो देश काल पात्र के अनुसार कार्य का आरंभ करता है वह उत्तम पुरुष है। जो अकेले ही धन की बात सोचकर या अर्थ की बात सोचकर, अकेले ही किसीको अपना सहायक बनाकर कार्य करता है वह मध्यम पुरुष है। जो गुण दोष का विचार नहीं करता, देवताओं का भी अवलंब नहीं रखता, केवल यही सोचता है कि करूंगा, पर अंत में उसे भी नहीं करता वह अधम पुरुष है। शास्त्र लिखित विचारों के अनुसार एक विचार स्थिर करके मन्त्री लोग जिस बात का निश्चय करते हैं वह उत्तम मन्त्र है। जिसमें पहले तो सब मंत्रियों की भिन्न सम्मति हो पर अन्त में बहुत विवाद करने पर और बहुत आगे पीछे समझाने बुझाने पर एक सम्मति हो जाती है

उसे मध्यम मंत्र कहते हैं। जिसमें सब लोग परस्पर विवाद करें, अन्त में जब कोई एक सम्मति स्थिर हो तब उसमें भी कल्याण न हो केवल कष्ट ही हो, उसे अधम मंत्र कहते हैं। इससे आप लोग ऐसी सम्मति दीजिये जिसमें मेरे राज्य की भलाई हो।

विभीषण ने कहा—ऐ नाथ, जो मुझे उचित जान पड़ेगा वही कहूंगा; क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि—यदि मंत्री, वैद्य और गुरु ये तीन भय से अथवा स्वामी को प्रसन्न करने के लिए प्रिय बोलते हैं तो क्रमशः राज्य, शरीर, तथा धर्म का शीघ्र ही नाश हो जाता है। यदि आपने मुझसे पूछा है तो मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उचित ही कहूंगा। सुनिये जो राजा मन्त्रियों की सम्मति से अपने राज्य का सब कार्य करता है उसे सब सम्पत्तियां मिलती हैं और कभी पश्चात्ताप नहीं होता। जो कार्य बिना उपाय के, या उलटी रीति से किये जाते हैं वे नष्ट हो जाते हैं। जो राजा पहले करने के योग्य कार्य को पीछे करता है और पीछे करने के योग्य कार्य को पहले करता है वह नीति नहीं जानता। जो राजा बिना विचारे शीघ्रता से सब कार्य करता है वह शत्रुओं से पराजित होता है। यदि तुम अपनी भलाई चाहते हो तो वा यदि तुम सुयश, सुमति, शुभगति और सुख चाहते हो तो पराई स्त्री का त्याग करो। काम, क्रोध, लोभ तथा मद ये सभी नरक के पथ हैं। सुमति तथा कुमति सबके हृदय में निवास करती है। जहां सुमति है वहां सारी सम्पत्तियां हैं, और जहां कुमति है वहां सारी विपत्तियां हैं। तुम्हारे हृदय में कुमति का निवास हुआ है, इसलिए तुम मित्र को शत्रु और हित को अहित मानते हो। यदि

तुम सचमुच अपनी भलाई चाहते हो तो रामचन्द्रजी के चरणों पर जा गिरो और सीताजी को उन्हें सौंप दो। रामजी को साधारण मनुष्य या सीताजी को साधारण स्त्री मत समझो। वे सगुण ब्रह्म हैं। गो, द्विज, देवताओं की रक्षा के लिए उनने मनुष्य का जन्म धारण किया है। उन्हींकी शरण में जाने से तुम्हारी सब प्रकार भलाई है।

रावण को विभीषण की शिक्षा सुन कर बड़ा क्रोध हुआ। उसने कहा—तुम मेरे शत्रु हो, भाई नहीं हो, सर्प के साथ निवास करना ठीक है, किन्तु शत्रु तथा शत्रु की भलाई चाहने तथा प्रशंसा करनेवाले सेवक के साथ रहना ठीक नहीं है। जातिवालों का तो यह स्वभाव ही है कि जातिवाले को विपत्ति में देख कर प्रसन्न होते हैं। अपनी जाति में यदि कोई राजा हो, साधक हो, विद्वान् हो, धर्मात्मा हो,वीर हो, तो जातिवाले उसका निरादर करते हैं। जाति के लोग सम्पत्ति में संग, और विपत्ति में अलग हो जाते हैं। वे समय पाकर आग लगा देते हैं, विष खिला देते हैं, धन चुरा लेते हैं, खेत काट लेते हैं, स्त्री को हरण कर लेते हैं, और प्राणघात भी करते हैं। ये हृदय से शत्रुता और मुख से प्रीति रखते हैं। पद्मवन में हस्तियों ने भी कहा था कि—अग्नि, शस्त्र, पाश, या विष से नहीं डरना चाहिए, किन्तु जातिवालों से अवश्य डरना चाहिए। सब भयों से बढ़ कर जातिभय है। गौओं के साथ सम्पत्ति, जातियों के साथ भय, स्त्रियों के साथ चंचलता, और ब्राह्मणों के साथ तपस्या रहती है। मेरी जाति के लोगों को यह अच्छा नहीं लगता कि—मेरी प्रतिष्ठा सारे लोक में हो गई, मेरे पास अलौकिक

सम्पत्ति हो गई और मैं शत्रुओं को जीतनेवाला रावण कहलाने लगा। जैसे कमल के पत्रों में पानी नहीं ठहरता, वैसे ही दुष्टों के हृदय में प्रेम नहीं ठहरता। जैसे शरत्काल के मेघों में केवल गर्जना होती है किन्तु वृष्टि नहीं होती, वैसे ही दुष्ट ऊपर से मीठे वचन बोलते हैं पर उनमें प्रेम नहीं होता। जैसे भौंरा फूल का रस पीता है, पर वहां नहीं ठहरता, वैसे ही तुम मेरा ही धन खाते हो मुझमें तुम्हारी प्रीति नहीं रहती। जैसे कास के फूलों से भौंरों को रस नहीं मिलता, वैसे ही सज्जनों को दुर्जनों से कुछ प्रेम नहीं मिल सकता। जैसे हाथी स्नान कर के भी सूंढ़ से उठा कर धूलि अपने ऊपर फेकने से फिर अशुद्ध हो जाता है, उसकी शुद्धता नष्ट हो जाती है, वैसे ही दुष्टों की मित्रता तुरत नष्ट हो जाती है। यदि दूसरा कोई ऐसा कहता तो शोभा देता, पर तुमको ऐसा कहना उचित नहीं है।

महापार्श्व मंत्री ने कहा—ऐ महाराज रावण, विभीषण नीति की बात कुछ नहीं जानता। आप ही सोचिये, कौन ऐसा मूर्ख होगा जो निर्जन वन में मद्य पाकर न पीयेगा? आप सभीके स्वामी हैं, फिर आपका कौन स्वामी है? आप शत्रुओं को पराजित कर के जानकी के साथ रमण कीजिये। यदि सीता न प्रसन्न हो तो बलपूर्वक उसके साथ रमण कीजिये। रावण ने कहा—ऐ, महापार्श्व! मेरा भी यही विचार है, किन्तु इसमें एक गुप्त कारण है जिससे मैं ऐसा नहीं कर सकता। एक दिन की बात है कि पुञ्जिकस्थला नाम की अप्सरा ब्रह्मा के घर जा रही थी, वह मुझे देख डर गई।

किन्तु मैंने उसका वस्त्र खींच कर बलात्कार किया। जब वह ब्रह्मा के पास गई तब ब्रह्मा ने सब बात जान कर मेरे पास आकर क्रोध से कहा—ऐ रावण! आज से यदि तू किसी स्त्री के साथ बलात्कार करेगा तो तेरा सिर फट कर सौ टुकड़े हो जायगा। इसी डर से मैं सीता को बलात्कार अपनी शय्या पर नहीं ले आता।

विभीषण ने कहा—मैंने तुम्हारी भलाई के लिए ऐसा वचन कहा है। जिसका काल समीप आ जाता है वह दूसरेका हित-वचन नहीं मानता। प्रिय बोलनेवाले बहुत हैं, परन्तु अप्रिय और हित की बात कहनेवाले या सुननेवाले कम हैं। तुम काल-पाश में बंध गये हो, जो काल सब का नाश करता है। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारा नाश हो। मैं यह भी नहीं चाहता कि रामजी अपने अग्नि के समान बाणों से तुम्हारा शरीर नष्ट करें। जब काल आ जाता है तब वीर, बलवान् तथा शस्त्र चलाने में चतुर मनुष्य भी रण में मारे जाते हैं। जो हो, मैं फिर भी कहता हूं—रामजी की शरण में जाओ। रामजी से विमुख प्राणी कभी सुख नहीं पाता।

यह वचन सुन कर रावण को बड़ा क्रोध हुआ। उसने क्रोध कर के विभीषण को एक लात मारी। विभीषण को बड़ी लज्जा तथा क्रोध हुआ, वह अपने चारों मंत्रियों को लेकर रामजी के पास चला आया। यहां आने पर लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान् तथा अंगद किसीकी भी राय नहीं हुई कि विभीषण रखा जाय, किन्तु सभी को यही राय हुई कि चारों मंत्रियों के साथ विभीषण मार डाला जाय। सभी लोगों ने आकर कहा कि हे भगवन्; रावण

का छोटा भाई विभीषण आया है। वह आपकी शरण में रहना चाहता है, आपकी क्या आज्ञा है? रामजी ने कहा—तुम लोग अपनी अपनी राय कहो फिर जैसा उचित समझूंगा वैसा करूंगा। सुग्रीव ने कहा—यदि शत्रु अचानक अपनी सेना में आ जाय तो उसे मार डालना चाहिए। मंत्रणा करने में, सेना की रचना करने में, नीति में, और शत्रुओं के दूतों में सदा सावधान रहना चाहिए। रूप बदल कर चलनेवाले, और धोखा देकर मारनेवाले राक्षसों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। जंगल से आये हुए, मित्र के भेजे हुए और नये रखे हुए मनुष्यों से अपनी सेना बढ़ाना उचित है पर शत्रु के मनुष्यों को लेकर सेना बढ़ाना उचित नहीं। यह रावण का अपना सगा भाई है, इसको बांधकर रखना ही उचित है। राम ने कहा, राजकुमार अंगद की क्या राय है? जब समय आ पड़े तब बुद्धिमान् पुरुष को उचित है कि वह अपने हित-मित्रों को उचित सम्मति दे।

अंगद ने कहा, भगवन्! मैं भी विभीषण पर विश्वास नहीं करता। दुष्ट लोग छिप कर या रूप बदल कर इधर उधर घूमते फिरते हैं, और अवसर पा कर घात करते हैं। अर्थ अनर्थ का विचार करके व्यवसाय करना चाहिए। सबसे गुण संग्रह करना चाहिए और अवगुण त्यागना चाहिए। यदि उनमें गुण हो तो संग्रह करना चाहिए, और अवगुण हो तो त्याग करना चाहिए। कोई नया मनुष्य आ जाय तो उसको बरताव बिना परीक्षा किये नहीं करना चाहिए। हनुमान् ने कहा—भगवन्! आपको विवाद में बृहस्पति भी नहीं हरा सकते। किन्तु मैं अपनी लघु बुद्धि के

अनुसार जो उचित जान पड़ता है उसे नम्रता के साथ निवेदन करता हूं। विना किसी कार्य के हित अहित का ज्ञान नहीं हो सकता, किन्तु अज्ञात मनुष्य को सहसा कोई काम सौंपना भी ठीक नहीं। विना अवसर विभीषण आया है, तब कारण जान लेना बहुत अवश्यक है कि वह यहां क्यों आया है? विभीषण बुद्धिमान् पुरुष है। वह रावण की दुष्टता तथा आपका पराक्रम सोच विचार आपकी शरण में आया है। उसके अपरिचित किसी दूत को उसके पास भेजिये, वह उससे आने का कारण पूछे। यदि वह उत्तर करने में शंकित हो जाय तब तो उसे कपटी समझिये, और यदि निःशंक हो कर उत्तर करे तो उसे सच्चा समझिये। उस की चेष्टा तथा स्वर से उसके मानसिक भाव का ज्ञान हो जायगा। उसके बोलने में किसो प्रकार की दुष्टता नहीं जान पड़ती, इससे मुझे उसपर तनिक भी संदेह नहीं है। यदि कोई कितना हूं छिपाना चाहे तो भी आन्तरिक भाव नहीं छिप सकता। आन्तरिक भाव बलपूर्वक बाहर निकल कर प्रकट हो ही जाता है। दुष्ट कभी निःशंक हो कर नहीं ठहर सकता; किन्तु उसकी चेष्टा तथा बोली में किसी प्रकार की दुष्टता नहीं जान पड़ती, इससे मुझे उस पर तनिक भी संदेह नहीं होता। देशकाल के अनुकूल कार्य करने से वह सफल होता है। इसीसे यह आपका उद्योग और रावण की नीचता देख कर आपकी शरण में आया है। इसने वालि का मरण और सुग्रीव का राज्याभिषेक भी सुना होगा। इसी लिए वह लंका का राज्य लेने की इच्छा से यहां आया है। राम ने कहा—मेरी भी यही इच्छा है कि—यदि यह मित्र-

भाव से मेरे पास आ गया है तो मैं इसे क्यों त्याग करदूं। सुग्रीव ने कहा—वह दुष्ट हो वा सज्जन हो, इससे क्या ? पर कौन ऐसा भाई होगा जो ऐसी विपत्ति में अपने भाई का त्याग करेगा? वह रावण समय पड़ने पर किसीको नहीं त्यागेगा। राम ने कहा—तुमने ठीक कहा है ऐ सुग्रीव ! जिसने शास्त्रों को नहीं पढ़ा होगा, जिसने वृद्धों की सेवा न की होगी, वह कभी ऐसा उचित वाक्य नहीं कह सकता। तो भी मुझे एक बात जान पड़ती है सो कहता हूं—शत्रु दो प्रकार के होते हैं, एक अपने कुल में रहनेवाले और दूसरे अपने देश में रहनेवाले। ये दोनों विपत्ति पड़ने पर घात करते हैं। यह विभीषण रावण के कुल का शत्रु है, रावण पर विपत्ति आ गयी है, इसलिए यह उसे मारने का उपाय करने की इच्छा से आया है। जो पापरहित राजा होते हैं वे यद्यपि अपनी जाति के लोगों तथा कुटुम्ब के लोगों का आदर करते हैं तो भी कुलवाले लोभवश राजा को मारने की इच्छा करते हैं। हमलोग रावण के कुल के नहीं हैं, इस लिए विभीषण रावण का ही राज्य लेना चाहेगा, हम लोगों का नहीं। इस कारण विभीषण हम लोगों की कुछ बुराई नहीं करेगा। वह विभीषण यहां आकर सुखी होगा। समय पाकर राज्य के लोभ से रावण के साथ लड़ेगा, और रावण ने लात मार कर इसे निरादर के साथ निकाल दिया है, इस कारण यह बदला लेने की भी इच्छा करेगा। इस लिए विभीषण को यहां रहने दो। और सभी भाई भरत ही के समान नहीं होते हैं, या सभी पुत्र मेरे ही समान आज्ञाकारी नहीं होते हैं और सभी मित्र तुम्हारे ही (सुग्रीव के) समान नहीं होते हैं। फिर

यह विभीषण, दुष्ट हो व। सज्जन, स्वच्छ हृदय से आया हो वा कपट से, मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। पिशाच, दानव, या यक्ष कोई हो मैं उन्हें एक अंगुली से मार सकता हूं। कण्व ऋषि के पुत्र कण्डु ने धर्मपूर्वक यह वचन कहा है कि यदि शत्रु भी, हाथ जोड़ कर, दीन हो कर प्रार्थना कर शरण में आ जाय, तो उसे नहीं मारना चाहिए। यदि कोई दीन हो वा अहंकारी, पर वह शत्रु के भय से शरण में आ जाय, तो अपना प्राण त्याग कर भी उसकी रक्षा करनी चाहिए। जो ऐसे शरणागत की लोभ से, मोह से, या काम से अपनी यथाशक्ति रक्षा नहीं करता उसे महापाप लगता है। शरणागत मनुष्य यदि रक्षक की आंखों के सामने शत्रुओं से नष्ट किया जाता है तो रक्षक के सब पुण्य नष्ट हो जाते हैं। शरणागत मनुष्य की रक्षा नहीं करने से नरक होता है, निन्दा होती है और बलवीर्य का नाश होता है। इसलिए मैं कण्डु ऋषि का वचन पालन करूंगा। महापापी भी यदि शुद्ध हृदय से मेरी शरण में आ जाता है तो मैं उसकी रक्षा करता हूं। जो जीव मेरे सामने आता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो पापी होता है वह कभी मेरी शरण में नहीं आता। पापियों को मेरी सेवा अच्छी नहीं लगती। जो पुण्यात्मा होते हैं वेही मुझे पाते हैं। कोई मनुष्य एक बार भी मेरी शरण में आकर यदि कह देता है कि मैं आपका हूं, मेरी रक्षा कीजिये, तो मैं उसकी अवश्य रक्षा करता हूं, यही मेरा व्रत है। इससे लाओ, मैंने इसे अभय दे दिया, विभीषण हो या स्वयं रावण ही क्यों न हो, यदि वह भी मेरी शरण में आ जायगा तो मैं उसकी रक्षा करूंगा। सुग्रीव ने कहा—

हे नाथ, आपके लिए कुछ आश्चर्य नहीं है। मैं आपका स्वभाव तथा शरणागतवत्सलता अच्छी तरह जानता हूं।

सुग्रीव ने विभीषण को आने की आज्ञा दी; वह तुरत अपने मन्त्रियों के साथ आ पहुंचा। दौड़ कर त्राहि त्राहि करके रामजी के चरणों पर गिर पड़ा। उसकी आंखों से प्रेम के आंसुओं की धारा बहने लगी। भक्ति से उसका गला रुक गया, इससे वह कुछ न बोल सका। रामजी ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया और कहा—हे विभीषण, तुम तो सदा उन दुष्टों के बीच निवास करते हो; तुम्हारा धर्म कैसे निबहता है? मैं जानता हूं तुम न्यायप्रिय हो इससे रावण तुमसे अप्रसन्न हो गया। जो हो, मैं अपने तीनों भाई—भरत, लक्ष्मण, तथा शत्रुघ्न—की सत्य शपथ करता हूं कि मैं रावण को सारे परिवार के साथ मारकर तुमको लंका का राजा बना दूंगा। यदि रावण पाताल, रसातल, या ब्रह्मलोक में चला जायगा तो भी मैं उसे अवश्य ही मार डालूंगा। मैं सपरिवार रावण को मारे बिना लंका में प्रवेश नहीं करूंगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है। विभीषण ने कहा—नाथ! आपके लिए सभी सहज है। मैं आप का स्वभाव अच्छी तरह जानता हूं। मैं उन दुष्टों के संग में सुखी नहीं था। नरक में निवास करना ठीक है, पर दुष्टों के संग में रहना ठीक नहीं। जो हो, मैं अब आपके संग से सुखी हो गया। जब तक मनुष्य सब विकारों को छोड़कर भगवान् का भजन नहीं करता तब तक सुखी नहीं होता अब मैं आप के चरण कमलों का दर्शन कर सुखी हो गया। मैं बड़ा ही भाग्यवान् हूं कि आपने मेरे सरीखे अधम जीव को अपनी छाती से लगाकर कृतार्थ कर दिया।

रामजी ने कहा—ऐ विभीषण, सुनो, जो मनुष्य माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, विभव, सभीका प्रेम छोड़कर मुझमें प्रेम करता है उसे मैं ऐसा प्रिय समझता हूं जैसे लोभी धन को प्रिय समझते हैं। तुम्हीं सरीखे सच्चे भक्तों के लिए मैंने शरीर धारण किया है। जो मनुष्य परोपकारी, नीतिप्रिय, ब्राह्मणप्रिय और सगुण ब्रह्म की उपासना करनेवाले हैं वे मेरे प्राणों के समान प्रिय हैं। विभीषण ने कहा—मैं केवल आपकी शुद्ध भक्ति ही चाहता हूं। इसके बाद रामजी ने समुद्र का जल मंगाकर उससे विभीषण को स्नान कराकर, राज्य-तिलक देकर लंका का राजा बना दिया। फिर राम ने पूछा—समुद्र के पार मेरी सेना कैसे जायगी? विभीषण ने कहा—समुद्र से प्रार्थना करके रास्ता मांगा जाय। यदि रास्ता न दे तो आपने अग्नि के समान बाणों से सुखा दीजिये। रामने कहा—ऐसा ही किया जाय।

जब विभीषण रावण की सभा से क्रोधित होकर अपने मंत्रियों के साथ उठकर चला आया तब रावण ने समाचार जानने के लिए शुक नामक दूत को भेजा। यहां वानर सब उसे पहचान कर मारने लगे। जब उसने राम की शपथ दिलाई तब कहीं उसके प्राण बचे। सब पकड़ कर उसे रामजी के पास ले आये, तब वह कहने लगा—ऐ राजा रामजी! नीति जाननेवाले कभी दूतों को नहीं मारते। जो दूत स्वामी का संदेशा छिपा कर अपने मन से गढ़ कर नया संदेश कहता है वह वध करने के योग्य है, किन्तु जो दूत स्वामी के कहे हुए संदेश को ठीक ठीक कहकर सुना देता है उस

का कभी वध नहीं करना चाहिए। उसने आकर रावण से सब समाचार सुना दिया।

इधर जब समुद्र ने रास्ता नहीं दिया तब राम ने क्रोध करके कहा—ऐ विभीषण, देखो, समुद्र कैसा अहंकारी है कि अबतक मेरे पास नहीं आया। निर्गुण के साथ शान्ति, क्षमा, कोमलता, प्रिय वचन, ये सब नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से वे निर्गुण उस गुणवान् को असमर्थ समझते हैं। जो मनुष्य अपने मुंह अपनी प्रशंसा करता है, दुष्ट होता है, ढीठ होता है, इधर उधर घूमकर अपनी कीर्त्ति फैलाना चाहता है, और जो सबसे मार पीट करता फिरता है, उसका सब लोग अनादर करते हैं। शान्ति से कीर्त्ति या यश प्राप्त नहीं हो सकता। मैं अब अपने उग्र बाणों से समुद्र को शोषण करूंगा तब मेरी सेना भूमिपथ से पार कर जायगी।

राम ने धनुष तान कर बड़े वेग से समुद्र में बाण फेंका। बाण घुसते ही समुद्र में आग लग गयी। समुद्रके सब जन्तु व्याकुल होकर छटपटाने लगे। समुद्र मनुष्य का रूप धारण कर रामजी के पास आया और रामजी से कहने लगा कि यदि आपही मेरी मर्यादा की रक्षा नहीं करेंगे तो कौन करेगा? राम ने कहा—मेरी सेना कैसे लंका पहुंचेगी? समुद्र ने कहा—आपकी सेना में जो नल नामक बानर है वह विश्वकर्मा का पुत्र है। वह बहुत अच्छा पुल बनाना जानता है। आप उसीके हाथ मेरे बीच पुल बंधवा दीजिये, उसीसे सारी सेना पार कर जायगी। मैं भी उस समय थाह हो जाऊंगा, इससे कोई विशेष कठिनता नहीं पड़ेगी। बात भी ऐसी ही हुई। अगणित बानरों ने पहाड़ों की चट्टानों तथा बड़े बड़े वृक्षों से पुल

बांध डाला। पुल की चौड़ाई चालीस कोस तथा लम्बाई चार सौ कोस हुई। उसी पुल पर चढ़ कर रामजी की समूची सेना समुद्र के पार हो गयी। जब यह बात रावण के कानों तक पहुंची तब रावण बड़ा दुःखी हुआ। उसने अपने शुक तथा सारण नामक दो दूतों को रामचन्द्र तथा उनकी सेना का समाचार जानने के लिए भेजा। विभीषण ने उन दोनोंको पकड़ कर रामचन्द्रजी के पास पहुंचा दिया। वे दोनों डर से रामजी के चरणों पर पड़ कर बोले—भगवन्! कृपा कर मुझे अभय-दान दीजिये। रामजी ने कहा—तुम लोग मेरी सेना का पता लगाने के लिए आये थे सो मेरी सेना को अच्छी तरह देख लिया, अब आनन्द पूर्वक चले जाओ। यदि कुछ देखना बाकी हो तो जाकर देख लो, या विभीषण जा कर तुम दोनोंको सब दिखला देंगे। तुम लोग बिना अस्त्र शस्त्र के आये हो इससे बध करने के योग्य नहीं हो। तुम लोग जाकर रावण से कहो—कि जिस बल से तुमने सीता को चुराया है वह बल अब दिखलाओ।

शुक सारण ने जा कर रामचन्द्रजी की सेना का पूरा परिचय बताया। रावण ने कहा—मैं अपनी ऊंची अटारी पर चढ़कर रामजी की सेना तथा उस सेना के वीरों को पहचानना चाहता हूं। तुम दोनों मेरे साथ रहकर उन लोगों की पहचान करा दो। अटारी पर चढ़कर उन दोनों ने रावण को यों बताना प्रारम्भ किया। सारी सेना के बीच में रामचन्द्रजी बैठे हैं, जो बड़े वीर सांवले तथा कमल के समान नेत्रवाले हैं, जिनकी वीरता प्रसिद्ध है, वे बड़े धर्मात्मा हैं, वे अपने ब्रह्मास्त्र से आकाश, पाताल, भूलोक आदि सभी

को विदारण कर सकते हैं। उनकी दाहिनी ओर में लक्ष्मणजी बैठे हैं, जिनके शरीर की चमक सुवर्ण के समान है, जिनके सिर के बाल काले तथा घूंघरवाले हैं। ये बड़े ही वीर तथा उत्साही और साहसी हैं। ये रामचन्द्र के शरीर के बाहर रहनेवाले दूसरे प्राण ही हैं। उन्हींकी दाहिनी ओर राजा विभीषण हैं। रामजी की बाईं ओर वानरों के राजा सुग्रीव हैं जो परम प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार सब वीरों का परिचय बताया। उन अगणित वीरों को देख कर रावण कुछ दुखी हुआ; फिर क्रोध करके कहा—तुम लोग मूर्ख हो और व्यर्थ ही शत्रु की प्रशंसा करते हो। तुम लोगों ने आचार्यों, वृद्धों, तथा गुरुओं की व्यर्थ ही सेवा की है; क्योंकि शास्त्र की बात कुछ भी नहीं जानते हो। तुम लोग केवल अज्ञान का बोझ ढोते हो। तुमलोगों के साथ रहकर मैं अपने ही भाग्य से बचा हुआ हूं। क्या तुम लोगों को दण्ड का कुछ भी भय नहीं है? जलते हुए वन में वृक्ष ठहर सकते हैं, किन्तु राजा के दण्ड से कोई नहीं बच सकता। तुम लोग मुझसे कठोर वचन कहते तनिक भी नहीं डरते। रावण को यह बात सुनकर वे दोनों वहां से बाहर चले गये। जब रावण ने सुना कि रामचन्द्र सारी वानरी सेना लेकर लंका के द्वार तक पहुंच गये और उनने चारों ओर से लंका को घेर लिया और उन के वीर वानर लंका में घुस गये तब रावण ने विद्युज्जिह्व से कहा—ऐ विद्युज्जिह्व! तुम माया के प्रभाव से रामचन्द्र का कटा हुआ नकली सिर दिखला कर सीता से कहो कि जिसके अवलम्ब से तुम रावण का निरादर करती थी और उसको पति बनाना नहीं चाहती थी वही रामचन्द्र आज मारा गया। विद्यु-

ज्ञिह्व ने ऐसा ही किया। जानकी राम का कटा सिर देख विलाप करने लगीं। सरमा ने जानकी से कहा—ऐ सौभाग्यवती सीते! तुम डरो मत, अभी रामचन्द्र जीते हैं। यह राक्षसों की माया है। वे कभी नहीं मारे जा सकते। रामजी ने अपनी वानरी सेना लेकर लंका को घेर लिया है। देखो, रामजी की सेना का घोर गर्जन चारों ओर सुनाई पड़ रहा है। अब बहुत विलम्ब न होगा। थोड़े ही दिनों में रामजी रावण को सपरिवार नष्ट कर तुमको यहां से ले जायंगे। ठहरो, मैं वहां जाकर देख आती हूं कि कहां क्या हो रहा है।

जब रावण ने रामजी की सेना का घोर गर्जन सुना तब मंत्रियों को बुलाकर मंत्र पूछने लगा कि अब क्या करना चाहिए? माल्यवान् ने कहा—जो राजा विद्याओं का जाननेवाला और नीति में चतुर होता है वह सारी सम्पत्तियों को पा जाता है और शत्रुओं को वश कर लेता है। जो समय के अनुसार संधि तथा विग्रह करता है और सदा अपने पक्ष की वृद्धि करता है वह महान् ऐश्वर्य पाता है। यदि राजा आप निर्बल हो जाय तो शत्रु से संधि कर ले। यदि प्रबल हो जाय तो शत्रु से विग्रह कर ले। इसलिए मेरी राय है कि अब आप रामजी से संधि कर लीजिये। सीता ही के लिए यह युद्ध हो रहा है। इसलिए सीताजी को रामजी के हाथ में सौंप दीजिये। भगवान् पितामह ने धर्म तथा अधर्म इन दो वस्तुओं को बनाया है। देवताओं के वास्ते धर्म को और दैत्यों तथा राक्षसों के वास्ते अधर्म को बनाया है। जब धर्म अधर्म को ग्रस लेता है तब सत्ययुग होता है, और जब अधर्म धर्म को ग्रस लेता

है तब कलियुग होता है। आपने अधर्म करके धर्म का नाश कर दिया, इसलिए धर्मात्मा रामचन्द्र को वृद्धि हो रही है। तुम्हारा किया हुआ अधर्मरूपी सर्प हम लोगों को ग्रस रहा है। तुमने सारे राज्य में पाप का आचरण करके मुनियों को बड़ा दुःख दिया है। जो हो, बीती को भूल जाइये, अब रामजी से सन्धि करके अपनी सारी सम्पत्ति की रक्षा कर लीजिये।

उसकी बात सुन कर रावण को बड़ा क्रोध हुआ, क्योंकि मूर्ख के हृदय में कभी ज्ञान नहीं होता। यदि ब्रह्मा के समान भी गुरु मिले तो इससे क्या? यदि मेघ अमृत की वर्षा करे तो भी बेंत में फूल या फल नहीं लग सकता। इसलिए रावण ने कहा—मैं तनिक भी राम से नहीं डरता। मैंने सारे जगत् को जीत लिया है, अब राम को भी जीत लूंगा। उधर रामजी अपनी सेना की रचना करने लगे। रामने कहा—सभी बानर ही के रूप में हो कर लड़ेंगे। केवल हम दोनों भाई और अपने चारों मंत्रियों के साथ विभीषण मनुष्य के रूप में हो कर लड़ेंगे। ये ही सात मनुष्य के रूप में रहेंगे। अब लोग उस अधम नीच राक्षस रावण के घर में चलें जिसने धर्म, कुल, ज्ञान, आचार सबको नष्ट करके सीता का हरण किया है। सब सेना के साथ रामचन्द्र लड़ने के लिए खड़े हो गये। उसी समय रावण देख पड़ा। सुग्रीव ने देख कर बड़ा क्रोध किया। वे तुरत ही उसके आगे आकर खड़े हो गये। दोनों में द्वंद्व युद्ध होने लगा। दोनों लड़ते लड़ते थक गये अंत में दोनों अलग अलग होकर चले गये। रामने कहा—ऐ सुग्रीव, तुमने बड़ा साहस किया। व्यर्थ ही रावण के साथ लड़ गये। राजा

लोग ऐसे साहस का काम नहीं करते। फिर कभी ऐसे साहस का काम नहीं करना। तुम्हारी अवस्था देख विभीषण और हम दोनों संकट में पड़ गये थे। सुग्रीव ने कहा—ऐ भगवन्, आपकी भार्या को चुरानेवाला पापी रावण जब सामने आ गया तब मुझे क्यों न क्रोध होगा? मैं सहन न कर सका, इस लिए ऐसा कार्य कर डाला। फिर दोनों सेना में घमासान युद्ध होने लगा। मेघनाद ने अपनी माया फैलायी। वह अन्तर्हित होकर बाणों की वर्षा करने लगा। अन्त में उसने नागपाश छोड़ा, जिससे राम, लक्ष्मण दोनों भाई बंध कर बेहोश हो गये। उनकी यह दशा देख कर सभी विलाप करने लगे। विभीषण ने सुग्रीव आदि बानरों से कहा—आप लोग चिन्तित न हों, आंसू बहाने की कोई आवश्यकता नहीं है। क्या इसीसे रावण जीत जायगा? यदि हम लोगों का कुछ भी सौभाग्य शेष होगा तो रामजी अवश्य ही अपने भाई के साथ सचेतन हो जायंगे। यह समय घबड़ाने का नहीं है। इसी समय विशेष स्नेह करने से भी सबका मरण हो जायगा।

उस समय रावण ने राक्षसियों से कहा—तुम लोग सीता को युद्धक्षेत्र में ले जाकर दिखला दो कि देखो तुम्हारे पति और देवर दोनों मरे पड़े हैं। राक्षसियों ने वैसा ही किया। सीता अपने पति तथा देवर को रण में पड़ा हुआ देख कर विलाप करने लगीं—

"ज्योतिषियों ने कहा था कि तुम सदा सुहागिनी रहोगी सो बात आज झूठी निकली, मेरे चरणों में जो कमल के चिह्न हैं वे साम्राज्य पान के लक्षण हैं, वे भी व्यर्थ हो गये! मेरे शरीर में वैधव्य का कोई लक्षण नहीं देख पड़ता तो भी मैं विधवा हो

गई ! मेरे बाल पतले, बराबर, और काले हैं, मेरी दोनों भौंहें अलग अलग हैं। मेरी जांघें गोल हैं और उनमें बाल एक भी नहीं है। मेरे दांत सटे हुए, छोटे, और चिकने हैं। मेरी आंखें लम्बी तथा चमकीली हैं। हाथ, पैर, पींडुरी, उरु, आदि सभी अङ्ग ढालू हैं। नख लाल और चिकने हैं। अंगुलियां गोल हैं। मेरे स्तन सटे हुए, और बड़े हैं। उनके मुंह स्तनों के भीतर ही हैं, बाहर नहीं निकले हैं। मेरी नाभि गहरी है। दोनों बगलें गोल हैं। मेरे शरीर का रंग मणि के समान चमकीला है, रोएं बड़े ही नरम हैं। मेरी सभी अंगुलियों में यव के चिह्न हैं। जब मैं अंजली बांधती हूं तब मेरी अंजली में अंगुलियों के बीच छेद नहीं देख पड़ता। मेरे सभी शुभ लक्षण तथा ज्योतिषियों के वचन तथा शास्त्र सभी आज व्यर्थ हो गये।" जानकी इसी प्रकार विलाप करती चली गईं।

इसी अवसर में रामचन्द्रजी को होश हुआ। वे लक्ष्मण को मूर्च्छित देख कर बोले—यदि मेरा भाई लक्ष्मण ही नहीं रहेगा तो मेरे जीने से क्या ? सीता को पाने से क्या ? और राज्य से क्या ? इस जगत् में ढूंढने से सीता के समान स्त्री मिल सकती है, किन्तु लक्ष्मण के समान सहायक और युद्ध में साथ देनेवाला भाई नहीं मिल सकता। यदि लक्ष्मण मर जायंगे तो मैं सभी बानरों के सामने ही प्राण त्याग कर दूंगा। यदि मैं अकेले अयोध्या में जाऊंगा तो माता सुमित्रा के पूछने पर क्या उत्तर दूंगा ? भरत और शत्रुघ्न को कौन सा मुंह दिखलाऊंगा ? क्या मैं उनसे यही कहूंगा कि मैं लक्ष्मण के साथ वन गया, पर उनको युद्ध में खो कर अकेला ही घर

लौट आया ? मैं बड़ा अधम हूं कि लक्ष्मण को इस अवस्था में
रहा हूं। ऐ सुग्रीव, विभीषण, हनुमान्, अङ्गद, जाम्बवान्, और
नील, नल, तुम लोगों ने मेरे लिए बड़ा परिश्रम किया है
सभी व्यर्थ हो गये इस लिये तुम लोग जाओ। मैं तो यहीं
त्याग करूंगा। इसी अवसर में गरुड़ जी आ पहुंचे। उन्हें
ही सभी सर्प भाग गये। दोनोंकी चोट को गरुड़जी
ओषधियों के प्रभाव से अच्छा करके चले गये। इसके बाद
सेना में आनन्द का बाजा बजने लगा। दोनों सेनाओं में
घोर युद्ध होने लगा। इस युद्ध में रावण के बड़े बड़े प्रतिष्ठित
मारे गये। रावण को बड़ा शोक हुआ। उसने बुला कर मंत्रि
से कहा—अब क्या करना चाहिए ? मैंने आजतक कहीं हार
पाई है; इसलिए विजय निश्चित है और मेरा मरण अनिश्चि
है। युद्ध करना ही उचित है, यदि जीतूंगा तो राज्य करूंगा
मरूंगा तो स्वर्ग पाऊंगा। जहां युद्ध न करने में मृत्यु का डर
और युद्ध करने में कुछ जीतने की आशा है ऐसी अवस्था में
करना बहुत ही उचित है। मेरी तो यही सम्मति है। तुमलोगों
क्या सम्मति है सो कहो।

प्रहस्त ने कहा—यह कौन बड़ा कठित प्रश्न है ? खुलासा
कि—या तो जानकी को दे दीजिये या युद्ध कीजिये। रावण ने
आज मैं लड़ने के लिए जाऊंगा। जब रावण संग्राम में
तब उसे देख बानर डर गये। पहले हनुमान् से भेंट हुई। दोनों
खूब ही मुक्कामुक्की और घुस्साघुस्सी हुई। अन्त में दोनों
कर अलग हो गये। दोनोंने दोनोंके बल की बड़ी प्रशंसा

फिर रामचन्द्र के साथ घोर युद्ध हुआ। किसीकी जीत नहीं हुई, दोनों लौट आये। रावण ने घर पर आकर कुम्भकर्ण को जगाने की आज्ञा दी। सब राक्षसों ने मिलकर उसे जगाया। हज़ारों हाथी, घोड़े उसके शरीर पर घुमाये गये। कान के पास हज़ारों बाजे बजाये गये। किसी प्रकार कुम्भकर्ण की नींद खुली। वह उठकर रावण के पास पहुंचा और उसने रावण से पूछा—क्यों भैया! तुमने मुझे क्यों जगाया है? रावण ने कहा–मैं बड़ी विपत्ति में पड़ गया हूं; मैंने सीता को चुरा लिया है, इसी कारण राम से घोर युद्ध हो रहा है। अब क्या करना चाहिए? जाओ, रण में लड़ो और वानर भालुओं को खा जाओ।

रावण का वचन सुनकर कुम्भकर्ण बोला–जो वचन विभीषण ने आपसे कहा था आपने उसे नहीं माना, उसीका यह फल है। हित-वचन पर अवश्य श्रद्धा करनी चाहिए। तुम्हारे पापों का फल आ गया; जो धर्मात्मा हैं उनके लिए संसार में कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है, किन्तु जो पाप करेगा वह नरक में पड़ेगा। तुमने पहले ही बल के घमण्ड से बिना सोचे विचारे अनुचित कार्य कर डाला है। कुछ भी नहीं सोचा विचारा। जो ऐश्वर्य के अहंकार से पहले कार्य कर बैठता है और आगे का परिणाम नहीं सोचता वह नीति नहीं जानता। जो राजा देश, काल, पात्र के विपरीत कार्य करता है उसके सब कार्य नष्ट हो जाते हैं। जो राजा क्षय, वृद्धि, तथा स्थिति का विचार करके साम, दान, दण्ड, भेद, आदि के विषय में मंत्रियों के साथ बैठकर पांच प्रकार से कार्य निश्चित करता है उसके सब कार्य सिद्ध होते

हैं। उसके रास्ते में कोई कण्टक नहीं रहता। कर्मों के आरम्भ करने का उपाय, पुरुष, द्रव्य और सम्पत्ति विचार, देश काल का विभाग, बिपत्ति छुड़ाने का उपाय, और कार्यसिद्धि का विचार, ये ही पांच प्रकार हैं। जो राजा शास्त्र के आज्ञानुसार, सचिवों की सम्मति के अनुसार, उचित समय पर कार्य करने का विचार करता है और शत्रु मित्र को पहचानता है, उसे कोई दुःख नहीं हो सकता। जब अपनी वृद्धि हो और शत्रु की अवनति हो तब शत्रु पर चढ़ाई करनी चाहिए। जब अपना और शत्रु का बल बराबर हो तब सन्धि करना ठीक है। जब अपनी अवनति हो और शत्रु की उन्नति हो तब दान से उसको प्रसन्न कर देना चाहिए। उचित समय पर ही धर्म, अर्थ वा काम का सेवन करना चाहिए। इन्हें अलग अलग करना चाहिए, या उचित अवसर हो तो एक साथ भी कर सकते हैं। यदि धर्म अर्थ तथा कामवाले कामों में परस्पर विरोध हो तो उन दोनोंको छोड़ कर धर्म-कार्य करना ठीक है। और अर्थ तथा कामवाले कामों में परस्पर विरोध हो तो अर्थवाला ही काम करना ठीक है। जो इन बातों को नहीं जानता वह नाम मात्र का राजा है। उसमें राजा का कुछ भी गुण नहीं है। जो राजा जितेन्द्रिय होकर साम, दान, दण्ड तथा भेद का प्रयोग करता है वह कभी विपत्ति में नहीं पड़ता। जो शुभचिन्तक तथा नीति-चतुर मंत्रियों से सम्मति लेकर अपना कार्य करता है वही राजा होता है। बहुत से मूर्ख लोग राजा की अज्ञता से मंत्री बनाये जाते हैं। वे लोग अपनी मूर्खता पर ध्यान देकर राजा के सामने केवल अपनी धृष्टता के सहारे बोला करते हैं। उस मूर्ख मंत्री की

बात जो राजा मानता है वह विपत्ति में पड़ता है। जो मंत्री भीतर से अहित है और बाहर से हित के समान वचन बोलता है उस की बात पर राजा को विश्वास करना उचित नहीं है, और उस को मन्त्र करने के समय बाहर निकाल देना चाहिए; क्योंकि वह सर्वदा काम बिगाड़नेवाला है। वह मन्त्री अपने विपरीत विचारों से राजा का नाश कर देता है। बहुत से मंत्री शत्रुओं से घूस लेकर शत्रुओं में मिल जाते हैं, किन्तु ऊपरी भाव से अपने ही राजा से मिले रहते हैं, ऐसे मंत्रियों की बात माननेवाला राजा विपत्ति में पड़ता है। जो शत्रु को पहचान कर भी उससे असावधान रहता है वह अंत में पराजित होता है और राज्यसिंहासन से गिर जाता है। जो विभीषण तथा मंदोदरी ने कहा था वही ठीक था, उसी में तुम्हारी भलाई थी, फिर जो अच्छा जान पड़े वह करो।

रावण ने कुंभकर्ण की बात सुन कर क्रोध करके कहा—तुम आचार्य बनकर उपदेश मत दो। जो इस समय उचित जान पड़े सो करो। पराये को उपदेश करने में बहुत से लोग चतुर हैं, पर जो उपदेशानुसार कार्य करते हैं वे बहुत कम हैं। यदि मैंने अनुचित किया है तो अपने बल से उसे सुधारो। यदि तुम्हारी प्रीति मुझपर तनिक भी हो तो रण में जाकर विक्रम दिखलाओ। जो विपत्ति पड़ने पर सहायता करता है वही मित्र और बंधु है। कुंभकर्ण रावण के दुःख पर पिघल गया। उसने कहा—ऐ भैया रावण। तुम तनिक भी मत घबड़ाओ। मैं तुम्हारे शत्रुओं को तुरत मारकर चला आऊंगा। राम लक्ष्मण का कटा सिर दिखला तुम्हें सुखी कर दूंगा। इस प्रकार कह कर वह लड़ाई की ओर चलने को तयार हो गया।

महोदर ने कहा—ऐ कुम्भकर्ण ! ऐसा मत कहो, मेरे राजा रावण सब कुछ जानते हैं। कब अपने किले में चुपचाप बैठना चाहिए, कब युद्ध करना चाहिए, किस प्रकार अपना लाभ होगा, किस प्रकार शत्रु की हानि होगी, ये सभी बातें जानते हैं। जिसने वृद्धों का संग न किया होगा, जिसकी बुद्धि साधारण मनुष्यों के समान होगी वह कभी रावण के समान विचारयुक्त कार्य नहीं कर सकता। मेरे राजा बुद्धिमान् और बलवान् दोनों हैं। तुम धर्म और अर्थ को परस्पर विरोधी कहते हो, यह बात ठीक नहीं है। बुद्धिमान् दोनों (धर्म, धनों) को वा तीनों (अर्थ, धर्म, कामों) को एक साथ साधन कर सकता है। कार्य करने ही से ये तीनों उत्पन्न होते हैं। पाप कर्मों के फल अशुभ और पुण्य कर्मों के फल शुभ होते हैं। धन और धर्म से स्वर्ग होता है, और मोक्ष भी हो सकता है, किन्तु काम से कभी स्वर्ग या मोक्ष न होगा। धर्म का कार्य जप, तर्पण होमादि अवश्य करना चाहिए। इसके न करने से पाप होता है, किन्तु काम्य कर्म नहीं करने से कोई पाप नहीं होता। धन, धर्म और काम इन तीनों के दो प्रकार के फल होते हैं—ऐहलौकिक, और पारलौकिक। जप, ध्यान आदि धर्मकार्यों से इस लोक में शरीर-शुद्धि तथा नीरोगता आदि, तथा परलोक में ईश्वरप्राप्ति तथा अनन्त सुख होते हैं। धन से इस लोग में यज्ञ, दान, होम, देवभवन-निर्माण, विद्यालय-स्थापन, विनामूल्य औषधि-वितरण आदि पवित्र कार्य होते हैं, तथा परलोक में स्वर्गप्राप्ति और स्वर्गसुख भोग होते हैं। काम से इस लोक में रोग, दरिद्रता, चिन्ता, लज्जा, निंदा आदि फल होते हैं, और परलोक में नरकलाभ होता है।

धार्मिक कार्य करने से इस लोक में दुःख और परलोक में सुख होता है। और पापकार्य करने से इस लोक में सुख और परलोक में दुःख होता है। परलोक ही के सुख दुःख पर विशेष ध्यान देना चाहिए। मेरे राजा ने जो राम की स्त्री को चुरा लिया है यह अनुचित नहीं किया है; क्योंकि राम ही ने पहले शत्रुता का कार्य प्रारम्भ किया है। उन्होंने बहुत से राक्षसों को विश्वामित्र के यज्ञ में तथा जनस्थान में मारा है। वे राम बड़े बली हैं इसमें सन्देह नहीं है; तब तुम कैसे उन्हें मार सकते हो? सोये हुए सर्प तथा सिंह के समान राम को जगा कर (सचेत कर) उन्हें कैसे मार सकते हो? वे मृत्यु के समान भयंकर हैं। उनके सामने कौन खड़ा हो सकता है? तुम अकेले मत जाओ।

कुम्भकर्ण ने कहा—मैं आज भाई रावण को निर्भय कर दूंगा। निर्जल मेघ के समान वीर लोग व्यर्थ नहीं गरजते हैं। वीर पुरुष शत्रु की उन्नति न सहकर पराक्रम से उसका नाश करते हैं। वे समय पर अपना दुष्कर कर्म दिखलाते हैं। ऐ महोदर! तुम्हारे ही समान कुमन्त्रियों की सम्मति से राजा का कोश, सेना, आदि सभी नष्ट हो गये। यह कह कर कुम्भकर्ण वानरों की सेना में आकर घुस गया। उसके भयंकर रूप को देख कर वानरों की सेना भाग चली। सुग्रीव, अंगद, हनुमान्, आदि सेनापतियों ने बड़ी कठिनता से वानरों को रोका। राम, लक्ष्मण भी उसे देख चकित थे। कुम्भकर्ण वानरों को उठा उठा कर पृथ्वी पर पटकने लगा। राम, लक्ष्मण उसपर बाणों की वर्षा करने लगे। अन्त में अत्यन्त भयंकर युद्ध करने के बाद रामने अपने अमोघ बाणों से कुम्भकर्ण को

मारा। कुम्भकर्ण का मरना सुनकर रावण को बड़ा शोक हुआ; उसने बहुत विलाप किया कि यदि मेरा भाई कुम्भकर्ण ही नहीं रहा तो राज्य से क्या? अब जानकी से भी मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है। अब मेरा मरना ही ठीक है। मैंने अज्ञानतावश विभीषण का कहना न माना। जान पड़ता है कि अब मेरे विनाश ही का समय आ पहुंचा। मैंने बड़ी मूर्खता की कि ऐसे धार्मिक भाई विभीषण को अनादर के साथ घर से निकाल दिया।

रावण का विलाप सुनकर उसका प्रथम पुत्र मेघनाद उसके पास आया। उसने कहा—"ऐ पिता! आप मेरे जीते जी क्यों इतना शोक करते हैं? मैं बहुत शीघ्र आपके शत्रुओं का नाश कर दूंगा। देखिये, लड़ने के लिए जा रहा हूं", ऐसा कह कर वह बड़ी तैयारी के साथ रणक्षेत्र में पहुंचा। उसे देख राम तथा लक्ष्मण दोनों बड़े ही आश्चर्य में पड़ गये। राम ने विभीषण से पूछा—'यह कौन आ रहा है"? विभीषण ने कहा—यह रावण का प्रथम पुत्र मेघनाद है। यह बड़ा बलवान् है। इसने वृद्धों की संगति करके बहुत सी नीति की बातें सीखी हैं। इसने बहुत से शास्त्र पढ़े हैं। अस्त्रशस्त्र चलाने में भी यह बड़ा निपुण है। यह घोड़ों तथा हाथियों पर चढ़ना बहुत अच्छा जानता है। तलवार बड़ी तेजी से चलाता है। बाण चलाने में इसके बराबर दूसरा कोई नहीं है। इसीकी सहायता से लंका में किसीका भय नहीं है।

मेघनाद रण में आकर लक्ष्मण से भिड़ गया। दोनोंमें महा भयंकर युद्ध हुआ। मेघनाद ने अपनी वीरता की बड़ी प्रशंसा की। लक्ष्मण ने कहा—व्यर्थ क्यों बकता है? अपना पराक्रम दिखला। जो

बलवान् तथा पौरुषयुक्त होता है वही वीर कहलाता है। तू मुझे बालक समझ कर निरादर करता है, पर यह ठीक नहीं। मैं बालक होऊं या वृद्ध होऊं पर तेरा प्रत्यक्ष काल हूं। लक्ष्मण की बात सुन कर मेघनाद को बड़ा क्रोध हुआ। वह लक्ष्मण तथा सारी सेना पर बाणों की वर्षा करने लगा। सभी व्याकुल हो गये। अन्तमें बाणों के आघात से सभी मूर्छित हो गये। रात हो गई। हनुमान् के साथ विभीषण हाथ में मशाल लेकर सब वीरों को ढूंढ़ने लगे कि कौन मर गया है और कौन मूर्छित है। ढूंढ़ते ढूंढ़ते जब दोनों जाम्बवान् के पास पहुंचे तब जाम्बवान् ने धीरे से आंख खोल कर विभीषण से पूछा—"क्या हनुमान् जीते हैं या मर गये?" विभीषण ने कहा -आपने और किसी वीर को नहीं पूछा—केवल हनुमान् ही को क्यों पूछा?" जाम्बवान् ने कहा—"यदि हनुमान् जीते हैं तो सभी के लिए चिन्ता नहीं है। यदि वे नहीं हैं तो सभीका रहना व्यर्थ है।" यह वचन सुनते ही हनुमान् ने जाम्बावान् के चरणों को छू कर प्रणाम किया। जाम्बवान् ने कहा—तुम संजीवनी औषधि लाकर सभीको जिलाओ। हनुमान् ने ऐसा ही किया। सभी अच्छे हो गये। फिर लक्ष्मण सचेत होकर मेघनाद से युद्ध करने लगे। मेघनाद आकाश में छिप कर बाणों की वर्षा करने लगा। लक्ष्मण ने क्रोध कर सभी राक्षसों को मारना प्रारम्भ कर दिया। रामजी ने कहा—ऐ लक्ष्मण, जो राक्षस भाग रहे हैं या शरण में आ गये हैं उन्हें मत मारो। देखो, शास्त्र में लिखा है कि—जो शत्रु, युद्ध करना छोड़दे, डर से छिप जाय, हाथ जोड़ कर प्रार्थना करे, शरण में आ जाय, भाग जाय, या पागल हो जाय, उसे नहीं मारना

चाहिए। जो शत्रु पीठ दिखा कर भाग जाता है उसे न मारना चाहिए। जो ऐसे को मारता है वह नरक में पड़ता है। लक्ष्मण ने कहा, अच्छा! मैं मेघनाद ही को मारने का यत्न करूंगा।

इसी समय मेघनाद ने माया की जानकी बना कर उन्हें रथ पर चढ़ा कर रामचन्द्र की सारी सेना के सामने उनका गला तलवार से काट दिया। हनुमान् ने कहा—स्त्री को मारना वीरों का काम नहीं है।" मेघनाद ने कहा—तुम लोग जिसके लिए आये हो उसीको मार डालना ठीक है। इसके बाद राम, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव तथा सारी सेना को मार डालूंगा।

सीता का मरना देख कर रामचन्द्र मूर्च्छित होकर गिर पड़े। लक्ष्मण ने उनको उठा कर छाती से लगा लिया और इस प्रकार समझाने लगे—ऐ राम! आप धर्म का आचारण करनेवाले और इन्द्रियों को वश करनेवाले हैं, इस लिए धर्म आपकी रक्षा नहीं कर सकता, क्योंकि धर्म निरर्थक है, उसमें कुछ फल नहीं है। स्थावर तथा जंगम सभी प्राणियों की अवस्था के अनुसार सुख है, किन्तु उनका धर्म तो किसीने नहीं देखा। इससे जान पड़ता है कि धर्म कोई पदार्थ ही नहीं है। यदि अधर्म कोई पदार्थ होता तो रावण नरक में चला जाता और यदि धर्म कोई पदार्थ होता तो आपके ऊपर विपत्ति नहीं आती। रावण पर कोई विपत्ति नहीं है और आपपर विपत्ति है, इससे जान पड़ता है कि धर्म करने से दुःख और अधर्म करने से सुख होता है। यदि सुख का साथी धर्म होता और दुःख का साथी अधर्म होता, तो आपपर दुःख नहीं आता और रावण पर सुख नहीं आता। संसार में भी

बहुधा यही देखा जाता है कि धर्मात्मा दुःखी और अधर्मात्मा सुखी रहते हैं। पापी लोग धनी होते हैं और पुण्यात्मा दरिद्र होते हैं; इससे जान पड़ता है धर्म अधर्म दोनों निरर्थक हैं। यदि कोई किसीकी हत्या करे और वह तुरतही मारा जाय तो वह अधर्म भी उसके साथ मर गया, तब फिर कौन उस अधर्म का भोग करेगा। फिर जिसके लिए जो पाप विहित है, जो पाप जिन जातियों का जातीय धर्म है (जैसे बाज आदि चिड़ियों के लिए दूसरी चिड़ियों को मार खाना और पासी, वधिक, आदि जातियों की जीवबध ही जीविका है) उनको पाप कैसे लगेगा ? इससे पाप, पुण्य की व्यवस्था भली भांति नहीं हो सकती। फिर जो अचेतन (पशु पक्षी आदि) हैं उनको ज्ञान न रहने के कारण पाप नहीं लग सकता। यदि सत्कर्म से उत्पन्न होनेवाला सुख ही है तो सत्कर्म करनेवालों को दुःख क्यों होता है ? किन्तु यदि आप दुःख पा रहे हैं तो कहना पड़ता है कि यह नियम ठीक नहीं है, या सत्य नहीं है। जो दुर्बल है और जो कोई काम नहीं कर सकता उसी को धर्मबल की आवश्यकता होती है। मर्यादारहित धर्म की कभी सेवा नहीं करनी चाहिए। बल और धर्म इन दोनों में बल ही बड़ा है; इसलिए धर्म का निरादर करके बल ही का अवलम्बन करना चाहिए। धर्म के सहारे कार्यसिद्धि की आशा नहीं रखनी चाहिए ; किन्तु बल के सहारे कार्यसिद्धि की आशा रखनी चाहिए। यदि आप सत्य के पक्षपाती हैं, इसलिए पिता का वचन सत्य करने के लिए बन में आये हैं, तो ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देना यह भी तो सत्य ही है। क्यों नहीं इसीका अवलम्बन करके राज्य

ले लिया ? पहले पिता दशरथ ने आपको राज्य देने के लिए कहा था; तो उसी वचन को सत्य समझ कर क्यों नहीं राज्य ले लिया ! यदि आप उस प्रथम वचन को सत्य मानते तो पिता का मरण और सीता का हरण भी न होता। यदि "सत्य वचन" ही आपका परम धर्म है और असत्य आपका शत्रु है, तो पिताही का वध क्यों न कर दिया, क्योंकि उनने पहले राज्य देने के लिए प्रतिज्ञा करके फिर नहीं दिया। क्या यह असत्य नहीं है ? यदि धर्म ही प्रधान होता तो विश्वरूप मुनि को मारकर इन्द्र यज्ञ न करते। पौरुष-युक्त धर्म ही शत्रु का विनाश करता है, इसलिए पौरुष ही प्रधान है। आपने राज्य का त्याग कर दिया, यह बहुत बड़ा अधर्म आप ने पहले ही कर दिया है। क्या आपको यह नहीं मालूम है कि सभी धर्म धन ही से किये जाते हैं ? जो दरिद्र है वह कोई धर्म नहीं कर सकता। धन बिना मनुष्य हतबुद्धि होकर अनेकों पाप कर डालता है। जो मनुष्य धन त्याग कर सुख पाने की इच्छा करता है, वह उसी सुख के पाने के लिए अनेक प्रकार के पाप भी करता है; तब अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं। जिसको धन है उसीके मित्र हैं, जिसको धन है उसीके बन्धु हैं, जिसको धन है वही पुरुष है, जिसको धन है वही पण्डित है, जिसको धन है वही बलवान है, जिसको धन है वही बुद्धिमान् है, जिसको धन है वही पराक्रमी है, और जिसको धन है वही गुणवान् भी है। ये सब दोष दरिद्रता से होते हैं। जिसको धन है उसके सभी पदार्थ अनु-कूल हैं। दरिद्र मनुष्य को सभी दुर्लभ हैं। आनन्द, काम, अहंकार, धर्म, क्रोध, शान्ति, इन्द्रियवशता ये सभी धनियों के लिए सुलभ हैं। धर्मात्मा लोगों के भी धन के बिना सब धर्म नष्ट हो जाते हैं।

वह धन आपके पास नहीं है। इसी लिए आपके दुर्दिन आगये हैं। आप राज्य छोड़ कर वन में चले आये और पिता का कहना मान लिया, इसीसे आपपर सारी विपत्तियां चली आईं। जो प्राणों से भी अधिक प्यारी सीता थी, उसको रावण ने हर लिया। अच्छा, इस समय जो कष्ट हुआ है वह मेघनाद की करनी से, इस कारण मैं मेघनाद का अवश्य वध करूंगा। ऐ नरश्रेष्ठ रामचन्द्र! आप क्यों पड़े हैं? उठिये, क्या आप अपने को नहीं जानते हैं कि आप कौन हैं? विचारवान् लोग आपको "परमात्मा" कहते हैं। इसी समय विभीषण आ पहुंचे। उनने कहा—एं! भगवान् की आज ऐसी दशा क्यों हो रही है? लक्ष्मण ने सब समाचार कह सुनाया। विभीषण ने कहा—मैं रावण का हृदय भली भांति जानता हूं। वह कभी जानकी को नहीं मार सकता। वह जानकी को प्राणों से भी अधिक प्रिय समझता है। वह सीता को देखने तक भी नहीं देता। मेघनाद ने माया की जानकी बनाकर वानरों को धोखा देने के लिए मारा है। ऐ रामचन्द्र आप शीघ्र आज्ञा दीजिये कि मैं लक्ष्मणजी को मेघनाद से युद्ध कराने के लिए रण में ले जाऊं। रामजी की आज्ञा पा कर लक्ष्मणजी विभीषण के साथ युद्ध में पहुंचे। वहां लक्ष्मण और मेघनाद में घोर युद्ध हुआ। मेघनाद ने विभीषण से कहा—ऐ अधम पितृव्य, तुमको अपनी जाति, कुल, प्रेम, भ्रातृभाव, धर्म, किसीका ध्यान नहीं है इसीसे तुम अपना पक्ष छोड़ कर दूसरेके दास बन गये हो। सज्जन लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे। निर्बुद्धि हो, इसी लिए यह नहीं जानते हो कि अपने कुटुम्ब में निवास करने तथा दूसरेके आश्रित रहने में

कितना भेद है। परजन गुणवान् हो तो भी अच्छा नहीं और स्वजन निर्गुण हो तो भी अच्छा ही है। जो अपना पक्ष छोड़कर पराये पक्ष में जा मिलता है वह अपने पक्ष के नष्ट हो जाने पर पराये पक्षवालों से मारा जाता है। जैसी नीचता तुमने की है वैसी नीचता अपने कुटुम्बवाला दूसरा करही नहीं सकता।

विभीषण ने कहा—बेटा! तुम्हारा कहना बहुत ठीक है, किन्तु तुमने अपने पिता को ऐसा क्यों नहीं समझाया? मैंने तुम्हारे पिता से धर्म ही का वचन कहा था, किन्तु उनने मेरा बड़ा निरादर करके घर से निकाल दिया। क्या एक भाई दूसरे भाई का कभी त्याग करता है? जो अधर्मी है पापी है, उसको त्याग देने ही में सुख है। जैसे जलते हुए घर को त्याग कर देना अच्छा है वैसे ही पराये धन के हरण करनेवाले तथा पराई स्त्री को हरण करने वाले मनुष्य को त्याग देने ही में सुख है। परधन तथा परस्त्री का हरण करना, और मित्रों पर विश्वास न रखना ये तीनों नाश के कारण हैं। महर्षियों का वध करना, सब देवताओं से विरोध करना, अहंकार; क्रोध, बैर और प्रतिकूलता, ये सब दोष मेरे भाई रावण में हैं, जिससे प्राण और धन दोनोंके नष्ट होने की सम्भावना है; इसीसे मैंने तुम्हारे पिता को छोड़दिया है। याद रक्खो, अब न लंका रहेगी, न तुम रहोगे, न तुम्हारा पिता रहेगा। तुम्हारा काल समीप आ गया है, जो इच्छा हो बको। अब लक्ष्मण से युद्ध कर प्राण-त्याग करो।

अब दोनों में घोर युद्ध होने लगा। मेघनाद ने बड़ी वीरता दिखलाई। उसकी वीरता देख सभी समझते थे कि मेघनाद ही

जातेगा, किन्तु लक्ष्मण ने ऐसी वीरता की जिससे मेघनाद मारा गया। लक्ष्मण ने अपने नीखे तीखे बाणों से विकल कर अंत में मेघनाद का सिर काट कर रामचन्द्र के आगे फेंक दिया जिसे देख रामजी बहुत प्रसन्न हुए। मेघनाद का मरना सुन कर रावण ने बड़ा विलाप किया। अन्त में शत्रु से बदला लेने के लिए वह बहुत बड़ी सेना लेकर रण में पहुंचा। रावण के समान वीर उस समय जगत् में कोई नहीं था। उसने सारे जगत् को जीत लिया था। दोनोंमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। सारा जगत् कांप उठा। रामजी सामने खड़े युद्ध कर रहे थे। लक्ष्मणजी भी उनकी बगल में खड़े हो कर बाण छोड़ रहे थे। रावण को लक्ष्मण पर बड़ा क्रोध था, क्योंकि इन्होंने उसके परम प्रिय पुत्र मेघनाद को मारा था। रावण ने एक बरछी उठा कर लक्ष्मण को छाती में मारी, जो उनको छाती पार हो गई। लक्ष्मण मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। रामजी उन्हें उठा गोद में रख कर बड़ी करुणा से विलाप करने लगे—ऐ मेरे प्रिय भाई लक्ष्मण, तुम्हारा स्वभाव बड़ा कोमल है। तुम कभी मुझे दुःखी देखना नहीं चाहते। तुमने मेरे ही लिए अपनी माता का त्याग किया। इसी वेश में मेरे साथ रहकर कठोर धूप, हवा और जाड़े को सहन किया है। जिस प्रेम से तुमने ये सब काम किये हैं वह प्रेम अब कहां है? मेरी विकलता तथा आर्त वाणी सुनकर क्यों नहीं उठते? यदि मैं जानता कि यहां तुमसे वियोग हो जायगा तो पिता का वचन मान कर वन में न आता। पुत्र, स्त्री, धन धाम, और सब परिवार तो सदाही होते जाते रहते हैं, पर जगत् में सहोदर भाई का

मिलना परम दुर्लभ है; किन्तु तुम तो सहोदर भाई से भी बढ़कर प्रेम करनेवाले हो। जैसे पखों के बिना पक्षी, मणि के बिना सर्प और शुण्ड के बिना हाथी दुखी रहते हैं वैसे ही मैं तुम्हारे बिना दुःखी रहता हूं। तुम्हारे बिना मेरा जीवन व्यर्थ है! अब मैं कौन सा मुंह ले कर अयोध्या में लौटूंगा? लोग मुझे क्या कहेंगे? सभी लोग यही कहेंगे कि राम ने स्त्री के लिए भाई को खो दिया है। यदि संसार में मेरी यह निन्दा हो जाती कि रावण ने जानकी को चुरा लिया, पर राम से कुछ न करते बना तो मैं सह लेता और स्त्री के नष्ट हो जाने से मेरी कोई विशेष हानि न होती; किन्तु भाई के नष्ट हो जाने का मुझे बड़ा खेद है। अब क्या करूंगा? विवश हो कर लोक-निन्दा और तुम्हारे वियोग का शोक दोनों सहूंगा; क्योंकि मेरा हृदय बड़ा कठोर है। तुम अपनी माता के बड़े पुत्र हो और उनके प्राणाधार हो। उनने तुम्हारा हाथ पकड़ कर तुमको मेरे हाथ में सौंपा था। उनको विश्वास था कि मैं (राम) तुम्हारा सब प्रकार भला चाहनेवाला हूं। अब मैं अयोध्या में जाकर उनको क्या उत्तर दूंगा? जब वे पूछेंगी कि मेरा प्रिय पुत्र लक्ष्मण कहां है तो मैं क्या कहूंगा? भाई. उठकर मुझे यही बतादो। इस जगत् में फिर जब तुम्हीं न रहोगे तो मैं राज्य लेकर क्या करूंगा? भरत तथा शत्रुघ्न भी यही कहेंगे कि जब आप लक्ष्मण के साथ वन में गये तो अकेले क्यों लौटे? मुझे यह नहीं जान पड़ता कि मैंने पूर्व जन्म में कौन सा ऐसा पाप किया है कि मेरा प्यारा भाई मेरे सामने ही मर गया। हा भाई! तुम कहीं अकेले नहीं जाते थे, फिर परलोक में कैसे अकेले चले गये? मुझे

साथ में क्यों नहीं लिया? क्या मेरी रुलाई तुम नहीं सुनते हो? उठो और मेरी दशा देखो। रण में मेरी सहायता करो, शत्रु को मारो और विजय प्राप्त करो। इस प्रकार राम जी विलाप करते थे और उनकी आंखों से जल का प्रवाह बहता चला जाता था। इसी समय हनुमान् जी संजीवनी जड़ी लेकर आ पहुंचे और सुषेण ने उन्हें पिलाया और नाक से सुंघाया जिससे वे उठ खड़े हुए। फिर राम जी नवीन उत्साह से रावण के साथ लड़ने लगे। राम ने क्रोध कर के प्रतिज्ञा की—मैं आज अवश्य रावण को मारूंगा अथवा मारा जाऊंगा। इस जगत् में आज रावण ही या मैं ही रहूंगा। दोनों एक साथ इस जगत् में नहीं रह सकते। राम और रावण में फिर परस्पर घोर युद्ध होने लगा। इस जगत् में बहुत सी लड़ाइयां हुईं, पर राम रावण के समान वीरता की लड़ाई न कभी हुई न होने की आशा है। राम ने लक्ष्मण से कहा—ऐ प्रिय भाई लक्ष्मण ! यदि तुम न जी उठते तो मैं ऐसे उत्साह से न लड़ सकता, या यों समझो कि मैं लड़ता ही नहीं। यदि तुम्हीं न रहते तो मुझे प्राण, सीता, या राज्य से ही कुछ भी प्रयोजन नहीं था। यदि तुम्हीं मर जाते तो मुझे जीने की क्या जरूरत थी। लक्ष्मण ने कहा—ऐ पूज्य भैया रामजी ! सत्यवादी लोग अपनी प्रतिज्ञा को कभी झूठी नहीं करते! प्रतिज्ञा का पालन करना ही बड़ों का लक्षण है। यदि आपने पहले ही रावण का नाश करने की प्रतिज्ञा की है तो उसे कैसे छोड़ेंगे? यह तो निर्बल का काम है कि अपनी प्रतिज्ञा का पालन न करे। मेरे लिए निराश होना

या उत्साह छोड़ना ठीक नहीं है। आप रावण का वध करके प्रतिज्ञा पालन करें। यदि आपका बाण लग जायगा तो कभी शत्रु जीता नहीं बचेगा। मैं तो यही चाहता हूं कि सूर्य्यास्त होने के पहले ही यह दुष्ट रावण मारा जाय। लक्ष्मण की बात सुनकर राम का उत्साह शतगुण हो गया। वे बड़े वेग से लड़ने लगे। राम ने क्रोध करके रावण से कहा—तुम वीर नहीं हो। मेरे परोक्ष में मेरी स्त्री को चुरा लेना वीरता का काम नहीं है, यह कापुरुष का काम है। पराई स्त्री का स्पर्श करना कायर का काम है। तुम निर्लज्ज हो, तुम्हारा चरित्र भ्रष्ट है। अहङ्कार से मृत्यु को लेकर अपनेको वीर समझते हो। तुमने कोई काम यश का नहीं किया है। अब तुम अपने सब कर्मों का फल पा जाओगे। तुम्हारे समान चोर अपनेको वीर नहीं समझ सकता। जिस समय तुमने सीता को चुराया उस समय यदि मैं तुम्हें देख पाता तो तुम्हारा शिर काट लेता। अच्छा! तब न हुआ तो अभी सही। अब तुम्हारे मांस को गीध खायेंगे। यह कह कर रामने असंख्य बाणों की वृष्टि की जिससे रावण घिर गया। उसने भी बड़ी वीरता दिखलाई और रामजी को विह्वल कर दिया; किन्तु रामजी ने उसके सारे परिश्रम व्यर्थ कर दिये और बाणों की ऐसी वृष्टि की कि रावण घायल हो मूर्च्छित होकर रथ पर गिर पड़ा। तब सारथि रथ को संग्राम से हटा कर घर ले चला। जब थोड़ी दूर रथ चला आया और रावण को होश हुआ तब वह क्रोध करके सारथी से कहने लगा— 'ऐ सारथि, तू बड़ा मूर्ख और कायर जान पड़ता है। मुझे मूर्च्छित देख मेरा

रथ रण से क्यों हटा दिया ? तूने बहुत दिनों से उपार्जित मेरे यश तथा बल को कलंकित कर दिया। जो मेरा परम प्रसिद्ध शत्रु है और वह मुझसे लड़ने के लिए तत्पर है, उसको मैं मारना चाहता हूं, तो भी तूने वहां से रथ हटा दिया। जान पड़ता है, मेरे शत्रु ने तुझे कुछ धन देकर अपनी ओर कर लिया है। सारथि ने कहा—ये सब बातें कुछ नहीं हैं, आपको मूच्छित देख कर मैं आप की प्राणरक्षा के लिए यहां ले आया। रावण ने कहा—नहीं, रथ रण में ले चलो, सारथी ने रथ को लेकर सेना के सामने खड़ा कर दिया। रावण पहुंचते ही राम जी पर बाणों की वर्षा करने लगा। रावण रथ पर चढ़कर लड़ता था और राम जी पैदल ही लड़ते थे, यह देख विभीषण अधीर होकर बोले, भगवन् ! रावण रथ पर है और आपके पास रथ नहीं है, फिर आप कैसे इस वीर शत्रु को जीतेंगे ? रामजी ने कहा,—ऐ मित्र ! जिस रथ से मनुष्य की संसार में जीत होती है वह रथ ही दूसरा है। वह रथ जिसके पास है वह केवल शत्रु ही को नहीं, किन्तु सारे संसार को जीत सकता है। वह एक रथ है जिसका नाम धर्म है, उसमें शूरता तथा धीरता ये दोनों चक्र (पहिये) हैं, सत्य तथा शील ये ध्वजा और पताका हैं। बल, विवेक, दम तथा परहित, ये घोड़े हैं, क्षमा, कृपा, तथा समता ये लगाम हैं, ईश्वर का भजन ही चतुर सारथी है, संसार से विराग ही ढाल है, संतोष ही तलवार है, दान ही फरसा (कुल्हाड़ी) है, बुद्धि ही बरछी है, शुद्ध विज्ञान धनुष है, निर्मल तथा स्थिर मन ही तरकस है, शम, यम, नियम, आदि अनेक प्रकार के बाण हैं, ब्राह्मण तथा गुरु की पूजा ही

अभेद्य कवच (बख्तर) है, ऐसा रथ जिसके पास है वह किसको नहीं जीत सकता। फिर जो संसार को जीतता है वही सच्चा वीर है। इसी समय इन्द्र ने अपना रथ रामजी के पास चढ़ने के लिए भेज दिया। उसपर चढ़ कर कई बार रामजी ने रावण की बीसों भुजाएं तथा दसों सिर काटे, पर वे फिर जम आये। अन्त में विभीषण ने बता दिया कि रावण के हृदय में अमृत है। रामचन्द्रजी ने एक ही बार एकतीस बाण फेंके जिनमें दस से दसों सिर, बीस से बीसों भुजाएं तथा एक से हृदय का अमृत नष्ट कर दिया। रावण के सिर पृथ्वी पर गिर पड़े। उनको गिरते देखते ही विभीषण को करुणा आ गयी। वे बड़े वेग से विलाप करने लगे कि ऐ रावण, राम से विमुख होने के कारण तुम्हारी यह गति हुई है। तुम्हारे कुल में अब रोनेवाला भी कोई बचा नहीं। सारा जगत् तुम्हारे वश में था। सब दिक्पाल तुम्हें डर से सिर झुकाते थे। अब तुम्हारे सिर और हाथ गीदड़ खा रहे हैं। रामजी ने विभीषण को समझाया कि ऐ विभीषण, तुम व्यर्थ विलाप मत करो। जो लोग क्षत्रियधर्म का पालन करते हैं वे यदि रण में वीरता से मारे जायं तो उनके लिए शोक करना ठीक नहीं है। रण में शत्रु के सम्मुख लड़कर मर जाने में वीरों की शोभा है। जिसने इन्द्र आदि सब देवताओं को जीत लिया था वह यदि कालवश होकर मरजाय तो उसके लिए विलाप नहीं करना चाहिये। आज तक किसीको विजय निश्चित नहीं रहती। वह कभी शत्रु को मारता है और कभी शत्रु से मारा जाता है। क्षत्रियों की यही गति निश्चित है। यदि क्षत्रिय युद्ध में मारा

जाय तो उसके लिए शोक करना ठीक नहीं है। यही सोचकर विलाप करना छोड़ दो और जो आगे करना है उसे करो। जब लंका में यह समाचार पहुंचा तब राक्षसियां वहां रोती दौड़ी आईं और विलाप करने लगीं । अन्त में रामजी ने सबको समझा बुझाकर शांत किया कि—देखो, रावण ने जैसा पाप किया वैसा फल पाया। शुभकर्म करनेवाला शुभफल और अशुभ कर्म करनेवाला अशुभ फल अवश्य पाता है। इसी कारण रावण ने मृत्यु पायी और विभीषण ने सम्पत्ति पायी। यदि रावण भी सीता को नहीं चुराता या चुराने के बाद भी विभीषण के धर्मवाक्यानुसार वर्ताव करता तो कभी इस दशा को नहीं पहुंचता । फिर रामजी ने विभीषण से कहा—अब स्त्रियों को शान्त करो और रावण का दाहादि संस्कार करो । विभीषण ने कहा—मैं इस पापी का संस्कार न करूंगा। राम ने कहा—इसमें गुण अवगुण दोनों थे। यह बड़ा गुणी भी था । इससे इसका निरादर मत करो । अवश्य सब संस्कार करो। विभीषण ने वैसा ही किया।

रामजी ने लक्ष्मण से कहा—ऐ लक्ष्मण ! अब विभीषण के साथ लंका में चले जाओ और शास्त्रविधि से विभीषण को राज दे दो। मैं तो अभी चौदह वर्ष के भीतर बस्ती में नहीं जाऊंगा; नहीं तो मैं खुद चलकर इस कार्य को पूरा करता। इसके हो जाने के बाद रामजी ने हनुमान् के द्वारा सीताजी के पास अपना सब समाचार कहला भेजा । सीताजी समाचार सुनते ही चुप हो गयीं। हनुमान् जी ने पूछा—ऐ माता, ऐसे आनन्द का समाचार

सुनकर भी तुम क्यों चुप हो ? जानकी ने कहा—मैं यही सोच रही हूं कि इस आनन्दसमाचार के बदले तुम्हें क्या दूं ? इसके बराबर का कोई पदार्थ ही नहीं देख पड़ता । हनुमान् ने कहा—तुम्हारी कृपा ही मेरे लिए सब कुछ है । यदि आज्ञा दो तो मैं इन राक्षसियों को मार डालूं जो तुम्हें दुख देती थीं । सीता ने कहा—दास-दासियों का काम आज्ञापालन करना ही है । इसलिए इन लोगों ने आज्ञापालन किया है । इनका कुछ दोष नहीं है । मैंने जैसा कर्म पूर्वजन्म में किया था वैसा फल पाया है । जो जैसा करता है वह वैसा फल अवश्य पाता है । जो हो, मैं इन्हें क्षमा करती हूं । ऋक्ष ने व्याघ्र से यह पुराणसम्मत वचन कहा है कि—यदि कोई मनुष्य अपने साथ अपराध करता है तो सन्त लोग उस अपराध का बदला उसको नहीं देते । अपकार का बदला अपकार देना नहीं है । सन्त लोगों का चरित्र ही भूषण है । जो पापी वध करने के योग्य हो उसपर भी बड़े लोगों को दया ही करनी चाहिए । किससे अपराध नहीं होता ? कभी न कभी सभीसे अपराध होता है । जो दुष्ट, क्रूर तथा पापी हैं वे सदा ही पाप किया करते हैं । उनके किये हुए पाप का दण्ड करना ठीक नहीं है, और उस दण्ड का कुछ फल भी नहीं होता ।

हनुमान् ने कहा—इस जगत् में रामचन्द्र की स्त्री होने के योग्य तुम्हीं हो । यह कह कर हनुमान् वहां से लौट आये । रामचन्द्रजी ने फिर हनुमान् से कहा—"ऐ हनुमान्, विभीषण के पास जाओ और उनसे कहो कि वे जानकी जी को स्नान करा

दिव्य वस्त्र भूषण धारण कराकर यहां ले आवें। हनुमान् के मुंह से संदेशा सुनकर विभीषण सीताजी को दिव्य वस्त्र भूषणों से सुसज्जित कर पालकी पर चढ़ाकर रामजी के पास ले चले। रास्ते में वानरों की इतनी भीड़ थी कि पालकी का आना कठिन था; इसलिए विभीषण की आज्ञा से चोपदार वानरों को हटाने लगे। रामचन्द्र ने क्रोध करके कहा—विभीषण, यह क्या कर रहे हो ? इससे मुझे बड़ा कष्ट होता है। ये सभी हमारे अपने आदमी हैं। घर, कोठे, या वस्त्रों से स्त्रियों का परदा नहीं होता। स्त्रियों का परदा शुद्ध चरित्र ही है। परदा आदि राजसी विभव है। विपत्ति में, रोग में, युद्ध में, स्वयंवर में, यज्ञ में और विवाह में स्त्रियों के दर्शन होने में कोई दोष नहीं है। इन समयों में स्त्रियों को परदे के बाहर चलने फिरने में भी कोई हानि नहीं है। इस समय जानकी विपत्ति में पड़ी हैं और वियोग के शोक से रोगिणी भी हो गयी हैं, इसलिए सबके सामने आने में कोई हानि नहीं है। फिर जहां मैं हूं वहां किस बात का डर है ? इसलिए जानकी जी को पालकी से उतारकर पैदल ही ले आओ जिससे सब वानर लोग उनको देखें। रामजी की आज्ञा से विभीषण ने वैसाही किया। जानकी राम के सामने आकर खड़ी हो गयीं। रामजी ने कहा—ऐ देवी जानकी, देखो, मैंने रावण को संसार में प्रतिष्ठा और तुम्हारे उद्धार के लिए मारा है। यह मेरा कर्तव्य है कि तुम मेरी स्त्री हो, तुम्हारे क्लेश छुड़ाने के लिए यथाशक्ति चेष्टा करूं, सो कर दिया; किन्तु मैं अब तुमको ग्रहण नहीं करूंगा। तुम बहुत दिनों तक दूसरे पुरुष के घर में रह चुकी हो। उसने तुम्हारे शरीर

को छू दिया है, और उसने तुमको पाप की दृष्टि से देखा है। यदि मैं तुमको अपने घर में रख लूंगा तो इस संसार के लोग क्या कहेंगे ? मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि तुम्हारी जहां इच्छा हो वहां चली जाओ। तुम्हारे लिए दसों दिशाएं खुली हैं। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, सुग्रीव, या विभीषण जिसके साथ इच्छा हो उसके साथ रहो। क्या रावण ने तुम्हारे इस अनुपम सौन्दर्य को देखकर धैर्य्य धारण किया होगा ?

जानकीजी यह कठोर वचन सुन कर बड़े वेग से रोने लगीं और क्रोध करके राम से बोलीं—ऐ वीर, तुम ऐसा कठोर वचन क्यों कह रहे हो जिससे मेरे कान फट रहे हैं ? तुम जैसी मुझे समझते हो मैं वैसी नहीं हूं ! मैं शपथ करती हूं, विश्वास करो ! मैं दूसरी स्त्रियों के समान साधारण नहीं हूं। रावण ने जो मेरा शरीर छू दिया उसमें मेरी इच्छा न थी, मैं विवश थी। दूसरा कोई मेरा शरीर छू सकता है, पर मेरा हृदय नहीं छू सकता। हृदय मेरे अधिकार में है, वह तुम्हारे ही चरणों में रहता है। तुम्हीं बताओ, उस समय मैं कर ही क्या सकती थी ? यदि त्याग ही करने की इच्छा थी तो हनुमान् को सुध लेने के लिए क्यों भेजा ? मैं उसी समय प्राण त्याग कर देती। तुमको व्यर्थ ही इतना परिश्रम करना पड़ा। तुमने मेरे वंश, पिता, जन्म, चरित्र, विवाह, भक्ति, शील आदि किसीपर ध्यान नहीं दिया। सभी पीठ के पीछे फेंक दिये। रामजी से ऐसा कह कर फिर उनने लक्ष्मण से कहा—ऐ लक्ष्मण ! तुम तुरत चिता सज दो, मैं उसी में प्रवेश कर शरीर त्याग करूंगी। लक्ष्मण ने वैसाही किया।

तब जानकी ने सिर झुका कर बैठे हुए राम की प्रदक्षिणा की और बोलीं—यदि मेरा हृदय रामजी से अलग न हुआ हो, तो ऐ लोक के साक्षी अग्निदेव, तुम मेरी रक्षा करना! मेरे पूज्य पति मुझे पापिनी समझते हैं, पर मैं यदि पापिनी न होऊँ तो मेरी रक्षा करना! मेरा वस्त्र, भूषण या शरीर कोई वस्तु न जले। ऐसा कह कर सीता चिता में घुस गयीं। सब लोग हाहाकार करने लगे। रामजी को भी दोनों आंखों से आंसू की धारा बहने लगी और सिर झुका कर सोचने लगे। उसी समय सब देवता आ पहुंचे। सब लोगों ने रामजी की ईश्वर के रूप में स्तुति की और प्रत्यक्ष रूप से कहा कि—आप जगदीश्वर और जानकी आद्या शक्ति हैं। उसी समय अग्नि देवता सीताजी को गोद में लेकर रामजी के सामने आखड़े हुए, और बोले—लीजिये अपनी स्त्री को। इनमें कोई पाप नहीं है! इनका मन, वचन, कर्म सभी आपही में लीन हैं। अब इनको कठोर वचन न बोलियो। ये स्वयं पवित्र हैं, ये चाहें तो त्रिभुवन को पवित्र कर सकती हैं। राम ने कहा—आप का कथन सत्य है, मैं भी सीता का चरित्र भली भांति जानता हूं; किन्तु मैंने यह सब, संसार को दिखलाने के लिए और लोकनिन्दा से बचने के लिए किया है। ऐसा कह कर जानकीजी को अपने वाम भाग में बैठा लिया और मधुर वचनों से उनके तप्त हृदय को शीतल किया। इसके अनन्तर विभीषण ने कहा—ऐ कृपा-निधे राम! आप कृपा कर के कुछ दिनों तक इस दास की नगरी लंका में चल कर निवास कीजिये। रामजी ने कहा—ऐ प्रिय मित्र

विभीषण, यदि मैं ठीक समय पर अयोध्याजी में न पहुंच जाऊंगा तो भरत जीते न रहेंगे, इस लिए मैं अब शीघ्र जाऊंगा। फिर पुष्पक विमान पर चढ़ कर रामजी, सीता, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव, हनूमान् आदि को लेकर अयोध्या की ओर चले। जब अयोध्या कुछ दूर रह गयी तब रामजी ने हनुमान् को भरत के पास समाचार लेने के लिए भेजा और कहा—ऐ हनुमान! तुम वहां जाकर उनसे मेरे आने का समाचार कहो, और उनके मन का भेद लो कि वे हमारे आने से प्रसन्न हैं या नहीं। भरत ने चौदह बरसों तक अयोध्या का राज्य किया है, अब उनको उस राज्य में स्नेह हो गया है। यदि वेही इस राज्य को भोगना चाहते हों तो मैं फिर पंचवटी या चित्रकूट में निवास करूंगा और वहीं तप करके अपना जावन विताऊंगा। इस संसार में कौन ऐसा मनुष्य है जिसका मन यह राज्य न बदल दे? जिस राज्य में इतने हाथी, घोड़े, रथ सिपाही, अन्न, वस्त्र, और भूषण हैं उस राज्य को कौन छोड़ना चाहेगा? हनु-मान् रामजी की आज्ञा पाकर भरत के पास पहुंचे। समाचार सुनकर आनन्द से परिपूर्ण हो कर भरत ने कहा—"यह गाथा सत्य है कि जो जीता है वह कभी न कभी अवश्य सुख पाता है।" इसके बाद सब समाचार कह सुनकर हनुमान रामजी के पास पहुंचे। भरतजी भी सुनते ही दौड़े। रामजी भरत को आते देख विमान से नीचे उतर गये। भरत जो रामजी के चरणों पर गिर कर रोने लगे। रामजी ने भरत को उठाकर छाती से लगा लिया। उस समय का मिलन देख सुग्रीव और

विभीषण को बड़ी लज्जा हुई जिससे वे दोनों रोने लगे कि ये भरतजी भी एक भाई ही हैं जिनने अपने भाई के लिए सारा राज्य तृण के समान त्याग कर विराग धारण कर तपस्वो का रूप धारण कर लिया; इनके प्रेम की सोमा नहीं हैं। और हम लोग भी भाई ही हैं जिन लोगों ने अपने अपने भाइयों का दूसरेके हाथ बध करवाथा। अन्त में रामजी राजभवन में पहुंचे। कौशल्या सुमित्रा, कैकेयी आदि माताओं को प्रणाम कर के दूसरे सभी बंधु बान्धवों से मिले। रामजी से मिलने के समय कैकेयी बहुतही लज्जित हुई, किन्तु रामजी ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया। राम के बराबर उदार कौन होगा १ जिस कैकेयो के कारण रामजी को इतने कष्ट सहने पड़े उसी कैकेयी का रामजी ने अपनी माता से भी बढ़ कर सत्कार किया। कारण यह कि सज्जन लोग पराये द्रोह का स्मरण नहीं रखते। भरतजी ने रामजी से प्रार्थना की— ऐ भगवन, रामचन्द्र ! यह राज्य मेरे पास रक्षा के लिए रखा हुआ था, उसे अब आप ले लीजिये। यह आप ही की वस्तु है। आज मेरा जन्म सफल हो गया कि—आपको आज आयोध्या में देख रहा हूं। मेरा मनोरथ भी सिद्ध हो गया। अब अपने कोष गृह, सेना, अन्न और भवन को देख लीजिये। आपके प्रताप से मैंने सबको दशगुण कर दिया है। मैंने माताओं की भी पूरी सेवा की है। आपने मेरी माता कैकेयो की प्रतिष्ठा कर के यह राज्य मुझे दिया था। अब मैं इसे आपको लौटा देता हूं। यह राज्य आपही का है। इसका बोझ अब मुझसे नहीं उठ सकता। जैसे गदहा घोड़े के समान नहीं चल सकता, तथा

कौआ हंस की चाल नहीं चल सकता, वैसे ही मैं आपके समान राज्य का शासन नहीं कर सकता। इसलिए अब आप राजा बन कर अयोध्यावासियों को सुखी कीजिये।

रामजी ने कहा—जिसमें तुम्हारी प्रसन्नता हो मैं वही करने के लिए तैयार हूं। अन्त में शुभ समय स्थिर कर के रामजी को राज्यतिलक दिया गया। पहले राम को सुवर्ण-मय पीठ (पीढ़े) पर बैठा कर तीर्थजलों से स्नान कराया गया। उसके बाद सुवर्ण-सिंहासन पर बैठा कर वशिष्ठजी ने उनके ललाट में केसर का तिलक लगाया और उनके सिर पर वह रत्नजटित मुकुट पहराया जिसको ब्रह्मा ने राज्यतिलक के समय मनु के सिर पर पहराया था। इसके बाद रामजी के सिंहासन पर बायों ओर जानकोजी भी महारानियों के संस्कार से अभिषेक कराकर बैठायी गयीं। सिंहासन के पीछे भरतजी श्वेतछत्र लेकर, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न श्वेत चामर लेकर, और विभीषण तथा सुग्रीव सुवर्ण रचित व्यजन (पंखा) लेकर खड़े हुए। उस समय रामजी ने प्रसन्न हो कर जानकी जी को स्वर्गीय भूषण तथा वस्त्र दिये। इसी प्रकार तीनों भाइयों का भी भूषण वस्त्रों से प्रेम तथा आदरपूर्वक सत्कार किया। इसके अनन्तर सुग्रीव को दिव्यमाला, अंगद को बहु भूषण, विभीषण को मुकुट, तथा हनुमान को कुण्डल दिये। फिर रामजी ने जानकी जी को एक हार दिया और कहा—"जिस पर सबसे अधिक तुम्हारी कृपा हो उसको यह हार देदो।" जानकी जी ने तुरत ही वह हार हनुमान्जी को दे दिया। इसी प्रकार

रामजी ने यथायोग्य सबका सत्कार किया। इसके बाद सब लोग अपने अपने घर गये। तब रामजी ने लक्ष्मण जी से कहा—'तुम युवराज बन कर राजकाज में मेरी सहायता करो।" लक्ष्मणजी ने इस पद को स्वीकार नहीं किया, तब रामजी ने भरतजी को युवराज बना दिया। भरत जी को युवराज बनने की इच्छा तनिक भी न थी, किन्तु उनने रामजी की आज्ञा का पालन करना आवश्यक समझ कर इस पद को स्वीकार कर लिया। रामजी ने अपने राज्यशासन समय में दश अश्वमेध यज्ञ किये। उनका सुखमय शासन देख प्रजा उनकी बड़ी भक्ति करती थी और सदा उनके अभ्युदय के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती थी। उनके राज्यकाल में कभी दुर्भिक्ष न होता था, कभी महामारी न होती थी, कभी आग न लगती थी, कभी अतिवृष्टि या अनावृष्टि न होती थी। चारों वर्ण अपने २ धर्म पर रहते थे। उनके राज्य में चोर डाकू लम्पट, निन्दक, रोगी, अल्पायु, धर्मविहीन, बुद्धिहीन, दरिद्र, जुआरी, मद्यप, हिंसक, असत्यवादी वा वेदनिन्दक कोई नहीं था। सभी आदर्श-चरित्र थे। ऐसा उत्तम राज्यशासन किसी काल में भी न हुआ, न है और न होने की आशा ही है।

———
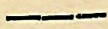
उत्तर काण्ड।

रामचन्द्रजी राज्यसिंहासन पर बैठकर राज्यशासन करने लगे। उनका शासन जगत् के लिए आदर्श था। प्रजा को प्रसन्न रखना ही उनका मुख्य उद्देश्य था। वे सदा दूतों को भेजकर प्रजा के मन का हाल जाना करते थे। एक दिन रामचन्द्र ने भद्र नामक अपने दूत से पूछा, ऐ भद्र ! मेरे राज्यनिवासी समस्त प्रजावर्ग मेरे विषय में क्या कहते हैं ? भरत, लक्ष्मण शत्रुघ्न, या सीताजी के विषय में उनका क्या विचार है ? वे किसकी प्रशंसा करते हैं और किसकी निन्दा करते हैं ? मैं चाहता हूं कि मेरे हाथ से कोई अनुचित कार्य न हो। कारण यह कि यदि मैं अनुचित कार्य करूंगा तो सारी प्रजा देखादेखी वैसा ही अनुचित कार्य करेगी, क्योंकि जो राजा करता है वही प्रजा भी करती है। भद्र ने कहा—ऐ महाराज ! आपको कोई निन्दा नहीं कर सकता। सभी आपकी प्रशंसा करते हैं; किन्तु इतना तो सब लोग कहते हैं कि—रामचन्द्र के समान धर्मात्मा और वीर राजा कोई न होगा, किन्तु सीता पर इनका कैसा प्रेम है कि जिस सीता को रावण ने वर्सों अपने घर में रखा उसीको बुला कर इनने फिर अपने राजभवन में रख लिया। क्या रामजी को इस बात से घृणा नहीं है ?

यह वचन सुनते ही रामचन्द्रजी को बड़ा शोक हुआ। उनने निश्चय कर लिया कि इसके लिए जो हो, मेरा प्राण ही क्यों

न नष्ट हो जायं किन्तु मैं जानकी का अवश्य त्याग करूंगा। यह सोचकर राम ने लक्ष्मण को बुलाकर कहा—हे लक्ष्मण, मेरे सारे राज्य के लोग मेरी निन्दा करते हैं कि राम ने सीता को घर में रख लिया जो बहुत दिनों तक रावण के घर में रही। मैं इस निन्दा को सहन नहीं कर सकता। जिसकी निन्दा होती है वह नरक में पड़ता है। जगत् में कीर्त्ति की स्तुति और अकीर्त्ति की निन्दा होती है। बड़े लोग कीर्त्ति ही के लिए सब कार्य करते हैं। मैं अपनी कीर्त्ति रक्षा के लिए अपना प्राण भी त्याग कर सकता हूँ। कीर्त्ति के लिए स्त्री, भाई, बन्धु, सारा राज्य भी छोड़ सकता हूं। इस समय मैं बड़े शोकसमुद्र में डूब रहा हूं। मैं जानता हूं कि सीता परम पवित्र हैं, किन्तु मैं अब सीता को अपने घर में नहीं रख सकता। जब सब लोग उनको शुद्ध नहीं समझते हैं तब मेरा शुद्ध समझना किस काम का? जो हो, मैं अब सीता का अवश्य त्याग करूंगा। उनने मुझसे एक बार और तपोवन देखने की इच्छा प्रगट की है। तुम इसी बहाने उनको गंगा के उस पार वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में छोड़ आओ। वहां वे मुनिवृत्ति से रहकर किसी प्रकार अपना जीवन व्यतीत कर लेंगी।

यह वचन सुनते ही लक्ष्मण के सिर पर मानो वज्रपात हो गया; किन्तु राम की आज्ञा वे टाल नहीं सकते थे। इसलिए उनने प्रातःकाल होते ही जानकी को रथ पर चढ़ा, गंगापार करके वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में पहुंचा दिया। वहां जाकर उन्होंने जानकीजी से कह दिया कि "ऐ जानकी, रामचन्द्र जी ने लोकनिन्दा के डर से तुम्हें त्याग कर दिया है; अब तुमको

इसी आश्रम में रहकर अपना समस्त जीवन व्यतीत करना पड़ेगा।" यह वचन सुनते ही जानकी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। लक्ष्मण ने सचेत किया, तब वह बड़ी करुणा से विलाप करने लगीं कि—ऐ लक्ष्मण ! ब्रह्मा ने मुझे दुःख ही भोगने के लिए जन्माया है। मैं नहीं जानती कि किस पाप से मुझे पतिवियोग का दुःख सहन करना पड़ा ? मैं कैसे पति के बिना जीवन बिताऊंगी ? जो हो, चाहे रामजी ने त्याग ही किया तो क्या, मैं उन्हें छोड़ कभी दूसरेमें भक्ति या प्रीति नहीं कर सकती। स्त्रियों के लिए पति ही देवता, गुरु, भाई, बन्धु, और धन सब कुछ है। इसलिए पति को प्राण से भी अधिक प्रिय समझना चाहिए। स्त्री का जन्म अधम है। वह जिसकी कन्या होती है उसे भी दुःख पहुंचाती है। कन्या का पिता होना भी पाप का लक्षण है। कन्या दोनों कुलों को सदा सन्देह में डाले रहती है। स्त्रीजन्म को कोटि धिक्कार है !

लक्ष्मण, सीता को प्रदक्षिणा तथा प्रणाम कर रोते रोते घर लौट आये। जानकी भी अनाथ हो कर उसी आश्रम में बड़े ऊंचे स्वर से रोने लगीं। इसी समय वाल्मीकि मुनि के शिष्यों ने इन को देखा और वाल्मीकि मुनि से सब समाचार कह कर सुनाया। वे मुनि यहां आये। उनने जानकी को पहचाना और अपने आश्रम में लाकर उन्हें शिक्षापूर्ण वचनों से धैर्य दिया।

फिर अपनी चेली मुनिकन्याओं तथा ऋषिपत्नियों को बुलाकर कहा—देखो, ये रामजी की पत्नी, महाराज दशरथ की पुत्रवधू

तथा योगिराज जनक जी की कन्या हैं, इनको अपनी भगिनी तथा पुत्र से भी अधिक प्रिय समझना । ऐसा ही सदा यत्न करना जिसमें इनको किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे । कुछ दिनों के बाद जानकी के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए । उनका सब संस्कार वाल्मीकि ने विधिपूर्वक किया । बड़े का नाम 'कुश,' और छोटे का नाम 'लव" रखा । दोनों जब कुछ बड़े हुए तब वेदाध्ययन कराया और अपने रचित वाल्मीकीय रामायण का गान स्वर ताल के सहित शास्त्रानुसार सिखलाया । जिस समय वे दोनों गाने लगते थे, उस समय मुनियों तथा मुनिपत्नियों एवं मुनि-कन्याओं की भीड़ लग जाती थी । सभी मुक्त कण्ठ से इन दोनों की प्रशंसा करते थे । यह गान सुन कर तथा उन दोनों का सौन्दर्य एवं शील, स्वभाव देखकर सीता का दुःख बहुत कम हो गया । जब रामजी ने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया तब समस्त ऋषि, मुनि, राजे महाराजे, याचक, भांट, भिखारी आदि सभी का निमन्त्रण किया । वाल्मीकि भी उन दोनों बालकों को लेकर रामजी के यज्ञ में उपस्थित हुए । वहां भी उन दोनोंने बड़े मधुर स्वर से रामायण का गान किया । रामजी सुन कर बहुत प्रसन्न हुए और उन दोनोंको अठारह हज़ार अशर्फियां देने के लिए खजाञ्ची को आज्ञा दी । उन दोनोंने कहा—हमलोग ऋषिकुमार हैं । द्रव्य लेकर क्या करेंगे ? इसी बीच वाल्मीकि जी भी वहां आ पहुंचे । उनने रामजी से सब समाचार कहा और जानकी को फिर ग्रहण करने के लिए प्रार्थना की । फिर यह भी कहा कि मैं अपने सम्पूर्ण तप की शपथ करता हूं,

जानकी सब प्रकार शुद्ध हैं। वाल्मीकि का वचन सुनकर रामजी के मन में हर्ष तथा विषाद दोनों उत्पन्न हुए। सबकी अनुमति लेकर रामजी ने ऋषि से कहा—यदि यही बात है तो जानकी जी अपनी शुद्धता का प्रमाण सबके सामने प्रगट करें।

वाल्मीकि की आज्ञा से जानकी सभा के बीच आ खड़ी हुईं और बड़े ऊंचे स्वर से रामजी की ओर मुंह करके बोलीं—

"हे देवी पृथिवी, यदि मैंने रामजी को छोड़ दूसरे पुरुष को मन से भी स्मरण न किया हो तो मुझे अपने हृदय में स्थान दो। यदि मैंने मन से, वचन से और कर्म से केवल राम ही की भक्ति की हो तो मुझे अपने हृदय में स्थान दो।" सीता के मुंह से यह वचन निकलते ही सभा के बीच की पृथिवी फट गयी और सीताजी उसीके बीच घुस गयीं। सब लोग हाहाकार करने लगे। रामजी की आंखों से आंसू का प्रवाह बहने लगा। वाल्मीकि ने कहा—ऐ राजा राम! आप बुद्धिमान् पुरुष हैं, आप को किसी बात का शोक नहीं करना चाहिए। काल की गति ऐसी ही है। जिसकी ढेरी लगती है उसका नाश भी होता है। जो ऊंचे चढ़ता है वह नीचे भी गिरता है, जिसका संयोग होता है उसका वियोग भी होता है, जिसका जन्म होता है उसका मरण भी होता है। इसलिए पुत्रों, स्त्रियों, मित्रों और धनों में प्रेम न करना चाहिए। इन सबों से वियोग होना निश्चित है। यह वचन सुन कर रामचन्द्र ने आंसुओं को पोंछ डाला, पर वे सीता के बिना सारे संसार को सूना ही समझते थे। किसी विषय में उनका चित्त न लगता था। उनने अपना पुनर्वि-

ब्याह भी न किया। सहस्रों यज्ञ किये, किन्तु सभी यज्ञों में जानकी जी की सुवर्ण-प्रतिमा बना कर ही अपने साथ रखते थे। इसी प्रकार उनने अपने यज्ञों को समाप्त किया। इसी प्रकार धार्मिक, सामाजिक तथा नैतिक कार्य करके रामजी अपने भाइयों के साथ समय व्यतीत करते थे। कभी कभी वे भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, कुश, लव तथा हनुमान् को लेकर पुष्पवाटिका में जा बैठते थे और सबको धर्मोपदेश दिया करते थे।

एक दिन रामजी ने उन लोगों से कहा—तुम लोग ध्यान देकर सुनो, मैं संतों (सज्जनों) तथा असंतों (असज्जनों) के लक्षण कहता हूं। संतों का आचरण चन्दन के समान और असंतों का आचरण कुल्हाड़ी (टांगी) के समान होता है। कुल्हाड़ी चन्दन को काट डालती है, पर चन्दन अपना गुण (सुगन्ध) चारों ओर फैलाता है। इसीसे चन्दन सब देवताओं के सिर पर चढ़ता है और सब लोग उसका आदर करते हैं, किन्तु कुल्हाड़ी आग में तपायी जाती है और लोहे के हथौड़े से पीटी जाती है। सन्त लोग बड़े शीलवान, पवित्र-चरित्र और परनारी-विमुख होते हैं। पराये दुःख से दुखी, तथा पराये सुख से सुखी होते हैं। उन्हें किसीसे शत्रुता नहीं होती, उनके मन में अहंकार नहीं होता, संसार से उन्हें विराग रहता है। उनके मन में लोभ, डाह, आनन्द भय, आदि कुछ भी नहीं रहता। उनका चित्त कोमल होता है; वे दीनों पर दया करते हैं। मन, वचन तथा कर्म से भगवान के दास होते हैं। वे निष्कपट होते हैं, और सबकी प्रतिष्ठा करते हैं।

किन्तु अपने को प्रतिष्ठित नहीं समझते। मैं उन्हे प्राणों के समान प्रिय समझता हूं। उनके चित्त में काम का लेश भी नहीं रहता। वे सदा मेरा ही नाम जपा करते हैं। उनके मन में शान्ति, विराग, विनय, तथा आनन्द परिपूर्ण रहता है। नम्रता, कोमलता, मित्रता, ब्राह्मण के चरणों में प्रीति आदि शुभ गुण तथा शम, दम, नियम, नीति, उनके हृदय में विराजती हैं। वे कभी कठोर वचन नहीं बोलते। वे निन्दा तथा स्तुति को बराबर समझते हैं। जिनमें ये सब गुण विद्यमान रहते हैं वे सन्त कहलाते हैं। सुनो, अब असन्तों के लक्षण बताता हूं। भूल कर भी कभी असन्तों का संग न करना चाहिए। वे दूसरेकी संपत्ति देख जला करते हैं। यदि वे किसीकी निन्दा सुनते हैं तो ऐसे प्रसन्न होते हैं जैसे उनको किसीका खजाना ही मिल गया। वे काम, क्रोध, लोभ, तथा मद से भरे रहते हैं। वे कपटी, निर्दय, मलिन और दुष्ट होते हैं। बिना कारण सबसे विरोध करते हैं। जो भलाई करता है उसकी भी बुराई करते हैं। उनका लेना, देना, खाना, पीना, सब झूठ ही से भरा है। उनका वचन मीठा, पर हृदय बड़ा कठोर होता है। वे पराये से द्रोह करनेवाले, परायी स्त्री से प्रेम करनेवाले, पराया धन चाहनेवाले, परायी निन्दा करने वाले हैं, वे नीच पाप से परिपूर्ण हैं। मनुष्य का रूप धारण किये हुए राक्षस हैं। उनका खाना, पीना, ओढ़ना, बिछौना सब लोभमय है। वे सदा भोजन और संभोग में लीन रहते हैं। यदि वे किसीकी प्रशंसा सुनते हैं तो ऊंची सांस लेते हैं, जैसे शीत-ज्वर आया है। वे दूसरेकी विपत्ति देख कर सुखी हो जाते हैं,

मानो वे कहीं के राजा हो गये। वे अपनी ही भलाई चाहते हैं। सब परिवार से विरोध करते हैं। वे लंपट, कामी, लोभी, तथा क्रोधी होते हैं। वे पिता माता, गुरु, या विप्र किसीको नहीं मानते। वे अज्ञानतावश पराया द्रोह करते हैं। उन्हें संतों का संग तथा भगवान् का भजन अच्छा नहीं लगता। संसार के सब अवगुण उन्हींके शरीर में निवास करते हैं। वे सदा वेद की निन्दा करते हैं। वे सदा ब्राह्मण, देवता, तथा गुरु से द्वेष करते हैं। जिनमें ये सब अवगुण होते हैं वे असन्त कहलाते हैं। ऐसे अधम मनुष्य सत्ययुग तथा त्रेतायुग में नहीं होते हैं। द्वापर में कहीं कहीं होते हैं; किन्तु कलियुग में बहुत होते हैं। फिर सुनो और याद रखो। परोपकार से बढ़ कर दूसरा धर्म नहीं है और पर-पीड़ा से बढ़ कर दूसरा कोई पाप नहीं है। जो मनुष्यशरीर धारण कर दूसरेको दुःख देते हैं वे महा घोर नरक में पड़ते हैं। अज्ञानतावश सब लोग पाप करते हैं। उनका परलोक नष्ट हो जाता है। मैं उन पापियों का काल-स्वरूप हूं। मैं ही शुभ तथा अशुभ फल देनेवाला हूं। जो चतुर हैं वे संसार को दुःखमय समझ कर केवल मेरा ही भजन करते हैं। जो शुभाशुभ कर्म का त्याग कर के निष्काम होकर मेरा भजन करते हैं वे ही मोक्ष पाते हैं।

इसी प्रकार रामजी सदा उपदेश दिया करते थे। एक दिन रामजी अपने भाइयों के साथ सभा में आ बिराजे। सब मंत्रियों तथा प्रजावर्गों को बुला कर यथास्थान बैठाया। जब सब लोग सावधान हो गये तब रामचन्द्रजी ने कहा—हे मेरे प्रियवर्गो!

मैं कुछ अभिमान, अनीति या प्रभुता की बात नहीं कहता। तुमलोग ध्यान देकर सुनो, यदि अच्छा जान पड़े तो करो। मेरा वही सेवक परम प्यारा है जो मेरी आज्ञा मानता है। यदि मैं कुछ अनुचित कहूं तो भय छोड़ कर कहना। बड़े भाग्य से मनुष्यशरीर मिलता है। यह बड़ा दुर्लभ शरीर है। जो मनुष्य-शरीर पाकर मोक्षसाधन नहीं करता वह परलोक में जाकर सिर पीटकर पश्चात्ताप करता है। आप तो साधन नहीं करता, किन्तु दुःख पड़ने पर काल, कर्म तथा ईश्वर को व्यर्थ ही दोष देता है। इस शरीर का फल विषयसुख नहीं है; थोड़े दिनों के लिए स्वर्ग भी अन्त में दुःखदायी होता है। जो मनुष्य शरीर पाकर विषयसुख में मन देते हैं वे अमृत को देकर विष लेते हैं। उसको कोई अच्छा नहीं समझता जो पारसमणि देकर गुंजा (घुंघची) लेता है। यह जीव अविनाशी है, पर निज कर्मानुसार चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता है। इस जीव में माया लपटी रहती है, इसीलिए काल, कर्म के वश होकर यह सदा भ्रमण किया करता है। ईश्वर कभी दया करके मनुष्य-देह देता है। यह संसार समुद्र के समान है। नरतन नौका के समान है। मेरी कृपा अनुकूल वायु है। गुरु कर्णधार है। ऐसा सुलभ समाज पाकर जो नर संसारसमुद्र से पार नहीं हो जाता वह नर कृतघ्न, मूर्ख तथा आत्मघाती है। यदि तुम लोग इसलोक या परलोक में सुख चाहते हो तो मेरा वचन दृढ़ता के साथ अपने हृदय में रखो। सबसे सुलभ तथा सुखद मार्ग, मोक्ष का यही है कि मेरे चरणों में सच्ची भक्ति करो।

भक्ति ही अत्यन्त सुलभ पथ है। ज्ञानमार्ग बड़ा कठिन है। बड़े कष्ट से ज्ञानी ज्ञान पाता है, किन्तु वह भक्त के समान मेरा प्रिय नहीं है। भक्ति सब सुखों की खानि है, किन्तु वह बिना सत्संग के नहीं मिलती। बिना पुण्य के सत्संग नहीं मिलता। सत्संग से संसार का अन्त होता है। सबसे बड़ा पुण्य मन, कर्म तथा वचन से शुद्ध ब्राह्मणों के चरणों की पूजा ही है। जिसपर देवता लोग प्रसन्न रहते हैं वही कपट छोड़कर ब्राह्मणों की सेवा करता है। एक गुप्त बात और भी कहता हूं, सुनो। बिना शिवजी की भक्ति के, मेरी भक्ति कोई नहीं पा सकता। योग, यज्ञ, जप, तप, तथा उपवास में बहुत कष्ट है, किन्तु भक्ति में कुछ कष्ट नहीं है। भक्तों को अपना स्वभाव कोमल रखना चाहिए, जो मिले उसीसे संतोष करना चाहिए। मेरा भक्त कहाकर जो दूसरेकी आशा करता है वह सच्चा भक्त नहीं कहा सकता। मैं बहुत कहां तक कहूं ? इसी आचरण से मैं वश में रहता हूं। जो किसीसे विरोध नहीं करता, किसीकी आशा नहीं रखता, किसीसे नहीं डरता, जो सदा सुखी रहता है, जो पापरहित है जो क्रोध नहीं रखता, जो चतुर है, जो विज्ञानी है, जो सज्जनों में प्रीति रखता है, जो तृण के समान संसारसुख स्वर्गसुख, तथा मोक्षसुख का त्याग कर देता है, जो सब तर्क वितर्क छोड़कर भक्ति-पक्ष का अवलम्बन करता है, मेरा गुण गान करता है, मेरा नाम जपता है, और जो ममता, मद, मोह आदि विकारों का त्याग कर देता है, उसका सुख वही जानता है; दूसरा नहीं जान सकता।

एक बार वशिष्ठजी रामजी के पास आये। रामजी ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया, उनकी नम्रता देख वशिष्ठजी बहुत प्रसन्न हुए। उनने कहा—मैं तुमको जानता हूं, तुम परमेश्वर हो, तुम्हीं साकार ब्रह्म हो। जो पुण्य, जप, तप, नियम, योग, ज्ञान, दया, इन्द्रियों को वश में रखना, तीर्थों में स्नान करना, वेदपाठ, पुराणश्रवण, शास्त्राध्ययन, तथा दूसरे शुभ कर्म करने से होता है वह पुण्य केवल तुम्हारे चरणों की भक्ति ही करने से प्राप्त हो जाता है। सब साधनों का यही फल है कि तुम्हारे चरणों में भक्ति हो। मल से धोने से मल साफ नहीं हो सकता, पानी मथने से घी नहीं निकल सकता। तुम्हारी भक्तिरूपिणी जलधारा के विना हृदय के भीतर का मल कभी शुद्ध नहीं हो सकता। वही सर्वज्ञ है, वही तत्वज्ञ है, वही पण्डित है, वही गुणी है, वही ज्ञानी है, वही चतुर है, वही शुभलक्षण है और वही दूरदर्शी है, जो तुम्हारे चरणों में सच्ची भक्ति करता है। मैं तुमसे यही वर मांगता हूं कि तुम्हारे चरणों में मेरी अचल भक्ति हो। जो तुम्हारा चरित सुनने में चित्त नहीं देते वे कुछ रस नहीं जानते। जीवन्मुक्त भी तुम्हारा चरित सुन कर प्रसन्न हो जाते हैं। जो संसारसमुद्र के पार जाना चाहें वे तुम्हारा चरित मन लगा कर सुनें। कौन ऐसा कान-वाला मनुष्य है जिसको तुम्हारी कथा नहीं सुहाती? जो तुम्हारा चरित नहीं सुनते वे आत्मघाती हैं। हजारों मनुष्यों में एक ही मनुष्य धर्मात्मा होता है। हजारों धर्मात्माओं में एक ही धर्मात्मा संसारसुख से विमुख तथा विरागी होता है। हजारों विरागियों में एक ही विरागी पूर्णज्ञानी होता है, हजारों पूर्णज्ञानियों में एक

हो पूर्णज्ञानी जीवन्मुक्त होता है। हज़ारों जीवन्मुक्तों में एक ही जीवन्मुक्त ब्रह्मलीन होता है। उन हज़ारों में एक ही तुम्हारा भक्त होता है; सबसे दुर्लभ तुम्हारी ही भक्ति है।

योंही एक दिन फिर रामचन्द्रजी ने अपने भाइयों को बुला कर यह उपदेश दिया कि—अज्ञान किसको अंधा नहीं बनाता ? काम किसको नहीं नचाता ? तृष्णा किसको पागल नहीं बनाती ? क्रोध किसका हृदय नहीं जलाता ? लोभ किसको नहीं चंचल करता ? धन किसको घमंडी नहीं बनाता ? प्रभुता किसको बहरा नहीं बनाती ? मृगनयनी का नेत्रबाण किसके हृदय में छेद नहीं करता ? किसको गुण का अहंकार नहीं होता ? किसका हृदय मान तथा मद से शून्य है ? जवानी किसको पागल नहीं बनाती ? ममता किसका यश नष्ट नहीं करती ? शोक किस को नहीं हिला देता ? चिन्तारूपिणी सर्पिणी किसको नहीं खा जाती ? माया किसको नहीं व्यापती ? मनोरथ रूपी कीड़ा किसके काष्ठरूपी शरीर में नहीं लगता ? पुत्र, स्त्री, धन, ये किस का मन मलिन नहीं करते ? ये सभी माया के परीवार हैं। इनसे ब्रह्म, विष्णु, महेश आदि सभी डरते हैं। मैं जिस पर प्रसन्न होता हूं उसकी माया को हरण कर लेता हूं। मेरा सबसे अधिक ममत्व सेवकों ही पर रहता है। मैं जिस समय अपने भक्तों को माया से अलग करता हूं उस समय भक्तों को बड़ा क्लेश होता है; किन्तु मैं उनका भावी सुख सोच कर ऐसा करता हूं। जिस प्रकार पिता, बालक का फोड़ा चिरवाता है और बालक रोता है, पर पिता उस रोने पर कुछ नहीं ध्यान देता। बालक का भावी

सुख सोच कर पिता ऐसा करता है; मैं भी ऐसा ही करता हूं। बिना मेरी भक्ति के जीव का क्लेश नहीं छूटता। मेरे भक्तों को माया नहीं व्यापती; इसलिए मेरे भक्तों का कभी नाश नहीं होता। एक बात और अपने मन को कहता हूं, ध्यान लगा कर सुनो। मैंने संसार के सब जीवों को माया के सहारे उत्पन्न किया है। सब पर मेरा प्रेम रहता है, क्योंकि वे सभी मेरे ही उत्पन्न किये हुए हैं। तथा उन जीवों में मनुष्य पर मेरा अधिक प्रेम रहता है, मनुष्यों में भी ब्राह्मणों पर अधिक, ब्राह्मणों में भी वेदज्ञों पर अधिक, वेदज्ञों में भी क्रियावानों पर अधिक, क्रियावानों में भी विरक्तों पर अधिक, विरक्तों में भी ज्ञानियों पर अधिक, ज्ञानियों में भी विज्ञानियों पर अधिक, विज्ञानियों में भी भक्तों पर अधिक प्रीति रहती है; क्योंकि वे सब प्रकार मेरी ही आशा रखते हैं, उन्हें दूसरे किसीका कुछ अवलम्ब नहीं है। मैं फिर भी सत्य कहता हूं—सबसे मेरा अधिक प्रिय भक्त ही है। ब्रह्मा भी यदि भक्तिविहीन हों तो उनपर मेरा प्रेम नहीं हो सकता। अत्यन्त नीच जाति का भी यदि मेरा भक्त हो तो उसपर मेरा बड़ा प्रेम रहता है। वही मेरा प्राणप्रिय है। यदि पिता के कई लड़के होते हैं तो सब पर पिता का प्रेम बराबर ही होता है; किन्तु जो पुत्र पिता का परम भक्त होता है उसीपर पिता की अधिक प्रीति होती है। इस लिए बुद्धिमान् जन सब छोड़ कर केवल मेरी भक्ति ही करते हैं। मेरी कृपा के बिना मेरी प्रभुता कोई नहीं जान सकता। जाने बिना विश्वास नहीं होता, बिना विश्वास प्रीति नहीं होती और बिना प्रीति भक्ति नहीं होती। गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता, ज्ञान के बिना विराग नहीं

होता, विराग के विना भक्ति नहीं होती और भक्ति के विना सुख नहीं होता। संतोष के बिना विश्राम नहीं मिलता। संतोष के बिना काम नष्ट नहीं होता। जब तक काम नष्ट नहीं होगा तब तक सुख नहीं मिलेगा। मेरी भक्ति के बिना काम नष्ट नहीं हो सकता। विज्ञान के विना समता नहीं आती। श्रद्धा के विना धर्म नहीं होता। सज्जनों की सेवा बिना शील नहीं मिल सकता। जब तक आत्म सुख नहीं मिलेगा तब तक मन स्थिर न होगा। विना विश्वास भक्ति नहीं होती, विना भक्ति मैं प्रसन्न नहीं होता, मेरी प्रसन्नता के विना जीव कभी विश्राम नहीं पा सकता। इन्हीं सब बातों को सोच विचार कर बुद्धिमान् जन कुतर्क छोड़ कर शुद्ध हृदय से मेरी भक्ति करते हैं।

फिर रामजी ने एक दिन सब परिवार तथा प्रजावर्गों को बुला कर कहा, ऐ मेरे प्रियगणों, ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना कर के समय का विभाग किया, चार युग बनाये, सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलियुग। सत्ययुग में धर्म चारों चरणों से वर्त्तमान रहता है, त्रेता में तीन चरणों से, द्वापर में दो चरणों से और कलियुग में एक चरण से। जब कलियुग आता है तब धर्म का ह्रास हो जाता है। अब मैं कलि की अवस्था का वर्णन करता हूं, ध्यान लगाकर सुनो। कलि में क़ोई वर्ण, धर्म और आश्रम नहीं मानता सब वेद के विरोधी हो जाते हैं। ब्राह्मण वेद बेचने हैं, राजा प्रजा का नाश कर देते हैं, कोई शास्त्र की आज्ञा नहीं मानता, जिसको जो पसंद होता है उसके लिए वही धर्म हो जाता है। जो बहुत बकवाद करता है वही पण्डित कहलाता है। जो बहुत

बाहरी आडम्बर दिखलाता है, और धोखा देकर सब लोगों से अपनी सिद्धि जनाता है वही संत कहलाता है। जो पराया धन हरण कर लेता है वही चतुर समझा जाता है। जो बहुत टीका फंदा करता है वही आचारी समझा जाता है, जो झूठा और मसखरा होता है वही गुणवान् कहलाता है, जो आचारविहीन हो जाता है और वेदमार्ग का त्याग कर देता है वही ज्ञानी तथा विरागी समझा जाता है। जिसके सिर पर बड़ी बड़ी जटा होती है और हाथ पैर के नख बढ़े रहते हैं वही तपस्वी है। जो भयंकर भेष धारण करता है तथा अभक्ष्य का भक्षण करता है वही योगी और सिद्ध है; कलियुग में वही पूज्य होता है। जो बहुत झूठ बोलता है वही वक्ता है। सभी स्त्री के वश में रहते हैं, और उसीकी आज्ञा से बन्दर के समान नाचा करते हैं। शूद्रलोग जनेऊ पहर कर दान लेते हैं और ब्राह्मणों को उपदेश देते हैं। सभी मनुष्य कामी, क्रोधी, लोभी और वेद, ब्राह्मण गुरु, तथा संतों के विरोधी होते हैं। स्त्रियां अपने परम गुणी तथा सुन्दर पति का त्याग कर पराये पुरुष से प्रेम करती हैं। सौभाग्यवती स्त्रियों को भूषण नहीं मिलते और विधवाएं प्रति दिन शृंगार करती हैं। गुरु अंधे के समान तथा शिष्य बहरे के समान होता है, एक परलोक नहीं देखता, और एक परलोक की बात नहीं सुनता। जो गुरु शिष्य का धन हरण करता है, किन्तु उपदेश देकर अज्ञान का हरण नहीं करता, वह गुरु नरक में पड़ता है। माता-पिता, पुत्र को यही शिक्षा देते हैं कि जिससे पेट भरे वही धर्म या कर्म करो, कलियुग में सभी ब्रह्मज्ञान ही की बात कहते हैं, सभी धन

के लिए ब्राह्मण और गुरु का घात करते हैं। शूद्र ब्राह्मणों से विवाद करते हैं कि हम तुमसे कुछ कम नहीं हैं, "जो वेद जाने वही ब्राह्मण है" ऐसा कह कर ब्राह्मणों को आंख दिखाते हैं और डांटते भी हैं । जो परस्त्रीगामी तथा कपटी होते हैं वे ही अभेदवादी ज्ञानी समझे जाते हैं। तेली, कुम्हार, डोम, किरात, कोल, कलवार आदि जितने अधम वर्ण हैं वे स्त्री के मर जाने पर वेश्यागमन करके पहले तो सब धन नष्ट करते हैं, फिर सिर मुंड़ाकर संन्यासी बन जाते हैं। इसके बाद ब्राह्मणों से पैर पुजवाते हैं। वे अपने ही हाथों से यह लोक और परलोक नष्ट करते हैं। कलियुग में ब्राह्मण लोग निरक्षर, मूर्ख, लोभी, कामी, आचार-रहित, शठ और शूद्री के साथ संभोग करनेवाले होते हैं। शूद्र लोग जप, तप, व्रत तथा दान करते हैं और व्यासासन पर बैठ कर पुराण बांचते हैं. कलि में वर्णसंकर बहुत पैदा होते हैं । सभी पाप करते हैं इसलिए सभी रोगी हो जाते हैं और अनेक प्रकार का शोक सहन करते हैं। वेदकथित मार्ग, तथा हरिभक्ति-मार्ग का त्याग कर सब लोग शास्त्रभिन्न मार्ग का अवलम्बन करते हैं। संन्यासी तथा साधु धन इकट्ठा करते हैं, गृहस्थ लोग दरिद्र होते हैं, सबलोग विवाहिता स्त्री को घर से निकाल देते हैं और दासियों को लाकर घर के भीतर रखते हैं, पुत्र तभी तक अपनी माता तथा पिता से प्रेम रखता है जबतक उसका ब्याह नहीं हो जाता। ब्याह हो जाने पर स्त्री ही सब कुछ बन जाती है और ससुराल ही के परिवार उसे प्रिय जान पड़ते हैं; और अपने परिवार शत्रु के समान मालूम पड़ने लगते हैं। राजा पापी तथा

प्रजा के भक्षक हो जाते हैं। जो धनी होता है वही जनेऊ लगाकर ब्राह्मण बन जाता है। कलि में सदा अकाल पड़ता रहता है और सभी चीज़ें महंगी बिका करती हैं। अन्न के बिना बहुत से लोग मर जाया करते हैं, कभी अतिवृष्टि और कभी अनावृष्टि हो जाती है, खेतों में बीज अच्छी तरह नहीं जमते, सभी निर्दय हो जाते हैं, सभी परस्पर अकारण ही विरोध करते हैं, सभी अल्पायु होकर दस पांच बरस जीते हैं, पर सभी अपनेको अमर ही समझते हैं। कोई धर्म पर ध्यान नहीं देता, चाहे बहिन हो, चाहे बेटी हो सभी के साथ व्यभिचार करना चाहते हैं, सभी जाति के लोग भीख मांगने लगते हैं, सभी परनिन्दा करना पसन्द करते हैं, कलियुग में सभी दोष ही दोष हैं, किन्तु गुण एक यही है जो मेरा भजन करते हैं वेही गति पाते हैं। सत्ययुग में योगी लोग भगवान् का ध्यान करके, त्रेता में यज्ञ करके और द्वापर में पूजा कर के मोक्ष पाते हैं, किन्तु कलियुग में केवल मेरे भजन से ही मोक्ष पाते हैं। कलियुग में सबसे बड़ा पुण्य "रामनाम" जप करना ही समझा जाता है। जो मेरा ही भरोसा करते हैं, मेरी ही आशा करते हैं, और शुद्ध चित्त से मेरा नाम जपते हैं वेही संसारसमुद्र के पार हो जाते हैं। कलियुग में दो और भी प्रधान धर्म हैं--परोपकार करना और दरिद्रों को दान देना। सत्ययुग में सत्वगुण ही रहता है, त्रेतायुग में सत्वगुण अधिक और रजोगुण थोड़ा सा रहता है। द्वापरयुग में रजोगुण बहुत, थोड़ा सा सत्वगुण और थोड़ा सा तमोगुण रहता है। और कलियुग में तमोगुण बहुत और थोड़ा सा रजोगुण रहता है। बुद्धिमान लोग इन बातों को सोचकर

सदा धर्म में प्रेम रखते हैं और अधर्म का त्याग करते हैं। जो मेरे चरणों में शुद्ध भक्ति रखता है उसको युग का धर्म नहीं व्यापता। एक बात और बताता हूं ध्यान देकर सुनो—जिसके पास पारसमणि रहता है उसे दरिद्रता नहीं होती, परद्रोही निःशंक नहीं रह सकता, कामी कलंकरहित नहीं हो सकता, ब्राह्मणों से द्वेष करने से वंश नहीं रह सकता, आत्मज्ञान होने पर कर्म का त्याग स्वयं हो जाता है। दुष्ट के संग से सुमति नहीं होती, परस्त्रीगामो भक्ति नहीं पा सकता, परमात्मज्ञानी संसार में नहीं फंसता, परनिन्दक सुखी नहीं हो सकता, नीति के बिना राज्य नहीं ठहर सकता, मेरा गुण गान करने से पाप नहीं रहता, पुण्य के बिना यश नहीं मिलता, पाप के बिना अयश नहीं होता, मेरी भक्ति से बढ़ कर जगत् में दूसरा कोई लाभ नहीं है; और दया के समान संसार में कोई धर्म नहीं है। जो मेरी भक्ति के बिना सुख चाहते हैं वे कामधेनु को छोड़ कर आक का दूध पीकर तृप्त होना चाहते हैं। जगत् में दरिद्रता से बड़ा कोई दुःख नहीं है, सज्जनसंग से बढ़ कर सुख नहीं है, और परोपकार से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है। एक बात और भी याद रखो—जो हरि तथा गुरु की निन्दा करते हैं वे मेढ़क (बेंग) होते हैं। ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाले कौवा होते हैं। वेद और देवताओं की निन्दा करनेवाले रौरव नरक में पड़ते हैं! सन्तों की निन्दा करनेवाले घुग्घू (उलुआ) होते हैं। जो सबकी निन्दा करते हैं वे चमगादड़ होते हैं। सब वेद शास्त्र पुराण आदि का यही सिद्धान्त है कि मेरे चरणों में निर्मल प्रीति करो। और सुनो, सन्तों का हृदय मक्खन के समान है; किन्तु मक्खन अपने

ताप से पिघलता है और संतों का हृदय दूसरेके दुःख के ताप से पिघलता है। वह देश धन्य है जहां गङ्गा की धारा है, वह नारी धन्य है जो पतिव्रता है। वह राजा धन्य है जो नीति से राज्य करता है, वह ब्राह्मण धन्य है जो अपने धर्म पर स्थिर रहता है। वह धन धन्य है जो दान में व्यय किया जाता है। वह बुद्धि धन्य है जो धर्म में लगी रहती है, वह घड़ी धन्य है जिस घड़ी में सत्संग होता है, वह जन्म भी धन्य है जिसमें मेरी भक्ति हो। वह कुल भी धन्य है जिस कुल में मेरे भक्त उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार रामचन्द्रजी प्रतिदिन सबको धर्मोपदेश किया करते थे। उनने ग्यारह हजार वर्षों तक धर्मपूर्वक राज्य किया। एक दिन कालपुरुष रामजी से मिलने के लिए आया। रामजी ने उसे अपने पास बुलाया। उसने कहा—मैं एकान्त में आपसे एक बात कहना चाहता हूं। रामजी ने कहा—अच्छा! ऐसा ही होगा। फिर उनने लक्ष्मण को बुलाकर कहा—मैं एकान्त में एक अतिथि से बातचीत करना चाहता हूं। वहां किसीको मत आने दो, जो वहां आ जायगा उसको प्राणदण्ड दिया जायगा। लक्ष्मण ने कहा—"अच्छा, बहुत ठीक!" दैव-संयोग-वश उसी समय दुर्वासा ऋषि आ पहुंचे, लक्ष्मणजी द्वार पर थे। उनने कहा, इस समय किसीको भीतर जाने की आज्ञा नहीं है। दुर्वासा ने कहा - यदि तुम इसी समय राम से मेरे आने का समाचार न कहोगे तो तुम्हारे सारे राज्य, तुम्हारे सारे परिवार तथा तुम्हें शाप देकर भस्म कर दूंगा। देखो, इन्द्र के वज्र, शिव के त्रिशूल, विष्णु

के चक्र, और ब्रह्मा के ब्रह्मास्त्र से भी भयानक ब्राह्मण का क्रोध है।" लक्ष्मण रामजी के पास चले गये। उनने समझा—यदि मैं दुर्वासा का कहना न मानूंगा तो ये सारे परिवार को नष्ट कर देंगे; और यदि मैं रामजी के सामने जाऊंगा तो केवल मैं ही प्राणदण्ड पाऊंगा। रामजी ने देखते ही कालपुरुष को विदा कर दिया और लक्ष्मण से कहा—तुमने ऐसा अनुचित कार्य क्यों किया? लक्ष्मण ने सब समाचार कह सुनाया। राम ने कहा—क्या मैं अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दूं? लक्ष्मण ने कहा—आप अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कीजिये। जो अपनी प्रतिज्ञा छोड़ते हैं वे नरक में जाते हैं। प्रतिज्ञा नष्ट हो जाने पर धर्म का नाश हो जाता है। धर्म के नष्ट हो जाने पर उसके तीनों लोक नष्ट हो जाते हैं। आप मुझे प्राणदण्ड दीजिये। राम ने दुर्वासा को बुला कर उन्हें यथेष्ट भोजन कराया और लक्ष्मण से कहा तुम्हें प्राणदण्ड तो न दूंगा. किन्तु प्राणदण्ड के बराबर दण्ड तुम्हारा त्याग करूंगा। अब तुम मेरे नगर के बाहर जहां इच्छा हो चले जाओ। लक्ष्मण ने रामजी की बात सुनतेही सरयू के तीर पर जाकर योगासन लगा कर प्राण-त्याग किया। रामजी भी दुःखी होकर भरत शत्रुघ्न आदि परिवार को लेकर दिव्य शरीर धारण कर स्वर्ग में चले गये, वहां सब देवताओं तथा देवियों ने रत्नजटित सिंहासन पर बैठाकर प्रणामाभिवन्दनादि सत्कारों से उनका पूर्ण स्वागत किया। जानेके समय रामचन्द्र ने विभीषण को बुलाकर कहा कि—ऐ विभीषण! जब तक सूर्य, चन्द्रमा पृथिवी, तथा समुद्र वर्तमान रहेंगे और जब तक मेरी कथा का प्रचार भूमण्डल पर रहेगा, तब तक तुम्हारा

राज्य रहेगा और तब तक तुम भी जीवित रहोगे, धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करना, और इक्ष्वाकु कुल के देव जगन्नाथ की आराधना करना, फिर हनुमान से कहा ऐ हनुमान्! तुम मेरे साथ स्वर्ग में मत चलो, तुम इसी पृथिवी पर रहो और जहां जहां मेरी कथा हो वहां वहां जाकर मेरी कथा श्रवण करते हुए आनन्दपूर्वक विचरण करो, मेरी यही आज्ञा है।

रामचन्द्रजी के स्वर्गारोहण के अनन्तर इस भूमण्डल के प्रधान राजा रामजी के प्रथम पुत्र "कुश' हुए, कुश के छोटे भाई लव और भरत के दो पुत्र, लक्ष्मण के दो पुत्र, तथा शत्रुघ्न के दो पुत्र एक एक प्रान्त के राजा हुए। किन्तु सबके ऊपर महाराज कुश का शासन विराजमान हुआ। सातों राजाओं ने अपना संम्राट् कुशही को समझा, उन लोगों के शुभशासन में प्रजाओं के दिन आनन्दपूर्वक व्यतीत होने लगे।

जो मनुष्य रामजी का यह सुन्दर चरित मन लगाकर सुनते हैं या पाठ करते हैं उनका चरित सुधर जाता है और उनके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं।

॥ शुभम् ॥

Printed by R. P. Sinha at the K. V. Press, Bankipur.